पाषाण की लोच

कर्तव्य और भावना के संघर्ष का एक मनोरंजक
किन्तु मर्मस्पर्शी, सामाजिक, मौलिक उपन्यास]

लेखकद्वय

भगवतीप्रसाद वाजपेयी
हरिशंकर'
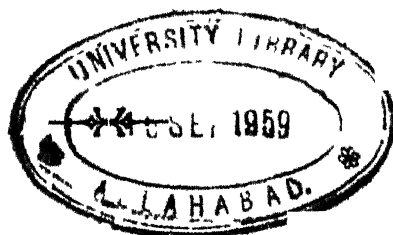
प्रकाशक

सरस्वती-सेवा-सदन

प्रकाशक और पुस्तक-विक्रेता
पी० रोड, कानपुर।

प्रकाशक :

इच्छाशंकर दुबे
सरस्वती-सेवा-सदन
पी० रोड, कानपुर ।

प्रथम सस्करण
२६ जनवरी सन् १९५९ ई०

मूल्य
६-५० नये पैसे

कवर-डिजायन
उमेश वर्मा
दिल्ली ।

मुद्रक :
निर्बल-के-बल-राम प्रेस,
सिविल लाइंस,
कानपुर ।

अभिप्राय

सृष्टि का कोई पदार्थ मूल्यहीन किंवा अपदार्थ नही है। प्रत्येक वस्तु का अपना एक मूल्य होता है। और तुलनात्मक दृष्टि से देखा जाय, तो समय और परिस्थिति के अनुरूप पदार्थों के मूल्य घटते बढते भी रहते हैं।

ठीक यही स्थिति जीवन की है। उसकी आस्था का मूल्य है, उसके विश्वास और आश्वासन की पृष्ठभूमि का मूल्य है, शारीरिक और मानसिक सौंदर्य के क्रम-विकास का भी मूल्य है। गार्हस्थ्य जीवन की समस्याओ पर विचार करे, तो सामाजिक मान्यताओ और उनके मानदण्डो का भी अपने अपने स्थान पर बडा मूल्य है। मनुष्य के क्षण-क्षण व्यापी घात-प्रतिघातो और जीवन की दौड मे, आगे बढने के क्रम में, उन मनोविकारो और प्रतिक्रियाओ का भी मूल्य है, जो या तो समझौता कर लेने पर हमारे स्वाभिमान, अहम् और उत्कर्ष को धराशायी बना देती है, अथवा माता-पिता के साथ विश्वसनीय बने रहने के फलस्वरूप प्रेमी और प्रेयसी के प्रति विश्वासघात कर डालने को तत्पर और विवश कर देती हैं। कभी-कभी तो एक के प्रति विश्वास ही दूसरे के प्रति अविश्वास का रूप धारण कर लेता है। यह एक मनुष्य-स्वभाव है कि हम प्रत्यक्ष के आगे झुकते और अप्रत्यक्ष की अवहेलना कर बैठते हैं। यह एक ऐसे तथ्य की बात है जो चिर व्यापक, सतत और सर्वत्र है—सर्वकालीन और निरन्तर।

परन्तु इन स्थितियो, उपभोगो और उपलब्धियो को जब हम मनुष्य-स्वभाव मात्र मान लेते है, तब दूसरी ओर यह नही देखते कि स्वभाव से भी कोई बडी वस्तु हमारे भीतर है। वह प्रच्छन्न भले ही हो, पर है बृहत्तर वह मनुष्य की महान कर्त्तव्य-भावना, उसकी—संबंधित व्यक्तियो के प्रति—अपनी एक जिम्मेदारी, अपना एक उदात्त उत्तरदायित्व।

नवीन कुतूहलो, अनुभूतियो और आकर्षक उपलब्धियो के प्रलोभन-सम्मोहन मे पडकर कभी-कभी हम जो जघन्य अपराध कर बैठते हैं, राज-मार्ग पर चलते-चलते जब कभी दूसरा उपमार्ग आ जाता है तब हम उचित और प्रशस्त पथ के निर्धारण में प्राय: जो भूले कर बैठते हैं, उनका कितना महत्व और मूल्य है ! और आज न सही, तो सुदूर भविष्य में उसका कितना बडा मूल्य हमे चुकाना पडेगा, इस बात की ओर हमारा ध्यान क्यो नही जाता ? यह एक चिरतन समस्या है, जिसका समाधान बडा दुष्कर रहा है ।

बात यह है कि कर्त्तव्य पत्थर की भाँति जड होता है और भावना में पत्ती और टहनी की भाँति एक लोच होती है । जीवन इन दानो स्थितियो के समन्वय का ही नाम है । पाषाण बन जाने पर भी हममें एक लोच बाकी रहतो है । क्योंकि उस के बिना सच पूछिये तो जीवन जड, निर्जीव, निष्प्राण और व्यर्थ है, वास्तव में उसका कोई मूल्य नही है ।

'पाषाण की लोच' उपन्यास में इसो विचार-विमर्श का एक कलात्मक आख्यान प्रस्तुत किया गया है ।

कानपुर मकरसंक्रान्ति सवत् २०१५ वि०	}	भगवतीप्रसाद वाजपेयी हरिशंकर

वार्तालाप की सरसता, स्निग्धता और मधुरता जब धीरे-धीरे मन की अतल गहराई से रिसने लगती है, तब जैसे कुछ सोई हुई भावनाएँ अँगड़ाइयाँ लेने लगती हैं। कुछ इच्छाएँ तो करवट बदल लेती हैं। आँखो में कुछ नशीले सपने लहरा उठते है और कुछ दबी हुई सुधियो के पख लग जाते है। और तब-तब काल कुछ वैसे ही धीरे-धीरे फिसलता चला जाता है, जैसे धुले हुए बादलो पर चाँद, या हल्की-हल्की मचलती लोनी लहरो पर कोई सुन्दर तरणी। ऐसी अवस्था में समय का सारा का सारा विस्तार सकुचित होकर मन के किसी अँधेरे कोने में खो जाता है।

आज भी कुछ ऐसा ही हुआ। किसी विशेष अभिप्राय के न होने पर भी मनचाही मनोरंजक बातो में लगा कि क्या ऐसा भी हो सकता हे कि इन बातो का सिलसिला कभी टूटे ही न ! बाहर मौसम जो भी रहा हो, पर अन्दर मन के गहरे नीले मानसरोवर में एक हसीन तूफ़ान आते-आते बचा था। लहरें मचल पडी थी। अरमानो का आसमान कुछ कारी कजरारी घटाओ से घिर उठा था। सम्भव था कि एक ज्वार उठता और किनारे डूब जाते, किश्तियाँ टकरा जाती, मस्तूल टूट जाता और हाथ से पतवार छूट जाते। मन को जाने कुछ कैसा होता जा रहा था। कुछ क्लोरोफ़ार्म की तरह धीरे-धीरे चेतना पर छा जानेवाली मादक निद्रा मन-प्राण को अभीभूत करती जा रही थी। कितना नशीला था वह सम्भावित तूफ़ान! काश वह आता और किनारे सदा के लिये डूब जाते। लेकिन वह आता हुआ तूफान सहमकर लौट गया था। भरे-भरे बादल सिर लटकाकर आगे बढ़ गये थे और धरती प्यासी रह गयी थी। फिर अतृप्त हरीतिमा के अञ्चल मे एक अन्धड़ उठा; लगा कि सब कुछ बिखर जायगा।

लेकिन यह सब क्यो और कैसे हो गया, आनन्द स्वयं नही समझ सका था। और जो समझ भी सका था, उसे स्वीकार नही कर पा रहा था। पाँच-छै मिनट तक वह कमरे में चुपचाप बैठा रहा था ; पछताता हुआ कि उसने यह सब कह ही क्यो दिया ? क्या उसके ही कथन ने उसके अपने विश्वास की तहो को नही झकझोर दिया था ? · लेकिन उसने कौन-सी कडी बात कह दी ? आखिर राज ने जो बात कही, उसी का तो उसने बडे सहज ढंग से उत्तर दिया था। राज ने ही तो जब माधुरी और अनन्त की बात करते हुए कहा कि अनन्त अपनी बरबादी का—अपने भविष्य के चौपट होने का—ढोंग रचते हैं। यह सब पाखड है उसकी बनी-बनाई गृहस्थी में आग लगाने का; और कुछ नही ··।

माधुरी विवाहिता है, उसके पति हैं, उसकी मर्यादा है ·। ·· प्रेम में असफल होकर इन्सान जब प्रेम की मर्यादा भूल जाता है तब वह प्रतिहिंसा का शिकार हो जाता है। बस, यही स्थिति अनन्त की है। मैने तो उसे लिख भी दिया है कि अनन्त की जिन्दगी सुधारने के चक्कर में न पडो। अपना घर देखो, अपना काम देखो ·।

तभी उसकी बातो का उत्तर देते-देते उसने अन्य बातो के साथ कह दिया—"अधिकाश लडकियो के जीवन में एक-न-एक अवसर आता है, जब यौवनावस्था के प्रारम्भिक दिनो में उनके पैर फिसलना चाहते हैं और फिसलते हैं। यह बात और है कि कोई गड्ढे में गिरे और कोई कुएँ में ··। और यह फिसलन अँधेरे में नही उजाले में होती है ·। मैं उस स्तर से घृणा करता हूँ जिस पर पहुँचकर इन्सान सहानुभूति के स्वर भूल जाता है। जहाँ आँखो की करुणा सूखने लगती है और उपेक्षा की धूल उडने लगती है ··। हाँ, सहानुभूति और स्नेह के दाता की निगाहें बदल जायँ, उसके इरादे बदल जायँ, तब तो बात ही दूसरी है। ··· तुम भी ऐसी मनोवृत्ति को प्रश्रय दोगी, मैंने स्वप्न में भी नहीं सोचा था।

यह बात दूसरी है कि बात करते-करते उसे कुछ आवेश-सा आ गया था।

लेकिन अब यही अर्थ का अनर्थ कर बैठे तो उसका क्या दोष ! लेकिन ··· ।

जब इसी तरह पॉच-छै मिनट बीत गये, तो आनन्द की उलझन बढ़ गयी और बगल के कमरे से जब सिसकियों का स्वर उस कमरे तक उभर आया, तो उसे एक प्रकार की घबराहट हुई । पैरो के पास गिरे हुए अखबार को उठाकर उसने टेब्रिल पर रक्खा और रूमाल में अँगुलियाँ उलझाता हुआ वह सामने के कमरे की ओर बढ़ा । लेकिन परदे से आगे उससे नही बढ़ा गया । परदा हटाकर उसने देखा भी नही और परदे को पकड़े-पकडे उसने बडी ही मुलायम आवाज़ में पुकारा—"राज ! ओ राज !! ज़रा मेरी बात तो सुनो !"

लेकिन आवाज़ जैसे हिचकियो में खो गयी थी, या बेजान दीवारो से टकराकर आवाज़ खुद मुर्दा हो गई थी । आनन्द एक मिनट तक निस्तब्ध खडा रहा । जब अन्दर से राज ने सिसकते हुए कहा—"अब और कुछ कहना बाकी रह गया है क्या ? कह डालिये, कोई अरमान न रह जाय । दूसरा कोई सुननेवाला नही मिलेगा आपको । मैं क्या जानूँ ····· ?"

लाचार आनन्द घूमकर चल दिया ।

वह बाहर आया तो मिल गया मंगल । करीब साठ वर्ष का बूढा मंगल । काठी से तगडा, मजबूत; लेकिन ज़माने की मार से लाचार, मजबूर मंगल । वायु के प्रकोप से शरीर में कुछ कपकपी आ चली है, पर क्यामजाल आपको कभी खाली बैठा नजर आये । कुछ-न-कुछ करता ही रहेगा । कुछ न होगा, ढीली चारपाइयॉ कसता रहेगा । अपने गॉव भेजने को, गाय और बछडो के लिए सन की पगहियॉ ही बनाता रहेगा । मंगल माली नही है; लेकिन मकान के सामने छोटे मैदान में खुशबुओ की जो महफ़िल लगी है, हरियाली का छोटा, पर प्यारा-सा जो कालीन बिछा है, वह मंगल की बाहो की ही फ़सल है । कोई नही बता सकता कि उसे कितने प्रकार के काम आते हैं । इस परिवार के लिये वह नौकर होकर भी नौकर नही है । मुनीम न होकर भी मुनीम-सा है, मैनेजर न होकर भी मैनेजर-सा है । कुछ ऐसा है मंगल । यही कारण है कि घर के लोग उसे मंगल न कहकर मंगल

मामा कहते हैं।

उसी मगल ने आनन्द को सिर नीचा किये हुए जो आते देखा तो बोला—"कहो भैया, कैसे रहेन आप ? सब कुसल-मंगल तो है न ? एहर बहुत दिना मां दिखाई परेन। कहू बाहर गये रहेन का ? काहे कुछ उदास-उदास हैं आप ?"

आनन्द कुछ चौंका। फिर उसने हँपने की कोशिश की, फिर बोला—"ओफ हो ! तुमने तो बहुत से सवाल कर दिये एक साथ मगल मामा ! पर तुम अपना हाल-चाल तो बताओ। हाल चाल तो तुम बुड्ढो का ही होता है। हम जवानो की तो हर तरह कट जाती है।"

उसे लगा, जैसे उसने मंगल के सारे सवाल एक साथ टाल दिये हैं।

"हम लोगन के का हाल-चाल भैया ! कगारे केर पेड हन, कगारे केर। चाहे जौन दिना भहराय पडब। हाँ, जरा बडे भैया और बिटियारानी से छुी हुइ जात, बहू-रानो तीरथ करतो; तो सग में अपनौ परलोक बन जात।"

"अच्छा-अच्छा, बन जायगा परलोक भी। इस समय तो मामा मैं चलता हूँ। अब तो आ ही गया हूँ, आता ही रहूँगा।"

आनन्द साइकिल की ओर बढा, तो मगल समझ गया। लपककर उसने साइकिल बरामदे से नीचे उतार दी और कहने लगा—"भैया, अब का विचार है आपका, अबहिन अउर पढिहैं का ?"

"पढना तो ज़िन्दगी भर है मंगल।" कहकर आनन्द साइकिल पर बैठ गया। मगल से बात करते समय उसने एक प्रकार का क्षणिक आराम—एक हल्कापन—अनुभव किया था। लेकिन सडक पर आते ही फिर एक बोझ आ गया उसके ऊपर।

फिर आनन्द की साइकिल जब सडक पर फिसली, तो उसने लक्ष्य किया कि इतने बडे नगर के दामन से लिपटी हुई यह सडक कितनी वीरान और कितनी असहाय-सी है। मीलों तक सीधी चली गयी इस सडक के उभय

पार्श्वों में छिटके हुए बँगले, काटेज और कोठियाँ, जैसे आज के बुद्धिजीवी वर्ग की खोखली और जर्जर मान्यताओ के किसी बेबस और मायूस साथी से घिरी हुई, कुछ कहना चाहकर भी कुछ कह नहीं पा रही है।

आनन्द कुछ भटक गया था। अभी हाल की घटना के दूसरे पक्ष पर सोचने में अपने को असमर्थ पाकर वह इस ओर मुड गया था। वह सोच रहा था कि जो शान्ति इन हरे-भरे महकते लानो, लताओं और पौधो के ऊपर है, क्या वही शान्ति, सुख और संतोष इन मेंहदी की कतारो, विभिन्न क्रोटन्स और आकर्षक फूलो में मुँह छिपाये इन आवासो में निवास करने वाले लोगो के जीवन में भी होगी ? क्या यह घिरा हुआ एकत्र सन्नाटा और सॉय-सॉय उनके जीवन मे भी नही होगा ? जीवन को गतिशील बनाने और उसे विभिन्न अनुभवो से भर देने में क्या भीड, जन-कोलाहल, शोर और चहल-पहल का कोई स्थान नही ? क्या जीवन का प्रवाह भी कुछ मोटी स्थूल रेखाओ में बाटा जा सकता है ?

"अरे-अरे ! जरा देख के भइया !"

आनन्द ने एक बार डगमगाकर हैंडिल सँभाल लिया। किसी आदमी के साथ जाता हुआ बच्चा अनायास ही बच गया था।

शाम घिर चली थी। दिनभर प्रायः सूनी रहनेवाली सड़क पर इधर उधर कुछ लोग नजर आने लगे थे। कुछ सैलानी, कुछ घूमनेवाले और कुछ दिन भर बॅगलो में खस की टट्टियो के अन्दर बन्द रहनेवाले परिवार जैसे ऊबकर बाहर आ गये थे। कुछ बँगलो से कारें निकली और हल्का धुँआ, हल्की गन्ध और जल्दी ही मर जानेवाली आवाज करती हुई निकल गयी। शायद सिविल लाइंस गयी होगी, या फिर क्लब या किसी कारवाले बँगले में ही।

सामने तीन-चार लडकियो का एक गिरोह आ रहा था। साथ में एक छोटी बच्ची, जो आगे-आगे दौडती चलती और फिर रुक जाती थी।

"पप्पी गिर जाओगी; चुपचाप चलो न साथ में।"

बच्ची खिलखिलाकर हँसती और फिर कुछ दूर भाग खडी होती।

आनन्द बगल से गुजरा। सामने एक मिलिट्री की लारी आ रही थी। वह और दबा और लडकियो के बगल मे आ रहा।

"हिमानी, इतनी बडी ट्रेजडी अखर जाती है। सच मानो, मै तो कल रात बडी देर तक जगती रही। कम्बख्त नीद ही नही आयी। घूम-फिरकर वही ख्याल आ जाता था।

"तुम भी रेखा अजीब हो। अरे कही उपन्यासो की ट्रेजडी और और कमेडी "!

आनन्द मुसकराकर आगे बढा।

"ज़रा सुनियेगा।"

आनन्द ने सिर घुमाया। सडक के किनारे एक साधारण आदमी हाथ में कई लिफाफे लिये खडा था। आनन्द ने पूछा—"क्या बात है?"

"बता सकते है आप कि पॉच नम्बर बँगला कौन है? एडवोकेट हरिमाधवजी ।"

आनन्द ने ब्रेक लगाई और बायें पैर के पंजे को जमीन पर टेककर उत्तर दिया—"मै नही जानता भाई। अगले चौराहे के नुक्कड पर जो पान की दूकान है न, वही पूछना, शायद पता लग जाय। यहाँ नम्बर भी तो अजीब ढग से है।"

तभी दो नवयुवक साइकिलो पर निकले।

आनन्द ने आवाज दी—"प्लीज़।"

साइकिले रुकी—"कहिये।"

"पाच नम्बर किधर होगा?"

"क्या बात है?"

आनन्द ने सामने के आदमी की ओर इशारा किया—"इसे जाना है।"

"कहा से आये हो जी?" एक नवयुवक ने उस आदमी से प्रश्न किया।

"दयाल साहब के यहॉ से।"

लडको ने एक दूसरे की आँखो में देखा, एक फुसफुसाहट हुई—"देर हो गयी यार। न्यूज़-रील तो चल भी रही होगी।"

"पीछे बायें हाथवाली सडक-पर दायें हाथ दूसरा बँगला।" और साइकिलें बढ़ गयी। एक आवाज़ पीछे छूट गयी।

"लेकिन मदन, घर पर तो कोई है नही। सब लोग पार्टी में गये हैं। खैर, माली तो होगा।"

आनन्द ने उस आदमी की ओर देखा जो अभी घूमकर चल दिया था। फिर आनन्द मुसकराया और आगे बढ़ा।

अब वह अल्फ्रेड पार्क से गुज़र रहा था। अप्रैल, मई, जून और जुलाई में इस पार्क की शामे कितनी रंगीन होती हैं, इसे इलाहाबाद के लोग अच्छी तरह जानते है। थोडी देर के लिये ही सही, पर कितनी चहल-पहल हो जाती है! कुछ साडियाँ, कुछ पैंट्स, कुछ पायजामें, कुछ स्कर्ट्स, बाहो मे फँसे धँसे ब्लाउज, ढीली कमीजें, झोल-झाल कुर्ते। एक विचित्र जमघट होता है यहाँ। तीन-तीन चार-चार लोगो के झुण्ड कही बैठे, कही लेटे, कही टहलते जैसे मौसम से, वातावरण से और अपने से समझौता करने की कोशिश करते हैं। पार्क का यौवन भले ही दो घण्टो का होता हो; पर इन दो घण्टो में ही पार्क मे मँडरानेवाली हवाओ पर कितने अरमान, कितनी समस्याएँ, कितने सपने और न जाने कितनी बाते तैर जाती हैं! और इन सबके बोझ से भारी हो उठी हवा जब हाँफने सी लगती है तो भरे उभरे आये लोग अपने भीतर किसी शून्यता का अनुभव करते बिखरने लगते है। पार्क सून होने लगता है और धीरे-धीरे घिरती आ रही रात की खामोशी समूचे पार्क को अपने स्याह दामन मे समेट लेती है। तब फूल सो जाते हैं, लताएँ अलसा जाती हैं पेड-पौधे किसी मदहोश खुमारी में झूम उठते हैं और रात के धुंधले मटमैले आलोक में, केवल दो घण्टो की जवानी से ऊब गया पार्क सिसकियाँ-सा भरने लगता है।

आनन्द जब बीच में पहुँचा तो उसने अनुभव किया कि आज एक हल्का सूनापन है पार्क मे। शायद बदली जो घिरी है कस के, इसीलिये। तभी एक ठण्ढा झोंका उसे दुलराता हुआ, सहलाता हुआ, आगे निकल गया। उसे तनिक आश्चर्य हुआ कि बादल तो काफी देर से घिरे होंगे और हवा भी चल ही रही होगी। लेकिन वह इतना बेखबर कैसे रहा ? उसकी पसीने से भीगी बनियाइन में जब हवा का तेज झोंका पहुँचा, तो उसे एक राहत-सी मिली।

इतनी देर खामोश रहने के बाद अब उसके मुँह से किसी गीत की एक पक्ति फूटी। कमीज़ की बटनें खोलते हुए उसने पैरो की शक्ति पैडिलो पर केन्द्रित कर दी। हल्की बारिश पडने लगी थी। गवर्नमेन्ट-हाउस के ढाल पर से जब साइकिल उतरी तो आनन्द के पैरो में गति थी। मुँह में किसी गीत की ध्वनि और मन में घर पहुँचने का उतावलापन था। साइकिल भागी जा रही थी। हवा के कारण कमीज़ पीठ पर गुब्बारे की तरह फूल उठी थी।

फिर आनन्द जब बँगले पर पहुँचा तो शाम झुक आयी थी। बूँदे कुछ तेज़ भी हो आयी थी, पर वह भीगा नही था। साइकिल बरामदे में रखकर उसने महेश को आवाज़ दी और कमरे का ताला खोलकर वह कमरे में पहुँचा ही था कि महेश आ पहुँचा।

"हलो, कहाँ रहे यार दिन भर ?"

"घूमता रहा।"

"दिन भर ! खैर, किसी जगह, या · ?"

"नही यूँ ही घूमता रहा"—आनन्द ने कुर्सी पर बैठकर जूते के फीते खोलते हुए कहा।

"तो यह कहो कि आजकल स्ट्रीट-रोमियो हो रहे हो मिस्टर आनन्द।"

कमीज़ उतारते हुए आनन्द ने उत्तर दिया—"फिर भी कोई जूलियट

नहीं है दोस्त । ओ. ये कमीज़ तो अच्छी चिपक गयी, और कमीज निकाल कर उसने हैंगर पर टाँग दी । बनियान निकालकर खूँटे पर फेंकी और कुर्सी की पीठ पर रखी तौलिया उठाकर देह रगड़ते हुए बोला—"क्या मौसम है यार ! जरा सा पसीना आया नहीं कि देह चिपचिप करने लगी । हाँ महेश, तुम्हारी पढ़ाई का क्या हाल है ? कैसी चल रही है ?"

"आँ ! पढ़ाई ? ओः, मैं तो तुम्हारी जूलियट की सोच रहा था । मौसम इतना वाहियात है कि गरमी के मारे कुछ पढ़ा ही नहीं जाता है । मुझे तो लगता है कि यह चान्स भी गया । तुम इस वर्ष बैठ रहे हो कि नहीं ?"

"उहुँ ।"

"क्यों ?"

"क्या करूँगा बैठकर ?"

"क्या करोगे !"

"पहले आज से तो छुट्टी पालूँ महेश, फिर कल की भी सोचूँगा । अभी तो मैंने कुछ तय किया नहीं ·· । अरे हाँ, ज़रा बत्ती तो जलाना थैंक्यू ।"

"राज का क्या विचार है ? इधर उससे भेंट हुई ? उससे मदद क्यों नहीं लेते ? मैं समझता हूँ, वह तुम्हारे विषय में तुमसे अच्छा सोच सकती है । उससे मिलो न ?"

"क्या होगा मिलकर ? ये लड़कियाँ सिर्फ़ सोच ही सकती हैं । आगे इनमें गति नहीं होती है ।" पैण्ट उतारकर उसने पायजामा पहनते हुए कहा ।

"आज कहीं से भाँग खा आये हो क्या ?"

"क्यों, क्या बात है ?"

"कुछ फिलासफरो के से टोन में बोल रहे हो, इसी से।"

"अच्छा!" और दोनो खिलखिलाकर हँस पडे।

"दोपहर जीवन आया था। बडी देर तक बैठा रहा। तुम्हें बहुत पूछ रहा था।"

"क्या हाल हैं उसके रोमान्स के?" आनन्द ने पानी पिया—"तुम भी पियोगे महेश?"

"उहुँ, चाय पिलाओ।"

"तो फिर दूध ले आओ अपने कमरे से।"

"तो वही न चलो।"

"चलता हूँ। लेकिन आज भी उपवास होगा क्या? भई रोज़-रोज़ मुझसे बाज़ार की पूडिया नही चलती। कुछ प्रबन्ध करो न महेश?"

" कल से महराजिन आयेगी। मैने आज पता लगाया था। अब उसकी तबियत ठीक है।"

"वकील साहब ने इस बार बहुत देर कर दी।"

"हाँ, शायद अगले हफ्ते आयें। इधर तो कोई पत्र भी नही आया। अच्छा रानी की फ़ीस जमा कर दी थी?"

"वह तो कल ही जमा कर दी थी।"

चाय पीते, फिर निवृत्त होते-होते और भरोस के द्वारा बाजार से कुछ खाने का सामान मँगाकर खाते पीते करीब दस बज गये। महेश के कमरे में ही खाने के बाद, जब वह किसी इतिहास की पुस्तक के पृष्ठों में खो गया और केवल पंखे की हल्की घर्र-घर्र ध्वनि कमरे की नीरवता के कन्धो पर झूलने लगी, आनन्द उठा। महेश के बगल की खिडकी उसने खोली और फिर किवाड एक दूसरे से भिडाता हुआ बाहर निकल आया।

पानी काफ़ी तेज़ गिर रहा था। बिजली की गडगडाहट भयंकर थी। आनन्द की इच्छा हुई कि अपनी चारपाई यही बरामदे में निकाले।—पर इतना झंझट कौन करे! भरोस को बुलाऊँ क्या? पर वह तो लेट गया

होगा। बेचारा अभी तो बाजार से भीगकर लौटा है।'

आनन्द अपने कमरे मे आया। कुर्सी खीचकर वह खिड़की के सामने आ बैठा। उसकी आँखो मे नीद नही थी। कुछ भावनाएँ घनी होती जा रही थीं। महेश को पुस्तक मे डूबा देखकर उसे एक ईर्ष्या-सी हुई थी।—'कितना अच्छा होता अगर वह भी उसी की भाँति कम्पटीशन की तैयारी कर पाता! और उसी की भाँति अपने विषय में दृढता के साथ कुछ निश्चित कर सकता; उसी की भाँति अगर वह केवल अपने विषय मे सोचने का अधिकारी होता!

लेकिन ऐसा कैसे हो सकता है? वह एक बडे कन्ट्रैक्टर का बडा लडका है। छोटा-सा परिवार, आवश्यकता से अधिक आय। अब अगर वह मस्ती से बेफिक्री से अपने भविष्य निर्माण मे नही लगेगा, तो क्या वह लगेगा जिसके बाप एक साधारण किसान है। बडा परिवार है। छात्रवृत्तियो और ट्यूशनो पर जिसके बच्चो की शिक्षा आधारित है।

उसे आज से चार वर्ष पूर्व के वे दिन याद आ गये, जब वह अपने गाँव से, केवल अपने एक रिश्ते के फूफा के सहारे, उनकी ही कृपा और दया का अकिंचन भिखारी बना हुआ यहाँ आया था। उसे वह दोपहर भी याद आ गयी, जब उसने सिसकते हुए अपनी माँ की गोद में सिर छिपाकर कहा था कि माँ, किसी तरह तुम दो महीनो का प्रबन्ध करदो। फिर भगवान करेगा तो मै कुछ-न-कुछ इन्तजाम कर ही लूँगा। उसका मन भर आया तब वह स्पष्ट कह गया था इन बातो को। कैसे कह गया था! आज तो किसी भाँति नही कह सकता। माँ ने अपने दो-चार हल्के फुल्के जेवरो में सबसे कीमती हाथ के कगन बेचकर उसे यहाँ भेजा था। उसे वह क्षण भी याद हो आया, जब पिता ने उसके हाथो में नोटो की एक छोटी-सी गड्डी देकर हिचकिचाते हुए भर्राये गले से कहा था—"बेटा, अब इससे अधिक सामर्थ्य नही है हमारी। माँ के इन कंगनो की कीमत समझना। मुझे संतोष होता, अगर तू भी गाँव के और लडको की तरह केवल लडाकू, आवारा और घुमक्कड निकल जाता! आज ये आँसू तो न पीने पडते।

आज यह दिन तो न देखना पडता कि मेरा बेटा थोडे से रुपयो के लिये पढने को तडप जाय !" कुछ इसी तरह के और भी वाक्य उन्होंने कहे थे। लेकिन वे अब आनन्द को याद नही। क्योकि तभी माँ पिता को सहारा देकर अन्दर ले गयी। बीमारी से उठे पिता के लडखडाते पाँव जैसे उसके सामने से चले जा रहे हो !

जिस दिन वह चला था, उस दिन लोगो ने खाना नही खाया था। खुल कर रो भी नही सके थे। अशकुन जो होगा। परदेश जाते बेटे के सामने कुछ अमंगल सा है रोना। वह अन्दर से आ रहा था। बरोठे में शान्ति सिसक उठी थी। आते-आते उसने मा को उसे चुप कराते सुना था—"रोते नही बेटी।" और फिर वे स्वय चुप हो गयी थी, इस डर से कि कही वे स्वयं न सिसक पडें। तब आनन्द एक हाड-मास, रक्त और मज्जा का कठपुतला बनगया था, जिसमें सोचने की शक्ति नही थी। वह उस कवि के समान था, जिसकी कल्पना के पंख झुलस गये हो ! भविष्य उसके सामने शून्य था। विश्व विद्यालय का जीवन जैसे युगो के बाद की चीज हो। उसे तो केवल इतना याद था कि उसे इलाहाबाद पहुँचना है। बस।

घर और पास-पडोस के लोगो से विदा लेकर जब स्टेशन के लिये, एक बक्स के साथ, जो शान्ति की शादी के लिये पहले से खरीदकर रखा गया था, गाडी पर बैठा और गॉव छोडकर ढाक के जंगलो के बीच सुनसान लीक पर बढा था, तब उसके मन में एक हलचल हुई थी और ऑधी-पानी एक साथ आ गया था। उसकी आँखो मे माँ और पिता की भरी-भरी ऑखें घूम जाती थी। उसके चले आने के बाद अब वे रो रहे होंगे। उसे भी बड़ी ज़ोर की रुलाई छूटी थी, लेकिन वह रो नही सका था। पडोस के पुत्तू भैया गाडी जो हॉक रहे थे।—घर पर जाकर कहेंगे नही? और तब तब की कल्पना करके उसने अपने ऑसू रोक लिये थे और बलात् उठती हुई ऑधी को दबा लिया था।

गाडी चलाते-चलाते पुत्तू भैया ने कई बार कुछ कहा था। पर वह

उत्तर नही दे सका था। उसे लगा था, अगर उसने उत्तर दिया भी, तो पुत्तू भैया सुन नही सकेंगे। फिर पुत्तू भैया भी चुप रह गये थे।

गाडी चली जा रही थी। बैलो की घटियाँ, पुत्तू भैया की टक्-टक् अहँ-ऑ और पहियो की चूँचर्र्र्मर्र्र् की समवेत ध्वनि उसे आज जितनी सार्थक लग रही थी और कभी नही लगी थी। पहला पानी बरस चुका था। आकाश में बादल गहरे थे। धीरे-धीरे हिलते पलाश के ऊँचे पेड शाखाएँ हिला-हिलाकर उसे विदाई दे रहे थे। अमराइयो में छोटे-छोटे नंग-धडंग बच्चे मैले-कुचैले झोले लिये हुए बरसाती कीडो की भॉति फिर रहे थे। तालाब के किनारे से गाडी निकली, तो वह वर्षो पीछे लौट गया था। लडकपन के खेल, हुडदंग, गहरी-लम्बी डुबकियाँ, कपडो की सफाई और यदा-कदा मारपीट आदि सभी जैसे कल की चीजें हो। उसका मन हुआ था कि भैया से कहे—'भैया, ज़रा गाडी रोको। एक बार तलवा मे नहा नही लेने दोगे ?' तालाब के पास बडे पुराने विशालकाय बरगद के नीचे हार मे चरने के लिये जाती हुई गायें-भैंसे आदि पशु जमा हो रहे थे। दो-चार मिनट मे ही लोखई चरवाहा उन सबको हॉक ले गया होगा। उस विशाल भीड में उसने अपनी भारी भरकम कल्लो को खोजना चाहा था। चाहा था, अगर दिखाई पड जाय, तो वह उतरकर एकबार उसकी पीठपर हाथ फेरेगा। थोडासा दुलार करेगा। पर वह दिखाई नही पडी और गाडी आगे बढ गयी थी।

स्टेशन के पास पहुॅचकर पुत्तू भैया ने कहा था—"छुट्टियो में आते रहना अन्नू। गॉव के और लड़को की तरह मत हो जाना। शहर अच्छा जरूर होता है, लेकिन अपना गॉव तो फिर अपना ही होता है। पता नही, रामू मामा के यहॉ से क्यो नही आया ! अच्छा अन्नू, अपना रामू तो स्कूल भर के दसवें दर्जे के लडको में औव्वल आया है—उसे तो वजीफ़ा मिलेगा।

"हॉ भैया, मिलना तो चाहिये।" कहकर वह ख़ामोश हो गया था।

स्टेशन पहुॅचकर टिकट लेने के बाद, प्लेटफ़ार्म पर भैया से कुछ देर बातें होती रही थी। आनन्द को लगा था कि उसके मन का ज्वार अब

शान्त हो गया है और वह स्वस्थ है। गाडी आयी। "छोटा-सा स्टेशन। छोटी-सी भीडभाड और छोटा-सा कोलाहल। दो-तीन डब्बे देखने के बाद वह एक डब्बे में जगह पा गया था। खिडकी के पास खडे भैया से जब वह घर आदि और खासकर रामू का ध्यान रखने को, क्योकि रामू पढ़ने में जितना तेज़ था मारमीट में उतना ही हातिम भी था, कह रहा था, तो पता नही किस प्रसंग में या शायद बिना किसी प्रसंग के पुत्तू भैया ने कह दिया था— "एक बात और अन्नू। तुम्हें पता नही होगा, मन्नो ने कल से खाना नही खाया है। उस बेचारी को तो दिन-रात रोते ही बीता है। तुम उससे चलते समय मिले थे कि नही? नही मिले ओः बडी गलती की तुमने। अच्छा, चिट्ठी-पत्री लिखते रहना।"

गार्ड ने सीटी दी। गाडी खिसकी। भैया ने उसके साथ चलते हुए अपनी बात जारी रखी— 'तन्दुरुस्ती का ख्याल रखना। मन लगाकर पढ़ना। ज़रा सावधानी से जाना। तुम्हारे ऊपर ही तुम्हारा बक्सा रखा है। समय बडा बुरा है।

फिर वे रुक गये थे। आनन्द ने खिडकीके बाहर सिर किये हुए धीरे-धीरे उसका जाना भी देखा था। पर वह सोच कुछ दूसरा ही रहा था। अपनी गलती के विषय में। तब तक सोचता रहा था, जब तक अचानक डब्बे में एक नीलाम करनेवाला आकर अपने बहुत ही तीखे और विचित्र स्वरो में नही चिल्ला उठा था—"भाइयो और बहनो ··· !"

"आनन्द, क्या बात है?" तभी महेश ने आकर उसे चौंका दिया।

"कुछ नही"। जैसे उसे एक धक्का लगा था। वह नही चाहता था कि कोई उसे इस स्थिति में देखे। दूसरो से क्यो, वह सचमुच अपने से भी छिपना चाह रहा था।

"तो यह अलख-सी क्यो जगाई जा रही है ? जानते हो, ग्यारह बज गये !"

"यूँ ही, नीद नही आ रही थी । कुर्सी पर बैठ गया ।"

"और कुर्सी पर नीद आजायगी । क्यो ?" महेश पास आ गया । "अच्छा, क्या बात है आनन्द ? आज तुम खोये-खोये से क्यो हो ? सुबह तो नही थे ऐसे । कहीं कुछ हो गया है क्या ?"

"होने को क्या है महेश ! और होगा भी तो क्या ? मेरे लिये होना-न-होना सब बराबर जो है ।" आनन्द ने मुँह पर हथेलियाँ रगडते हुए कहा ।

महेश को लगा कि बात कही-न-कही गहरी है ।

"बस, ऐसी ही बातो पर तो मुझे गुस्सा आता है आनन्द । मैंने लाख बार समझाया कि सुन्दर का साथ मत करो । उसके स्क्रूज़ ढीले हैं । लगता है तुम्हे भी ले डूबेगा । वह झक्की फिलासफर जो ठहरा ।"

महेश ने वातावरण हल्का बनाने की कोशिश की ।

"उससे तो भेंट ही नही हुई इधर ।" आनन्द ने कुर्सी छोड दी और सामने की खिडकी से दूर अँधेरे में कुछ खोजना चाहा कि एकाएक महेश ने उसके कन्धे पकडकर उसे पलंग पर ढकेल दिया—"अच्छा तो फिर सोओ ।" और अपने कमरे की ओर चला गया ।

बिस्तर पर तिरछे पड़े-पडे उसने चारपायी खीचने की आवाज़ से जाना कि महेश ने अपनी चारपायी दरवाज़े के सामने कर ली है । फिर कुछ देखने के लिये उसने सिर घुमाया । महेश सचमुच बिना बत्ती बुझाये लेट गया था । आनन्द ने भी आँखें बन्द करके सोना चाहा । लगा, पलको पर कुछ चुभ सा रहा है । तब उसने बत्ती बुझा दी फिर वह लेट रहा । पर नीद कहाँ थी ? भटके हुए मन ने भूला रास्ता पा लिया था और व्यतीत उसी पर चला जा रहा था ।

वह इलाहाबाद आया। नाम लिखाया, जल्दी-जल्दी लोगो से परिचय बढ़ाया और दोस्ती की। अध्यापको तक से उसने संकोच छोडकर ट्यूशनों के लिए कहा और फीस माफ़ कराई। फूफा ने भी उसकी थोडी-बहुत मदद की और तीन-साढ़े-तीन महीने के बाद साठ रुपये के ट्यूशन उसके हाथ में थे। छै महीनो से ही उसने नगर की नस-नस पहचान ली थी। उसका खून देख लिया था। उसकी नाडी की गति परख ली थी। जिस दिन उसके ट्यूशन साठ पर पहुँचे थे, उस दिन पहले पहल उसका इलाहाबाद से कुछ लगाव हुआ था। उस दिन पहली बार उसके मन को एक सतोष हुआ था। एक आशा बँधी थी कि हॉ, अब वह प्रयाग मे रह लेगा। उस दिन उसे ऐसा अनुभव हुआ था, मानो वह वर्षो से इलाहाबाद में रहता आया हो और आगे भी रहेगा।

उन्ही दिनो उसने अपनी बुआ के घर में एक परिवर्तन देखा था। रात को ट्यूशन से लौटते या कभी घर में रहते ही उसने कुछ फुस्फुसाहट सुनी थी। बुआ की आवाज़ में फूफा की आवाज़ दब जाती थी। बात एक ही थी। बुआ एक ढंग से सोच रही थी, फूफा दूसरे ढंग से। विजय अधीरता की हुई। आखिरकार उसने बुआ का घर छोडकर युनिवर्सिटी के करीब आठ रुपये पर एक कमरा ले लिया। बी० ए० तक वह वही रहा था। बी०ए० फ़ाइनल मे ही उसने रानी का ट्यूशन किया था और दूसरे वर्ष ही वकील साहब का विश्वासपात्र बनकर इस बँगले में आ गया था। और अब तो जैसे इसी परिवार का सदस्य हो। ' मदन वकील साहब के मित्र का पुत्र था पहले यहॉ रहता था। और यही एक दिन राज से परिचय हुआ, जो रानी की मौसी की लडकी है। '' राज ' राज राज। एक उतरा हुआ चेहरा ' दो पुरनम ऑखें। गालो पर दो-एक आँसू, जैसे अंगारो पर शबनम तडप उठे। '' अब तो सो गयी होगी। ' कुछ सिसकियॉ कुछ भरी-भरी आवाजें ''' बी० ए० करने के बाद तीन महीने की एक नौकरी' ''। मन्नो का विवाह ''' रमेश का लखनऊ में प्रवेशन। हर महीने तीस-पैंतीस का मनीआर्डर

एम० ए० में एक प्रकाशक के यहाँ कोर्सबुक लिखने का काम । नीरू का ट्यूशन 'राज की निर्मल हँसी' दुग्ध-धवल दाँतों की पंक्तियाँ। कुछ छुटपुट तसवीरें''कुछ बिखरी-बिखरी घटनाएँ। जब वकील के ड्राइंगरूम की दीवारघड़ी अचानक कराह सी उठी—एक''''दो''''चार'''सात ग्यारह बारह और उसकी शांतिमय ध्वनि बँगले के सुनसान वातावरण में धीरे-धीरे गुम हो गयी तो उस समय आनन्द सो गया था। बन्द पलकें, एकहाथ माथे के ऊपर और दूसरा सीने के ऊपर होता हुआ चादर पर था। पैर एक के ऊपर एक''' और साँस एक नियम से चल रही थी।

२

पता नही कितने दबे-सधे पैरो आकर आनन्द ने कमरे का ताला खोला और हाथ की पुस्तक मेज पर रखकर वह कुर्सी पर बैठ गया। फिर उसने मेज़ पर रखी 'भारतीय संस्कृति'-पुस्तक उठायी। तिरंगा आवरण आकर्षक अक्षर ˙ कपडे की जिल्द छै सौ पृष्ठ डिमाई अठपेज़ी साइज ˙ ··· बढिया छपाई ''अच्छा कागज ····˙ लेखक कृष्णप्रकाश ˙ कृष्ण-प्रकाश ·· कृष्णप्रकाश। एक रोशनी ˙ एक काला भूत जुगुनुओ की चादर ओढे। भरा हुआ चेहरा, जैसे ज़िन्दा गोश्त गालो में दबा हो; ऊबड-खाबड। फैली हुई मोटी भद्दी नाक, जैसे शिकारी कुत्ता शिकार सूँघता हो। हरदम मुस्कराते हुए मोटे मोटे ओठ, जैसे खून पीकर ओठो पर तृप्ति की जीभ फेर ली गयी हो। केवल पॉच फुट का शरीर और उसके ऊपर रखी हुई छोटी-सी गोल खोपडी। चमकती ऑखें और ऑखो पर पतली कमानी का चश्मा। एक उठा हुआ मोटा तगडा हाथ। हाथ में नोटो का बण्डल। कुछ झुके हुए मुलायम कमज़ोर हाथ। हाथो में कागजो का ढेर और कागज़ो में पसीना, ठण्डी सॉसें, परिश्रम, एक लाचारी, एक बेबसी ˙ ˙। पास-पास सिमटे हुए बारीक मोती, श्यामल मोती ˙। घबडाकर उसने मुखपृष्ठ पलट दिया—भूमिका ˙ लेखन-कार्य ˙। सरसरी ऑखे दौडाता हुआ वह अपने नाम पर आकर टिक गया ····· । 'पुस्तक लिखने मे श्रीआनन्दकुमार की सहायता को कभी नही भुलाया जा सकता। मुद्रण के योग्य पाण्डुलिपि तैयार करने और उसी समय उसमें यथास्थान आवश्यक परिवर्तन और परिवर्द्धन करने में उन्होने जो परिश्रम किया है, वह सराहनीय है। अपनत्व की सीमा में धन्यवाद मात्र देकर मैं उनका महत्व घटाना नही चाहता।'

एक रोष '' कुछ फूहड गाली देने का मन ˙ ···· । तभी एक कागज़ ··· कुछ पक्तियॉ, एक आने का टिकट ······कॉपते हाथो किसी के हस्ताक्षर ··· ।

तीन-चार पंक्तियों में परिश्रम बिक गया, रात-रात भर का जागरण बिक गया, स्वाभिमान बिक गया और भविष्य का एक उज्ज्वल किनारा उसमें उलझकर नीलाम की बोली पर चढ गया !

उसने पुस्तक मेज़ पर फेंक दी। वह सरककर ज़मीन पर जा रही। आनन्द की फिर इच्छा ही नही हुई कि उसे उठाये। कुर्सी उसने खिडकी की ओर घुमा ली। जिसको देखो वही अपना उल्लू सीधा करने के चक्कर में है। डाक्टर साहब का काम छोडा। डाक्टर साहब अलग नाराज हुए। और... पता नही ये लोग दूसरो के भविष्य के प्रति इतने ईर्ष्यालु, इतने संकुचित, और इतने कृपण क्यो होते है ! लेकिन कृष्णप्रकाश ने इस बार तो वादा भी किया था कि नाम देगे। आज सुबह वह कितना खुश था ! जब वह कृष्ण-प्रकाश के यहाँ गया और उन्होने कहा कि पुस्तक तैयार होकर आ गयी, तब वह कितने उल्लास और कितनी उत्सुकता से भर उठा था ! आज से, करीब तीन हज़ार पृष्ठ दूसरे के नाम से लिखने के बाद, भले ही वे पेज कुंजियो और प्रश्नोत्तर के हो, उसके लेखक-जीवन का श्रीगणेश होग । अब उसे काम की कमी नही रह जायगी। वह किसी भी प्रकाशक से बेहिचक काम पाने का अधिकारी हो जायगा। तभी कृष्णप्रकाश ने नौकर से कहा कि देखो—अभी दफ्तरी जो किताबें दे गया है, उनमें से एक उठा तो लाओ। पुस्तक आयी। लपककर उसने अपने हाथो में ली। दो मिनट तक वह आवरण-पृष्ठ निहारता रहा था। कितने प्रेम से देख रहा था वह अपने परिश्रम को, अपनी महत्वाकांक्षा के शिशु रूप को। तभी कृष्णप्रकाश ने कहा था—"आनन्दजी आपको इस पुस्तक में काफ़ी परिश्रम करना पडा है। मैंने सोचा है कि इसका पारिश्रमिक आपको डेढ़ से बढाकर दो रुपया पेज दिया जायगा। उस हिसाब से आपके तीन सौ और होते है। कहिये तो अभी चेक काट दूँ, या फिर आकर ले जाइयेगा ?"

"एक बात तो है, आवरण आपने बडा आकर्षक लगाया है।" उसने झुलसकर कहा।

"अन्दर कागज़ और छपाई भी मँहगी है। मेरा काफ़ी खर्चा पड गया है लेकिन तडक-भडक तो आवश्यक है ही। दिल्लीवालो की पुस्तकें आप नही देखते ? और हॉ, आगे से आप जो भी लिखेंगे, उस पर भी आपको यही दिया जायेगा।"

तभी उसने मुख पृष्ठपर दृष्टि डाली। ····अयँ! वह आसमान से नीचे गिर गया। उसे लगा था कि उसका दिल बैठा जा रहा है। एक बार तो कुछ भी नही दिखाई दिया था। उसने केवल कृष्णप्रकाश की ओर देखा था।

कृष्णप्रकाश शिष्टाचार भूल मेज पर पैर रखे सिगरेट पी रहा था। आनन्द की दृष्टि पर उसने छत की कडियो की ओर देखते हुए धुआँ छोडा और फिर वह बोला—

"असल बात यह है आनन्द जी कि पुस्तके या तो प्रकाशन की प्रतिष्ठा, उसके प्रसार, प्रचार के आधार पर बिकती हैं, या फिर लेखक के नाम पर। और आजकल का समय—आप देख ही रहे है कि दुनियॉ नाम के पीछे दीवानी है। मै क्या करूँ, यह समय ही ऐसा है कि लोग बस नाम के पीछे दौडते हैं, मैटर तो देखते नही। इस स्थिति में अगर प्रकाशन बच्चा हो और लेखक भी अपरिचित, तो पैसा लगाकर पुस्तक स्टाक में सडाने से क्या लाभ ? मेरा पॉच हज़ार से ज्यादा इस पुस्तक में लग गया है। पहले मैं ज़रूर सोचता था कि आपका नाम दूँ, लेकिन फिर पुस्तक के भविष्य की ओर भी देखना पडा!"

"लेकिन बात तो कुछ दूसरी ही हुई थी आप से और आप ने भी ··।"

उसके गले में थूक सूख रहा था।

"स्वीकार कर लिया था। यही न ? लेकिन बताया तो कि पुस्तक का जीवन देखते हुए मैं लाचार था। फिर आपको क्या ? देखिये, मैं दूसरे प्रकाशको से ज्यादा आप को पैसा भी तो देता हूँ और जहाँ आपने इतना लिखा, वहाँ पॉच-छै सैं पेज से आपका क्या बनता-बिगडता है! हाँ, अब आप डिग्री क्लासेज़ के लिए एक पुस्तक लिखें। उसे मैं एडवान्स-रायल्टी पर ले लूँगा।

उससे आपको काफ़ी लाभ होगा। पैसा और मार्केट-वैल्यू दोनों ही मिलेंगे। हाँ गोपी बाबू, ज़रा आनन्द जी का हिसाब तो देखो। फ़ाइनल-पेमेण्ट कर दूँ। कैश-बाक्स में रुपये हैं या नही, नही तो चेक काट दूँ। आजकल पैसो की तो ज़रूरत रहती ही है; क्या इनको, क्या मुझको। खैर, मैं तो कुछ प्रबन्ध करूँगा ही।" आनन्द की ज़बान पर ताला लग गया था। वह क़ानून का भी तो कोई सहारा नही ले सकता। फिर ये चिकनी-चुपडी बातें!

"और हाँ आनन्द जी, परसों कुछ मित्रो से बातें हो रही थी। एक मासिक पत्रिका निकालने की योजना बन रही है। शायद दो-तीन महीने में प्रारम्भ हो जाय। क्या ख्याल है आपका ?" सिगरेट ऐशट्रे में डाल वह पैर नीचे कर मेज़ पर झुक गया।

"अच्छा तो है।"

"हाँ, सम्पादक आदि के विषय में भी बात उठी थी। तभी मुझे आपका ख्याल आ गया। मैंने कहा—आप लोग उसकी चिन्ता न करे। एक बहुत ही योग्य आदमी मेरे पास है, जो आपकी पत्रिका को चन्द महीनों में ही चमका देगा, चमका।"

आनन्द जड हाथो में पुस्तक सम्हाले रहा। और देखने की उसकी हिम्मत नही हुई। तभी गोपी बाबू ने लाकर हिसाब रख दिया। सब ले चुकने के बाद एक-सौ उन्नीस रुपये होते थे। कैशबाक्स से उसने अस्सी रुपये निकाल कर कहा—"अस्सी दिये जा सकते हैं। वैसे रुपये हैं, लेकिन अभी दफ्तरी आता होगा और फिर कागजवाला।"

"अच्छा-अच्छा ये रखो।" ड्रार से चेकबुक निकालता हुआ वह बोला।

चेकबुक निकालकर उसने तीन सौ रुपये का चेक काटा और आनन्द की ओर सरकाता हुआ बोला—"ये लीजिये आनन्द जी। बाकी सौ रुपये आप हफ्ते-दो-हफ्ते में ले जाइयेगा या अगर खास काम हो तो अभी कहिये ...।"

आनन्द वहाँ किसी तरह रुकना नही चाहता था। उसे घृणा हो रही थी

इस मनुष्य से। उसका मन हो रहा था कि वह उठे और अपनी अँगुलियो से कृष्णप्रकाश का गला जकड ले और तब तक कसता जाय, जब तक उसकी आँखें न निकल आयें और शरीर ढीला न पड जाय ! उसे लगा, सचमुच उसके अन्दर ऊपर से नीचे तक एक सनसनाहट दौडती जा रही है। वह खुद घबडाया सा था। वह जानता था कि भूले-भटके आ जानेवाले क्रोध पर उसका अधिकार नही रहता। उसके सामने उस रिक्शेवाले का चित्र घूम गया जिसको उसने एक चाँटा जमा दिया था और दूसरे ही चाँटे में उसका मुँह खून से भर उठा था। फिर उसके बाद भी परेशानियाँ। वह सोचने लगा कि अब उठकर चल देने में ही उसका और कृष्णप्रकाश दोनो का कल्याण है। अत चेक पुस्तक में दाबकर उठते हुए उसने कहा—"नही, ले लूँगा फिर कभी आकर। लेकिन एक बात बता सकते है आप ?"

लाल हो रही आँखें और पसीने से चुचुआये, तमतमाये मुख पर दृष्टि पडते ही कृष्णप्रकाश को कुछ पूछने का साहस नही हुआ। उसने केवल भौं-सहित मुँह ऊपर उठा दिया।

"आपके बाप भी क्या इसी तरह लेखक बने थे ? आप क्या समझते हैं कि इस तरह आप सचमुच उस प्रतिष्ठा को हस्तगत करने मे सफल हो सकेंगे जो आपके मन में है ? आखिर आप कब तक दूसरो के परिश्रम और दूसरो की लेखनी पर अपने नाम का झण्डा गाडेंगे ?"

कृष्णप्रकाश चौंका था। एक क्षण के लिए उसके मुँह पर कुछ आडी-तिरछी रेखाएँ पडी थी। पर वह खेला हुआ इन्सान था; व्यवहार-कुशल। और जब इन्सान पैसे को अपना बाप बना लेता है तब साधारण बात तो दूर, बडे-से-बडा अपमान भी सहन करना व्यापार का ही एक लाभदायक नुस्खा समझ लेता है। अतः वह बेहयायी की हँसी हँस कर बोला—

"मैं जानता था आनन्द जी कि आपको रोष होगा। लेकिन मैं क्या करता ? मैं इतना बडा प्रकाशक या पूंजीपति भी तो नही हूँ कि पाँच-छै

हजार की रकम यूही लगा दूँ कि चलो भाई दस-पन्द्रह वर्षों में निकलेगी ही। यहाँ तो आज का रुपया कल नही निकला, तो सब ठप्प नही हो जायगा ! और प्रतिष्ठा की जो बात आपने कही, आप विश्वास कीजिये, मेरे मन में कभी वह उठी ही नही। हॉ, पैसा निकलने की जो बात है, वह कभी मैं आपसे छिपाता नही।"

आनन्द साइकिल की कुंजी देख रहा था, कहॉ रख दी उसने।

"बैठिए ! बैठिये !! आनन्दजी आप खडे क्यो हैं ? बैठिये ना ? अरे शर्मा जी ऊपर जाकर दो गिलास लस्सी तो बनवा ले आओ। देखिए, पान भी लेते आइयेगा। आनन्दजी, यूँ आपका क्रोध जायज है। मैं इससे इन्कार नही करता। शायद मैं आपकी जगह होता तो मुझे आपसे ज्यादा क्रोध आता और शायद मैं मर्यादा भी खो बैठता। लेकिन आप तो शिक्षित और समझदार हैं। अतः यह तो आपकी बडाई है कि आप इतना क्रोध भी पिये जा रहे हैं। मैं इतना जानता हूँ कि आप की जगह कोई दूसरा होता, तो ज़रूर गाली-गलौज कर बैठता। ताज्जुब नही हाथापाई कर बैठता और नही तो बाज़ार भर में बदनामी ही करता फिरता। यह तो आपकी शोभा है या कहिये कि उदारता कि आप मुझे क्षमा किये दे रहे हैं। लेकिन आप ही बताइये, मैं क्या करता ? मैं भी तो मजबूर था 'अरे आप बैठे नही। बैठिये भी तो ! लस्सी पी ली जाय और अगर आपको कोई काम या जल्दी न हो तो चलें एक शो मार दिया जाय। काफ़ी दिन हो गये, पिक्चर नही देखा। ये इण्डियन पिक्चर बनाते भी तो नही ढंग से। क्या देख रहे हैं आप ? कुछ गिरा क्या ?"

मजबूर ' मजबूर ' मजबूर। आनन्द के दिमाग में पुनः फुलझडियाँ छूटने लगी। तभी उसे कुंजी दिखाई दी। झुककर उठायी और—"नही मैं जा रहा हू।" कहता हुआ सीढियाँ उतर आया।

"अरे सुनिये तो आनन्द जी। 'आनन्द जी।" 'कृष्णप्रकाश हडबडाकर कुर्सी पर से खडा हो गया। पर तब तक वह साइकिल पर बैठ गया था।

पीछे से आवाजें आती रही ।—'सुनिये तो आनन्द जी !" आनन्द जी !"
पर वह रुका नही ।

रञ्जना के बँगले के पास से जब वह गुजरा तो उसका मन हुआ कि वह उससे जाकर मिले और सारी बात कहकर हल्का हो ले। पता नही उसको रञ्जना पर इतना विश्वास क्यो है ? पहले तो इतना विश्वास किसी लडकी पर नही होता था। लेकिन राज ? राज जैसे एक घटा थी, जो उमडी तो ऊपर छाकर रह गयी। और उसके मन में उडनेवाली धूल अपने आप बैठने लगी । राज जैसे एक शीतल ज्योत्स्ना थी, जिसमें स्नान करके वह अपनी थकान, अपना परिश्रम भूल जाता है । राज जैसे वह शबनम थी, एक फूल थी, एक प्राकृतिक दृश्य, जिसमें उसकी कल्पनाएँ भटक जाती थी। वह एक आस्था है, एक विश्वास है, सहानुभूति और स्नेह का आगार है, जिससे वह सब कुछ निसंकोच कह लेता है और समझता है कि इतनी बडी दुनिया में उसे समझनेवाला शायद उसके सिवाय कोई नही है। लेकिन उस दिन की बात है। ··· 'आज तो एक सप्ताह हो रहा है। क्या सोचती होगी बेचारी ? जाने का मौका भी तो नही लगा—और वह आगे बढ़ आया था।

आनन्द बडी देर तक ऐसे ही बैठा रहा। खिडकी के सामने दस कदम पर एक युक्लिप्टस का पेड था, लम्बा ऊचा-सा। और उससे हटकर चहार दीवारी से लगा बाटल पाम। फाटक के अगल-बगल में शंख के आकार में कटी मोरपंखी की झाडियाँ, जिनके बीच से होकर लाल ईंटो का रास्ता दोनो ओर गोलाई में घूमकर पोर्टिको में मिल गया था। बीच की गोलाई तिरछी ईंटो से बनी थी। करीब दो फुट तक गुलाब की क्यारियाँ। फिर हल्की मुलायम घास और बीच में—बिल्कुल गोलाई में—कमर तक ऊँचा एक सीमेन्टेड चबूतरा, जिस पर पोर्टिको में बीच से रास्ते के अन्त में चढ़ने के लिये तीन सीढ़ियाँ। फाटक के पास ही एक पोस्टबाक्स खडा था। एक आदमी एक बच्चे को गोद में लिये आया और कुर्ते से दो-तीन चिट्ठियाँ निकालकर बाक्स में डालने के लिये हाथ बढ़ाया ही था कि बच्चे ने हाथ

बढ़ा दिया—'अम्' । आदमी ने चिट्ठियाँ उसके हाथ में दे दी और उसे गोद से उतार दिया । बच्चे ने पत्र डालने की कोशिश की, लेकिन पत्र नही गये तो आदमी ने एक खुद लेकर डाल दिया और दूसरा बच्चे का हाथ पकड़ कर छोड दिया । तीसरी चिट्ठी बच्चे ने खुद ही डाल दी और फिर वह पोस्ट-बाक्स के छेद में हाथ डालने की कोशिश करने लगा । तभी वह 'चलो चिट्ठी उर गई ।' कहकर उसने बच्चे को उठा लिया । फिर वह चला गया । तभी बगल के किसी बँगले से छोट-छोटे तीन बच्चे खेलते हुए आते हैं और गुलाब तोडते हैं । अचानक सडक पर आते हुए भरोस की-सी आवाज गूंज उठती है । 'ए लडको !' बच्चे चौंके, घूमकर देखा और जल्दी-जल्दी चार पाँच फूल तोडे और—'आ गया—आ गया · ···भागो !' और भाग गये ।

आनन्द मुसकरा उठा । उस समय उसे अचानक भरोस का आना कुछ अच्छा नही लगा था ।—'अरे दो-चार फूल ही तो तोड लेते ।' अचानक उसे महेश का ख्याल हो आया । उसे कुछ झुंझलाहट भी हुई ।—'सुबह से गया है पट्ठा, अब तक पता नही कहाँ घूमता होगा ! दिन ही कितने रह गये हैं उसकी परीक्षाओ के !' वह चाह रहा था कि महेश आये, तो जी कुछ तो बहले । भरोस आ गया था । उसने भरोस से स्टोव जलाने को कहा और पानी चढ़ा देने को कहकर खडा हो गया । मेज़ के पास गिरी हुई पुस्तक उसने मेज पर रखी और फिर वह बाहर निकल आया । बाहर आकर वह चबूतरे के किनारे पर बैठा ही था कि महेश आ गया । आनन्द को देखते ही बोला—"आनन्द, कोई आया तो नहीं था ?"

"नही तो ।" चबूतरे से उतरकर उसने गुलाबो के पास जाकर एक फूल तोडते हुए कहा । महेश ने साइकिल उठाकर बरामदे में रखी और घूमकर देखा तो बोल उठा—"अरे वाह भरोस, तुम्हारा भी जवाब नही । क्या मौक़े से कसरत कर रहे हो स्टोव के साथ । मेरे लिये भी पानी चढ़ा देना ।" कहता हुआ आनन्द के पास आ गया ।

"आनन्द, आज रञ्जना मिली थी ।"

"कहा ?"

"यूनिवर्सिटी में। उसे विषय मिल गया है।"

"क्या है ?"

"याद नही रहा, कुछ मध्यकालीन कविता पर है।"

"कुछ कह रही थी ?"

"यही कि इधर दिखाई नही दिये। कहाँ हैं ? और हाँ, माताजी ने तुम्हें बुलाया है। अच्छा, तुम गये क्यो नही उसके यहाँ ?" महेश ने आनन्द के हाथ से फूल लेते हुए कहा।

"गया तो था उस हफ्ते।"

"अरे मैं उस हफ्ते की बात नही कर रहा हूँ। हाँ, क्या बात हो गयी थी उस दिन ! वह कह रही थी कि आनन्दजी उस दिन बहुत नाराज़ होकर चले गये।"

"कुछ और बताया ?"

"नही। मैंने लक्ष्य किया, वह बता नहीं सकी। यूँ बात हँस-हँसकर कर रही थी। लेकिन मालूम तो हो ही जाता है।—मैंने पूछा कि क्या बात हुई, तो धीरे से उत्तर दिया—उन्ही से पूछ लीजियेगा। क्या बात थी ?"

"बता दूँगा। यूँ बात कुछ नही थी।"

"आनन्द, आज तो तुम कृष्णप्रकाश के यहाँ जानेवाले थे न ?"

"गया था।"

"पुस्तक छप गई ?"

"हाँ, ले भी आया हूँ।"

"कहाँ है, जरा मैं भी देखूँ।"

"अन्दर मेज़ पर रखी है।"

"कैसी छपी है ?"

"अच्छी छपी है ?"

तभी भरोस की आवाज़ आयी—"पानी हो गया है। चाय डाल दूँ ?"

"डाल दो।" महेश ने उत्तर दिया और आनन्द से कहा—"तुम तो सूत्र शैली मे बोल रहे हो आज। क्या बात है ?"

"कुछ भी नही"—आनन्द कमरे की ओर बढ़ गया।

दोनो कमरे में आ गये। मेज पर पुस्तक रखी थी। आनन्द पलंग पर लुडक गया और महेश ने लपककर पुस्तक उठा ली।

"हाँ यह वर्क है। ऐसी चार किताबें और लिख दो, रग आ जाय।"

"अन्दर तो देखो।"

"महेश ने कवर पलटा। पुस्तक हाथ से छूटते छूटते बची—अरे आनन्द !"

आनन्द चुप था।

"आनन्द ! ...... 'आनन्द ! यह तो सरासर धोखेबाजी है। साला, बदमाश, हरामखोर, धोखेबाज।" महेश चिल्लाया।

आनन्द खामोश था, वह निर्निमेष दृष्टि से महेश को देख रहा था।

"तुमने मारा नही दोगले के बच्चे को। पचास जूते मारने चाहिये थे !"

"जाने दो महेश ! मेरी किस्मत मे यही लिखा है।"

भरोस ने चाय बनाकर रख दी थी। दीवार की आलमारी से कप उठाकर उसने ढाल दी और एक स्टूल पर रख दोनो के बीच कर दिया।

महेश कुर्सी पर बैठ गया। अठन्नी निकालकर उसने भरोस को देते हुए कहा—"जरा चार समोसे और दो आने की दालमोट तो ले लो,

लपककर।"

भरोस चला गया।

"लेकिन आनन्द इस पुस्तक के लिए तो तुमने अपनी परीक्षाएँ नही देखी, दिन नही देखा, रात नही देखी, तन्दुरुस्ती नही देखी। लेकिन क्या करोगे! जब यूनिवर्सिटी के डाक्टर अपने छात्रो का खून पीते हैं, तब इन सबकी तो बात हो दूसरी है।" एक क्षण रुककर महेश ने फिर कहा—"डाक्टर मेहरोत्रा को जो पुरस्कार मिला था न, प्रान्तीय सरकार से, कुछ दिया था तुम्हें ?"

"अपना सर दिया था।"

"डाक्टर साहब के लिये भी तो तुमने, मेरा ख्याल है एक हजार पेज से कम नही लिखे होगे ?"

"हॉ और क्या ?"

"अब बताओ। सच आनन्द, कृष्णप्रकाश आदि से तो ज्यादा गुस्सा मुझे इन तथाकथित डाक्टरो पर ही आता है। इनकी भी कोई नैतिकता है ?"

"तुम भी महेश नैतिकता की बात करते हो! नैतिकता पैसे की जरखरीद जोरू होती है जोरू। अभी परसो मिले थे। प्रान्तीय सरकार से किसी इतिहास की पुस्तक का अनुवाद का काम लाये हैं। करीब एक हजार पृष्ठो का है। और पॉच छै रुपये पृष्ठ मिलेंगे। कहने लगे—खाली बैठे हो सौ-पचास पेज कर दो न ?"

"अब बताओ, छै रुपया पेज तुम्हें मिलता है। तुम दो-तीन विद्यार्थियो को लगा लो। और दो ही रुपया पेज उन्हे दे दो। उनका भी काम चले। अरे लड़के ट्यूशन करते हैं, थोड़े समय वाला काम करते हैं, उसी भॉति तुम्हारा काम करेंगे। लेकिन नही, यहाँ तो हर्रा लगे न फिटकरी, रंग चोखा आये!"

"और फिर कोई काम भी निकले तो ठीक है कि भई कुछ काम तो निकलता है। एक दिन एक लडके की फ़ीस के लिये कहा, तो हीला-हवाला करने लगे और बाद में अपने गाँव के किसी लडके के लिये वाइस-चासलर तक से मिले।" आनन्द ने कहा।

दोनो कप चाय खतम हो गयी थी। पर भरोस अभी नही आया था। आनन्द ने पतीली की ओर इशारा किया तो महेश ने टोका—"रुको, भरोस को आ जाने दो।"

"अच्छा एक बात बताओ। कृष्णप्रकाश के बडे भाई भी तो बडे भारी गान्धीवादी साहित्यकार है। उन्होने तो छोटी-मोटी कई पुस्तकें सर्वोदय के सम्बन्ध में भी लिखी हैं।"

"हाँ, लिखी तो है"।

"तो क्या वह अपने भाई की करतूतें नही जानते ?"

"जानते क्यो नही ? बडी अर्थप्रधान उनकी दृष्टि होती है। सर्वोदय और गान्धीवाद तो आड की टट्टी है, शिकार खेलने के लिये। बढ़िया मकान में रहेगे, बढ़िया मोटर पर चढ़ेगें, नेता या मिनिस्टर आयेगे तो दुम हिलाकर दामाद की तरह घर पर टिकायेंगे। आखिर इन सब में पैसा खर्च होता है कि नही ? पैसो पर ही तो सब ठाठ होता है। भाई के नाम पर चार लोगो से परिचय बढ़ता है। किताबें कोर्स में होती हैं। सरकार खरीदती है।"

भरोस सामान लेकर आ गया था। उसने स्टूल पर दोना रख दिया। पतीली में ढकी चाय उठाकर दोनो कपो में ढाल दी। फिर बाहर निकल गया। बीच मे दुअन्नी लौटाने लगा था, तो महेश ने कह दिया—"ले जाओ।"

महेश ने पुस्तक बीच में दो-तीन बार खोली-मूँदी। अचानक चेक पर नजर पडी। चेक निकालकर उसे देखते हुए उसने कहा—"यह चेक आज ही दिया है ?"

"हाँ" और उसने सारा किस्सा बता दिया।

"लेकिन यह कब तक चलेगा? लोग तो खुद ही समझने लगे हैं कि साला चोरबाजारी करता है।"

"इससे क्या, अरे पैसा कमाकर प्रकाशन बन्द करके वह कोई दूसरा काम करेगा। उसे पैसो से मतलब है, न कि काम से।" आनन्द ने कप रखते हुए कहा।

महेश सचमुच बडा दुखी हो गया था। क्योकि उसने स्वयं देखा था कि पुस्तक मे आनन्द ने एँडी-चोटी का पसीना एक कर दिया था। वह कभी कहता भी कि क्या आनन्द, डेढ रुपये पेज के लिये जान दे रहे हो! तब वह यही कहता था कि रुपयो की बात नही महेश! इस पर मेरा नाम जायगा, इससे मेरे लेखक-जीवन का सूत्रपात होगा। लोग यह जाने भी कि लिखना क्या होता है! और आज ?

महेश को लगा कि आनन्द बहुत गमगीन है। अतः वह बोला—"चलो कही घूम आयें।"

"नही। तुम जाओ, मैं अभी सोऊँगा। मेरा जी अभी ठीक नही है और अभी तो तुम घूमते-घामते लौटे हो।"

"उठो चलो तो" उसने आनन्द की बॉह पकडकर उठाते हुए कहा।

बरबस आनन्द खडा हो गया। महेश ने भरोस को बुलाकर कहा—देखो भरोस, महराजिन से कह देना कि खाना बनाकर इसी कमरे में रख दे। लौटेंगे तो खा लेंगे। यह कमरा भी बन्द कर देना। ताला-कुंजी रखी है।

बाहर आकर आनन्द ने साइकिल में हाथ लगाया तो महेश ने कहा "नहीं, रिक्शे से चलेगे। आओ।" और उसका हाथ पकड़कर ले चला।

फाटक से निकलते ही महेश ने इधर-उधर देखा, फिर सामने से साइकिल पर जाते हुए एक सज्जन से कहा—"साहब, उधर कोई रिक्शा हो

तो भेज दीजियेगा।" और उधर ही दोनों चल पड़े। थोड़ी देर में ही एक खाली रिक्शा आता हुआ दिखाई दिया।

महेश ने टोका और बैठते हुए कहा—"आओ।"

दोनो बैठ गये।

"चलो रिक्शेवाले!"

"कहाँ बाबूजी?"

"पैलेस। ज़रा जल्दी।"

३

उस दिन ' जिस दिन अतृप्त हरीतिमा के अञ्चल में एक अन्धड़ उठा था और लगा था कि सब कुछ बिखर जायगा।

राज बडी देर तक पलग पर पडी सिसकती रही। आँसू गालो पर सूख गये थे। लेकिन हिचकियाँ अभी तक जारी थी। सीलिंग-फैन की सरसराहट में हिचकियाँ उडती रही। उसने जाते हुए आनन्द की पगध्वनि सुनी थी। उसकी इच्छा हुई थी वह उठे, कमीज़ का कालर दोनो हाथो से पकडकर सोफ़े पर बलात् आनन्द को बिठा दे और फिर स्वयं उसकी गोद में बिखर जाय और कहे— ऐसे नही जा सकते आनन्द! कहो, कुछ और कहो जी भर कहो। जिस आस्था पर, जिस विश्वास पर तुमने आघात किया है उसे जर्जर मत छोडो, उसे अधमरा करके मत जाओ। उसका गला घोट दो, उसे ज़हर दे दो आनन्द। उसकी लाश को सीने पर एक घाव की तरह सँजोये मैं जी लूँगी। साँसें भर लूँगी; पर दम तोडते विश्वास की साया में खुद घुट जाऊँगी। आत्मा की पर्तों में छिपा हुआ घाव फूटफूटकर बहता रहेगा। वह सड जायगा और मैं टूट जाऊँगी आनन्द! अपाहिज हो जाऊँगी, अपाहिज।...पर वह उठ नही सकी। आनन्द को रोक नही सकी और उसकी गोद में बिखर नही सकी। आँखो के सामने अँधेरा बढ़ गया था। अँधेरे में जुगनू खो गये थे। उसे लगा, जैसे वह पूरी ताकत से चीख उठा हो और उसकी चीख सुनहरे खण्डहरों मे, उजाड चरागाहो में, मुरझाये हुए कमल की झीलों में, एक भटकी हुई पागल जिप्सी की आत्मा की भाँति पछाड खा-खाकर सिर धुन रही हो। भय से उसकी आँखें पथरा गई थी। बाहर रिमझिम का जल-तरंग बजनेवाला था।

पर अन्दर गालो पर आँसू सूख गये थे। गले में स्वर सूख गये थे। पलको में बहारे सूख गयी थी और ओठो पर गीत सूख गये थे। एक अजीब शुष्कता थी, अनजानी अपरिचित।

पता नही कितनी देर तक वह इसी स्थिति में पडी रही। बाहर से जब माँ के बोलने की आवाज़ उसके कानो में पड़ी, तब वह कुछ सँभली। अञ्चल से मुँह रगडकर पोछा और पैताने पडा 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' उठाकर बीच से खोलकर मुँह पर डाल दिया।

सीढ़ियाँ बगल के कमरे में ·। और उसी कमरे में वह माँ के आने की पगध्वनि सुनती रही, समझती रही। ·अब माँ कमरे में ही हैं। उसकी ओर देख रही हैं। · ·अब उन्होने कुछ कहा· ··· यह हुई पगध्वनि ·· शायद सोता समझकर अन्दर कमरे में जा रही हैं। यह खिडकियो के खुलने की आवाज़ है। · अच्छातो अब · ··· खिडकी खोली है। शायद अब कुछ कहे · यह सरसराहट ···। ओवरकोट उतार दिया है।

"बडा तेज़ पानी बरस रहा है। चलो कुछ तो गर्मी बुझी।"

"गर्मी बुझी। उँह, इन्हे क्या पता!"

"राज! राज! राज! ·· सो गयी क्या? अरे उठो तो। देख, शाम हो गयी है। इस समय भी कही सोया जाता है! तबियत नही खराब हो जायगी! कुछ खाने-वाने का प्रबन्ध भी नहीं किया तुमने। अच्छा प्रमोद की अम्मा ने पकड़ लिया। आने ही नही देती थी। कहने लगी—कौन रोज़-रोज़ आना होता है। चार बार जाओ तो कही एक बार दर्शन देती हो। भई, बडी सीधी है। बातें करो तो मन नही अघाता। प्रमोद का पत्र आया है, शायद कुछ तबियत खराब है उसकी। अच्छा हुआ, मैं चली आई। नही तो यह पानी भला आने देता। घण्टो लग जाते। यह तो कहो, मैं बादल देखकर तेरी बरसाती लिये गयी थी।"

राज धीरे से उठी। दो-एक अंगडाइयाँ ली। दो-एक बार आँखें बन्द

कर झपकाई और उन्हें मलकर पलँग के नीचे पैर लटका लिये।

"मंगल से सुना कि आनन्द आया था बेटी। रोका नहीं ? कितने दिनों से नही देखा है ! एम० ए० क्या पास हुआ, मुँह ही नही दिखाया। घर गया था क्या ?

"पता नहीं" राज को लगा कि माँ की बात उसे अच्छी नही लग रही है।

"पूछा नही ? कितनी देर बैठा था ?"

"कही जाना था। जल्दी में थे। रुके नही। कहा— फिर आयेंगे एक आध दिन में। मैंने रोका भी नही।"

राज जैसे बात ही समाप्त करना चाहती थी।

"अब क्या विचार हैं उसके ?"

"कहा न, कुछ खास बात नही हुई।" स्वर में झुँझलाहट का स्पष्ट आभास था। राज को लगा कि माँ उसके चेहरे पर दृष्टि गड़ाकर कुछ पढ़ना सा चाह रही हैं। फिर कुछ उद्विग्न होकर बोली—"छोटा-मोटा काम करके पब्लिक लाइफ़ बिताने की बात कर रहे थे।"

"पब्लिक लाइफ और कम्पटीशन ?"

"वही जाने।"

राज पलँग से उतरकर बाथरूम की ओर चल दी। उसने समझ लिया कि बातें जल्दी समाप्त होनेवाली नहीं।

बाथरूम से राज जब लौटी तो बरतन खड़कने की आवाज़ से उसने जाना कि माँ रसोईघर में हैं। ड्रेसिंग टेबिल के सामने खड़े होकर उसने एक क्षण अपने को देखा। फिर ओठो पर बल देकर कुछ मुसकराने की कोशिश की और कंघी उठाकर हल्के हाथो दो एक बार बालो पर फिराया। फिर कंघी रख दी और अञ्चल कमर में खोंस, चोटी को हाथों में ले, जूड़ा बनाती

हुई रसोईघर की ओर बढ़ गयी।

महरी जब चौका-बरतन करके गयी तो नौ बज गये थे। बूँदें बन्द हो गयी थीं, पर हल्की-हल्की पड रही थीं। अन्दर बरामदे में माँ लेट चुकी थी। जब तक महरी बरतन रगडती रही, तब तक उससे बातें करती रहीं और फिर रामायण पढ़ने की चेष्टा की थी। महरी के जाने के बाद किवाड़ बन्द करके राज जब लौटी, तो उसने देखा कि माँ की किताब बन्द है और तकिये के पास पड़ी है तथा उन्होने करवट ले ली है। राज को लौट आया जान उन्होने कहा—"तू तो अभी पढ़ेगी। तेरी आँखो में अभी नींद कहाँ ? पर मैं सोऊँगी। मुझे तो नीद लगी है। बिजली बुझा दो और अन्दर जाकर पढ़ो।"

"अच्छा।" राज ने दीवार के सहारे खडे पलँग को माँ के पलँग के समानान्तर लाकर बिछा दिया और आंगन के किनारे आकर एक हाथ सामने की ओर फैलाती हुई बोली—"माँ, पानी तो बन्द हो गया। आँगन में डाल लो न खाट ?"

"अरे नही राज। बादल नही देखती ? ये चैन भी लेने देंगे ! फिर हवा भी आ रही है यहाँ। यही ठीक है।" माँ ने शिथिल स्वरो में कहा।

राज ने कुछ जवाब नही दिया। कमरे से बिस्तर लाकर उसने पलँग पर बिछा दिया। चादर पैंताने डाला। सिरहाने तकिया रखकर थपथपाई और पलँग पर लुढक गयी।—'वाह ! कितनी नमी है आज ! कितना अच्छा लग रहा है ! माँ पढ़ने नही देंगी; नही तो बडा मजा आ रहा है यहाँ।'

चार-छै मिनट तक वह वैसी ही तिरछी लेटी रही। फिर 'उँह' करके घुटनो पर हथेलियाँ बाँधकर एक झटके से उठ खडी हुई। माँ को देखा—वे शान्त भाव से निश्चल लेटी थी। वह चलकर कमरे में आयी। किनारे की अलमारी के सामने पहुँची।—'क्या पढ़ा जाय ?' फिर बिना अलमारी खोले ही पलँग पर पडा हुआ 'हिन्दुस्तान' उठाया। तकिया उठाई। बिस्तर के

सिरहाने दबा 'धर्मयुग' लिया और चलकर ड्राइंगरूम मे पहुँची। बिजली ऑन की, पखा चलाया। दूर से ही सोफ़े के एक किनारे तकिया फेंकी और नीचे बिछे कालीन पर पत्रिकाएँ डाल दी। फिर धम्म से सोफ़े पर बैठ गयी। किनारे तकिया ठीक किया और सोफे पर ही लम्बी हो गयी। एक क्षण को बन्द आँखें खुली तो सीलिंग फैन से टकराई। आँखो-ही-आँखो में उसने पंखे के परो को पकडने की कोशिश की। लेकिन जब असफल रही, तो उस ओर देखते हुए उसने अन्दाज़ से दायें हाथ से नीचे पडी पत्रिकाओ में एक को उठा लिया। वह 'धर्मयुग' था। कवर पर किसी पहाडी युवती का चित्र था। अन्यमनस्क भाव से उसने पृष्ठ पलटे। पहले उसने कविताएँ पढी। कुछ अच्छी भी लगी, पर मन नही रमा। शिथिल हाथो से उसने 'धर्मयुग' नीचे गिरा दिया।

जाने क्यो इतनी सारी देर उसका मन घुटता जा रहा था। अपने से संघर्ष करती हुई वह जिस चीज़ को अपने से दूर रखना चाह रही थी, उसे लगा वही उस पर छाता चला जा रहा है। थोडी ही देर में उसने अपने को बेबस-सा पाया। अपनी इस असहाय अवस्था पर उसे रुलाई भी आगी लेकिन विरोध के सारे-के-सारे सूत्र सँभालते-सँभालते उसके हाथ से निकल ही गये। एक धारा आयी और उसे बहा ले गयी।

महीने भर बाद आज आनन्द आया था। बाहर उसकी सीटी और गुनगुनाने की आवाज़ ने उसे एक अप्रत्याशित सिहरन और पुलकन से भर दिया था। उसे लगा था, मानो वह क्षीण और मधुरध्वनि युगो से उसकी परिचित रही हो। कितना मान, कितने उलहने, कितनी मनोरञ्जक बातें, कितने मीठे व्यग्य और कितने ही प्रश्न एक साथ उसके मानस-पटल पर उभर आये थे। एक झटके से उसने हाथ की क्रोशिया पलँग पर फेंक दी थी। और शरीर पर की साडी यूँही ज़रा ठीक-ठाककर एक हाथ की अंगुलियाँ लम्बी

चोटी में लपेटती हुई ओठो पर बरबस आ गयी मुस्कराहट को चारों ओर बिखेरती सी वह बाहर की ओर लपकी थी।

आनन्द ने किवाड खोले ही थे कि सामने वह हाथ जोड़े खडी हो गयी।

"वाह ! क्या बन्द किवाडो की पूजा हो रही थी ?"

"नही, तुम जो आनेवाले थे। मैं तो समझती थी कि किवाड मुझे ही खोलने पड़ेगे। मगर· · · · ·।"

"मगर मैने पहिले ही खोल दिये। क्यो ?"

उसने उत्तर नही दिया और घूमकर चल दी—"चलो, याद तो आयी आपको।"

पीछे-पीछे चलते हुए आनन्द ने कहा—"नही राज, घर में बात ही ऐसी पड गयी कि रुकना पडा और असल बात यह कि लखनऊ में बडा समय लग गया।"

"और इतना भी समय नही मिला कि ·· ··।" राज ने बात काट दी।

आनन्द जैसे पूर्वनिश्चित वाक्य दुहरा रहा था।

फिर वह हँसा, बोला—"अरे नही राज। सोचा कई बार था। एक पत्र लिखा हुआ अब भी मेरे ट्रंक में पडा होगा; लेकिन · ·· ···।"

"रहने दीजिये। मैं सब जानती हूँ।" उसे लगा था कि उसका सोचा हुआ सब बिखरा जा रहा है। वह सब भूलती जा रही है।

कमरे में पहुँचकर वह कुर्सी पर बैठ गयी और आनन्द सोफे पर।

"क्या जानती हो ?"

"यही कि आप दो दिन से यहाँ पर हैं और ··· ··· ··?"

"तुमसे किसने कहा ?"

जैसे यह झूठ हो।

"मंगल काका ने परसो तुम्हें कटरे में देखा था।"

"अच्छा !"

आनन्द पकड़ गया था। उसने बात घुमानी चाही थी—"मौसी कहाँ हैं ?"

"खन्ना साहब के यहाँ गयी है। देर हुई; आती ही होगी।"

"तुम क्या कर रही थी ?"

"मैं ···? · कुछ तो नही।"

"कुछ तो।"

"यूँ ही लेटी थी।"

"और क्या हाल है ?"

इस बार मुसकराते हुए आनन्द ने उसकी आँखो में अपनी आँखें केन्द्रित करते हुए पूछा था।

'ओः कितनी गहरी दृष्टि थी !' उसे शरम लगी थी। आनन्द की आँखों में दुबारा देखने का उसे साहस नही हुआ था। वह क्या जवाब दे ? उसकी बात का जवाब तो हो भी सकता है। पर उसकी दृष्टि का क्या जवाब है !

तभी आनन्द ने कमीज़ की बटन खोली और बीच में रखी हुई गोल मेज़ पर से अखबार उठाकर हवा की ओर बुदबुदाया—"उफ बडी गर्मी है।"

"अरे !"

सहसा वह उठी। उठकर पंखा चलाया और आकर बैठ गयी।

"बड़ी देर बाद याद आयी ?"

"आई तो। आपकी तरह तो नही हूँ।" वह कुछ शोख होने जा रही थी। सोची हुई बातें गडबड हो गयी थी और उसने यूँ ही लडने की सी ठान ली थी।

"तुम्हारा दिल नही ऊबता राज ? इतने बड़े बँगले में अकेले ···?"

"ऊबेगा भी तो चारा क्या है ! फिर आपको इसकी चिन्ता क्यों हो

रही है !"

अचानक आनन्द उठा और पास आकर उसने पीछे से उसके बाल खींच-कर मुँह ऊपर उठा दिया। बोला—"क्या बात है ? इस तरह की नाराज़गी ! चू चू ।"

उसने झटककर अपने को छुड़ा लिया। जैसे सचमुच नाराज़ होना चाह रही हो। तभी आनन्द ने किनारे की टेबिल पर पड़ा शीशा उठाकर उसके सामने रख दिया और फिर अपनी कुर्सी पर बैठकर वह बोला—"हाँ, उहूँ ! भौंहो पर बल तक तो हैं नही, फिर यह कैसे नाराज़गी ······ ?"

वह हँस पड़ी थी। क्या करती ? हँसी आ ही गयी।

फिर आनन्द को शरबत पिलाने के बाद बातो का सिलसिला बन गया था। दुनिया भर की बातें : भविष्य की योजनाएँ, आनन्द के गाँव का झगडा; शादी के लिये माँ की ज़िद; उसका माँ को समझाना; रॉंज का विचार; उसके रिसर्च का विषय; घर जाते समय ट्रेन की घटना; बेकारी की समस्या; नौकरी के लिये प्रभाव की आवश्यकता; कम्पटीशन की धाँधली; शोभा का विवाह; रामू के इस वर्ष पहाड न जाने का कारण, हिन्दी के आधुनिक उपन्यास और नयी कविता; सांस्कृतिक प्रदर्शन के नाम पर अनाचार; कुछ फ़िल्मी दुनिया की बातें; विश्वविद्यालय के अध्यापको की आलोचना-प्रत्यालोचना तथा शिक्षा और सामाजिक संस्थाओ की दलबन्दी। आदि-आदि। माना कि बातें एक दूसरे से सम्बद्ध नही थी; माना कि उनमें कोई तारतम्य नही था; माना कि उनका स्तर भी कुछ अधिक गम्भीर नही था। वे एक प्रकार से सतही तौर की बातें थी। यह भी माना कि इन तमाम बातो में से अधिकाश केवल बातचीत का सिलसिला बनाये रखने के कारण थी। इससे भी इन्कार नही कि कुछ तो बातें बिलकुल ही बिना प्रसंग और बिना मतलब की थी। पर कितना आनन्द आ रहा था ! कितना अच्छा लग रहा था ! आनन्द कुछ आवेश में बोलता, तो उसका मन होता था बोलता ही रहे। उसके विचारो में कितना सुलझाव और बोलने में कितना

प्रवाह था। दो-एक बार तो वह मुग्ध सी होकर आनन्द के चेहरे पर टकटकी बाँधे बैठी रही थी। उसकी दृष्टि पकडकर आनन्द खुद झेंप गया था। फिर उस झेंप को मिटाने के लिये किये गये छेडखानी के प्रयत्न और मज़ाकें। सब मिलाकर कितने सुखद क्षण थे!

अचानक बाहर सडक पर जाती हुई किसी मोटर की आवाज़ और उसका तेज़ हार्न राज के कानो में पडा, तो वह चौंक गयी। मोटर की ध्वनि जब मन्द होते हुए समाप्त हो गयी तो उसे ज्ञात हुआ, पानी तेज़ी से बरस रहा है। बाहर बरामदे में मगल काका कुछ गुनगुना रहे थे। फिर ज़ोर से अपने भर्राये गले से गाने लगे—"हमारे प्रभु अवगुन चित न धरो।" रात की वर्षा से व्याकुल सन्नाटे में मंगल की आवाज़ छाकर रह गयी थी।

राज जानती है कि नींद आने के पूर्व मंगल का यह नियमित काम है। क़रीब घण्टे भर भजन गाना, कमरे में बन्द राज को लगा कि बाहर का सारा-का-सारा वातावरण मंगल के कण्ठ से प्रस्फुटित स्वरो के आरोह-अवरोह पर झूम रहा है। कितनी कचोट है उसकी आवाज में !' राज कुछ मिनट मग्न हो उसे सुनती रही। फिर सोचने लगी—मंगल काका का कण्ठ कुछ सधा हुआ होता तो कितना अच्छा लगता! फिर वह स्वयं ही गुनगुनाने लगी—'हमारे प्रभु अवगुन चित न धरो ·· चित न धरो ···चित न धरो।'

तभी मंगल का स्वर रुक गया। पानी बन्द हो गया था। रात की खामोशी ने अपने ओठो पर अँगुली रख ली और राज फिर अपने में खो गयी।

"शर्बत से प्यास नही बुझी राज। प्यास बुझाने के लिये तो पानी ही चाहिये।"

"केवल पानी!"

"हाँ प्यास तो शुद्ध जल से ही बुझेगी। बाकी तो प्यास ही बढ़ायेगी।"

राज उठकर चली गयी। पानी से भरा गिलास लेकर लौटी तो उसकी आँखो में किसी नयी शरारत की चमक थी। पर आनन्द को कुछ सोचते

पाया तो चुपचाप जाकर गिलास टेबिल पर रख दिया और हाथ का पानी आनन्द के बालो पर छिडक दिया। आनन्द ने आँखें खोली और कहा—"हाँ राज, तुम माधुरी की कुछ बातें कह रही थी न कि उसका पत्र आया है। बडी परेशान है। क्या बात है ?"

"अरे कुछ नही। क्या करोगे जानकर ?" उसने अपनी कुर्सी पर बैठते हुए कहा।

"नही बताना चाहती हो; तो रहने दो।"

"अब तुम जानना ही चाहते हो, तो सुन लो।"

"विगत स्मृतियो को बलात् विस्मृत करने का प्रयास बडा खतरनाक होता है आनन्द। और उस पर उन्ही स्मृतियो में अचानक एक नयी स्मृति जो और आकर जुड जाय, तो मानसिक सन्तुलन बिगड जाने का भी डर रहता है।"

टेबिल पर कोहनी टेके हथेलियो में मुँह दबाये आनन्द ने राज की बात बहुत ही ध्यान से सुनने की मुद्रा बनायी। फिर उसने एक हाथ बढ़ाकर उसका हाथ अपने हाथ में ले लिया। फिर उसकी चेष्टा पर दृष्टि गडाये अँगुलियाँ घुमाता हुआ बोला—"हाँ आगे कहो न, आखिर बात क्या क्या हुई।"

राज ने हाथ खींचने का हल्का प्रयास किया था; मगर आनन्द की पकड़ उसे कुछ मज़बूत लगी थी। उसे कुछ परेशानी भी हुई थी, मगर आनन्द ने फिर कहा—"तुम बताओ न !"

उसने अपना हाथ आनन्द के हाथ में ही रहने दिया और कहने लगी—

"अरे बात क्या होगी ! शादी के बाद साल भर तो कुछ नही हुआ। अभी पिछली बार यहाँ आयी तो अनन्त से मुलाकात होगयी। वह अनन्त के घर भी चली गयी। दोनों भरे तो पहले से ही थे। दिल खोलकर नाटक हुआ होगा और क्या ! उसके दिमाग़ में समा गया है कि अनन्त की ज़िन्दगी उसी के

कारण ऐसी हो गयी हैं। मुझसे सलाह माँगी है कि क्या करूं। वह चाहती है कि सीमाएँ भी सुरक्षित रहे, मर्यादा भी बनी रहो और अनन्त की जिन्दगी रास्ते पर भी आ जाय।"

"तुमने क्या सोचा ?"

"सोचा क्या और सोचना ही क्या ?"

"क्यो ?"

"अरे अनन्त कोई बच्चा है ? अपना भला-बुरा उन्हे खुद नही सोचना चाहिये।"

"चाहिये तो मगर "

"मगर क्या, उन्हे शर्म आनी चाहिये कि एक विवाहिता स्त्री की शान्ति में आन्दोलन उठा रहे हैं। माधुरी विवाहिता है। उसके सामने उसका घर है, गृहस्थी है, पति है। घर की मर्यादा है; लोक-लाज के बन्धन हैं। भई उसकी भी तो सीमाएँ हैं। अनन्त ऐसे अन्धे तो नही हैं कि कुछ देखते समझते न हो। मैं तो समझती हूँ कि यह सब ढोग है माधुरी को धक्का पहुँचाने का, उसकी बनी-बनायी गृहस्थी में आग लगाने का—और कुछ नही।"

"लेकिन ···।"

"लेकिन-वेकिन कुछ नही जी। उसने माधुरी से प्रेम किया तो माधुरी ने भी भरसक क्या उठा रखा ? सब बातें तो उसके हाथ की नही थीं; कोई इतना प्रगतिशील घर भी तो नही था कि बाप कहते ठीक है तुम जिससे शादी करना चाहती हो, कर लो। फिर दुनियाँ मे लाखो व्यक्ति प्रेम करते हैं, लेकिन इसके माने यह तो नही कि उनकी शादी ही हो जाय, तभी प्रेम की सार्थकता है। नही तो केवल धोखाबाज़ी। आप ही बताइये, कितने प्रेम करते हैं और कितने इस सम्बन्ध में सफल होते हैं ? फिर प्रेम इतना कमीना नही होता आनन्द कि वह दूसरो की प्रतिष्ठा को बच्चो की गोलियाँ बना ले, या बैडमिण्टन की शटलकाक कि जब मन चाहा, इधर से उधर उछाल दिया।"

"रञ्जना, रञ्जना क्या कह रही हो ?"

आनन्द ने उसका हाथ छोड़ दिया था।

"ठीक ही तो कह रही हूँ। मैंने तो उसे लिख भी दिया कि यह सब फ़िज़ूल की बातें हैं। अपना काम करो, अपना घर देखो। 'काजी काहे दुबला शहर के अन्देशे से!' ऐसी बात न करो। हाँ, कुछ दिन मन जरूर उचटेगा लेकिन धीरे-धीरे सब ठीक हो जायेगा। अनन्त जो कुछ समझते है समझने दो। प्रेम में असफल होकर इन्सान जब प्रेम की मर्यादा भूल जाता है, तब वह प्रतिहिंसा का शिकार हो जाता है। यही अनन्त की स्थिति है। काश वह बात टाल जाती और उसे आवेश न आता। लेकिन उसे क्या पता था कि दूसरी की बात उसी पर चोट कर बैठेगी।

"रञ्जना, मैं यह नहीं कहता कि अनन्त बिल्कुल ठीक ही है। मैं पूरी बात जानता भी नहीं; लेकिन मै आजकल की लड़कियों की आदत जानता हूँ।"

"क्या जानते हैं ?"

"यही कि अवस्था के प्रारम्भिक सुकुमार दिनों में उनकी आँखो में एक नशा होता है, नशे में रंगीन सपने होते हैं, मन में एक हसीन तूफ़ान होता है और उस तूफ़ान में कुछ भी कर गुज़रने का हौसला होता है। कथाओं और उपन्यासो की प्रेम कहानियाँ और चलचित्रो के प्रेम-सम्बन्धी अफ़साने उनकी कल्पनाओ में रंग लगा देते है। कच्चा दिल, कच्चा दिमाग और अन्धा विवेक। हर चीज एक सुनहला सपना लगती है। प्रथम आकर्षण के सामने दुनियाँ फीकी लगने लगती है। उस समय उनसे मनचाहा काम कराया जा सकता है; क्योंकि चोरी और छिपाव-दुराव में भी उन्हें एक रहस्य-मय सुख की अनुभूति होती है। ऐसे समय पर लोगों की लाज का आवरण उलट जाता है, उनकी इज्ज़त तथा पर्दा फाश हो जाता है। घर और पास पड़ोस मे कानाफूसी होने लगती है; उन का पढ़ना छुड़ा दिया जाता

है; लेडीडाक्टरो को घूसें दी जाती हैं; जघन्य अपराध किये जाते हैं। अनाथालय के बच्चो की सख्या में बढती होती जाती है। जल्दी-जल्दी उनके विवाह किये जाते हैं। अधूरी शिक्षा, अयोग्य सम्बन्ध, लोगो की उपेक्षा—तुम क्या समझती हो, ज़िन्दगी नरक नहीं हो जाती होगी !"

"तुम्हारे कहने का मतलब क्या है आनन्द ?"

"ठहरो, मतलब भी बताता हूँ। पहले पूरी बात तो कहने दो। इस पर भी कितनी ही आँखें नही खुलती हैं। जिनकी खुल जाती हैं वे तो किसी तरह ज़िन्दगी की नाव खे ही ले जाती है। यह हुई एक बात। दूसरी यह कि जो इन झंझटो से बच भी गईं, उनके हौसले बढ जाते हैं। उनकी सफलता उन्हें आगे बढ़ने को मजबूर कर देती है। लेकिन धीरे-धीरे आँखो का नशा उतरता जाता है। सपनो के रंग फीके होते जाते हैं। जीवन का यथार्थ निखरता जाता है, तो मन पर पड़ा आकर्षण और सम्मोहन का पर्दा भी खसकता जाता है। जो किया या जो कर रही है, वह पागलपन समझ में आने लगता है। तब लगता है कि ज़िन्दगी का वह सौदा जो वह करने जा रही थी, कितना महँगा था! इन्सान में समझदारी बढती है तो भविष्य की चिन्ता सामने आने लगती है। महत्वाकाक्षाओ की उपलब्धि और जीवन-निर्माण की अभिलाषाएँ प्रबल हो आती हैं। यही प्रेम और प्रेमी भाड में झोंक दिया जाता है। समझी आप मेरे कहने का मतलब ! लेकिन बात यहाँ खतम नही होती, वह आगे भी बढती है। इस स्थान पर कुछ सँभलती है, या कहो, कुछ सुधरती हैं। और कुछ सँभलकर भी सुधर नही पाती, केवल सावधान भर हो जाती है। ऐसी लडकियाँ सबसे खतरनाक होती हैं, क्योकि नसों का तूफान उनकी कमज़ोरी बन जाता है, वासना का एक विष उनकी रगो में समा जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि समान स्तर पर एक साथ उनके कई प्रेमी हो जाते हैं। पुराने छूटते जाते हैं, नये बनते चलते हैं। ये लडकियाँ अपने विषय में अतिरिक्त सावधान होती हैं। वे सदा इससे चौकन्ना रहेंगी कि उनकी किसी प्रकार की हस्तलिपि कही आपके पास न पहुँच जाय !

कही उनका रूमाल आपके पास न रह जाय। कही उनका कोई चित्र आपके पास न पहुँच जाय। वे बात बहुत ढंग और अदा से करेंगी। अपना जीवन, अपना भविष्य सदा ही उनकी आँखो के सामने रहता है। कोई दूसरी अपना भविष्य बिगाड देनेवाली चाहे जितनी गलतफहमियो का शिकार होती जा रही हो, उनकी बला से! वह तो इनके जायका बदलने का माध्यम एक खिलौना मात्र होगा। कुछ ऐसी भी होती हैं जो सोच-समझकर एक पर टिक जाती हैं। प्रेम का महत्व, प्यार की ज्वाला और पाकमुहब्बत के वादों पर क़लई पोत कर शादी तक किसी एक आकर्षण पर टिकी रहती हैं—केवल शारीरिक और इन्द्रियजनित भूख और प्यास की तृप्ति के लिये।"

राज मुँहखोले हक्की-बक्की होकर आनन्द को देख रही थी।—'आखिर यह क्या हो गया है आनन्द को!'

लेकिन आनन्द रुका नही।

"आपने लोगो को कहते सुना होगा कि लडकियाँ स्कूलो और कालेजो तक ही बिगडती हैं और विश्वविद्यालय में आकर उनके बिगडने की सम्भावनाएँ कम हो जाती हैं। दलीलें भी सुनी होगी। कभी सोचा है कि लोग ऐसा क्यो कहते हैं? जो कुछ वे देखते हैं, उस हिसाब से उनका कहना ठीक है। लेकिन अन्दर बात दूसरी होती है। विश्वविद्यालय की लडकी अपेक्षाकृत अधिक भला-बुरा सोच सकती है। विश्वविद्यालय में बदनाम होते देर क्या लगती है! अतः भविष्य का खतरा वे नही उठा सकती। युनिवर्सिटी में आनेवाली किसी लडकी के विषय में, जब तक उससे भली भाँति परिचित न हो, आप दावे के साथ कुछ नही कह सकती। सम्भव है, उसका किसी ऐसे लडके से सम्बन्ध हो, जो कही तीस रुपया मात्र का नौकर हो, या कही किसी आफ़िस में क्लर्क हो। ''इसे जाने दो। बड़े घरो के नौकरो के विषय मे क्या नही सुनाई पडता? और किसी बात की ज़रूरत क्या! 'मुर्गी खाने से मतलब, न कि पर खोसने से।' ऊँची कक्षाओ में पढ़ती

हैं। ऊँची महत्वाकाक्षाएँ होती हैं। फिर झंझट की जरूरत क्या ? एक प्यास है जो ऐसे ही बुझ जाती है तो चार लोगो की ऑखो में चढने से क्या लाभ ? मैं सब की बात नही कह रहा हूँ। कितनी ही लडकियाँ आपको सयमित, विवेकशील और शीलवान भी मिलेंगी। जिनकी दृष्टि में पिता, वंश-परिवार की प्रतिष्ठा और लोक-मर्यादा का पूरा ध्यान होगा। और यह बात दूसरी है कि किसी को चाहकर भी अवसर न मिले, या उसमें साहस ही न हो। लेकिन अधिकाश लडकियो के जीवन में एक-न-एक अवसर आता है, जब उनके पैर फिसलते हैं। यह बात और है कि कोई गढ्ढे में गिरा और कोई कुएँ मे। समझी आप ? और यह फिसलन भी अँधेरे में नही—उजाले में होती है उजाले में।

रञ्जना को जैसे लकवा मार गया था।

'तो तो क्या इस सारी बात में कही मेरे ऊपर कोई आक्षेप है ? · ·क्या—क्या मेगज़ीन में कहानी के साथ ब्लाक देने के लिये मैने चित्र नही दिया था ? क्या उस बार इनके पत्र का जबाब नही दिया था · ? इसी से उसने इस बार कोई पत्र नही लिखा ! · ·लेकिन क्या वह चित्र इन्होंने अपने लिये भी ·? लेकिन क्या दुबारा नही मांग सकते थे ? क्या सचमुच मैने इसी से इनकार किया था ?'

'गड्ढा ··? कुऑ ·? फिसलन · ·? एक-न-एक अवसर ··· गड्ढे का आकार बढता गया, उसमें कुआ खोदा गया। अचानक अँधेरे के अजगर ने कुआँ निगल लिया और एक तेज़ रोशनी उसका उदर चीरकर बाहर फट पड़ी, जिसमें सब कुछ साफ होता गया— उम्र दस और बारह के बीच। एक जॉघिया, फ्राक और एक कमीज, निकर · रिबन से बँधा फूल-पत्तियो का एक गुलदस्ता ·। अलकों में दो पत्ती, एक फूल ···। 'रन्नो, तुम स्कूल नही गयी मुझे भी अच्छा नही लगा, मैं भी भाग आया।' · 'क्यों · ? ऐसे ही··· जैसे मैं तुम्हारे स्कूल में पढती हूँ ··· इससे क्या ? · · एक बात कहूँ ···कहो। ···जब तुम स्कूल जाती हो न, हॉ, तो · स्कूल क्यो, कही भी बाहर जाती हो, तो बाहर या स्कूल में मेरा भी मन लगता है। लेकिन तुम घर में रहो

आराम करो तो बन्दा ऊहुँ। '' एक रोने और मिमियाने की ध्वनि। ''' रो रो '''' खूब रो ''! हा-हा, कह दो चाची से जाकर, मैं किसी की परवाह नहीं करता। ' क्यो मारा? ' मेरा मन। मुझे हक है।''''क्यो क्यो क्यो ''' ? मैं बात कहूँ और लाटसाहब मानेगी नही। '' बडा नही हूँ ?' ' अच्छा तो तुम भी मार लो बाबा, यह में-में तो बन्द करो !अच्छा अच्छा, मैं मेंहदी खुटका दूँगा। पहले तुम माला तो बनाओ ''।अरे वाह ' इससे क्या''''? अरे कोई जीतेन थोड़े ही माला पहनेगा ''' वो तो कृष्ण पहिनेंगे ''' । अरे तो मेरे कृष्ण बनने से क्या ? जीतेन, मै नुमाइश नही जाऊँगी आज ' '। क्यो क्या? अरे वहां किसके साथ घूमेंगे ? ऊँह अभय के साथ क्या चुपचाप घूमो ''' । फिर जीतेन चला गया। अम्मा और चाची कितना रोई थी ! ''वह भी तो रोई थी; लेकिन जीतेन ? वह मुँह लटकाये छिपा-छिपा घूमता था। धीरे-धीरे वह भूल गयी फिर अम्मा जब मुरादाबाद गयी तो वह मिला था अम्मा से ''' कितना तगड़ा हो गया था ! सीलोन जा रहा था। यू० पी० से खेलना चाहता था। शायद इस साल चान्स मिल जाय इण्डिया में। एक दिन तो अखबार में फोटो भी आयी थी। तब-तब वह कितने दिन घुटी थी ? कितनी याद आती थी ! क्या-क्या सोचती थी !—वह कहानी जो लिखी थी।'

''मैं माधुरी की बात नही करता। शायद मुझे माधुरी से कोई शिकायत भी नही। लेकिन राज, मैं उस स्तर से घृणा करता हूँ जिस पर पहुँच कर इन्सान सहानुभूति के स्वर भूल जाता है। जहाँ आँखो की करुणा सूख जाती है और जहाँ उपेक्षा की धूल उड़ने लगती है। गलती इन्सान से होती है; लेकिन इसके माने यह तो नही कि वह सहानुभूति, सहायता और स्नेह का अधिकार भी खो दे ।

अचानक दम तोडते अजगर ने साँस खीची। उसकी देह में सिहरन हुई और लहर उठने लगी। अँधेरे ने अगड़ाई ली, तो नसें चटचटाकर टूट गयी। अजगर मुर्दा हो गया।

अचानक राज के मन में एक नदी घूम गयी। नदी के किनारे घूम गये। उसके कगार घूम गये, उसका प्रवाह घूम गया। लहरें नाच गयी और भँवर चक्कर मार गयी। भँवर में एक अभिलाषा डूब गयी थी। कुछ अधबने सपनो के कच्चे रंग पानी में घुल गये जलराशि के सीने पर एक रंगीन बिन्दु थिरका और उसी मे कसी हुई राज लडखडा गयी।

'सुषमा का भाई वीरेन्द्र। कितना हँसमुख, कितना मज़ाकिया! देखने में अच्छा भी तो लगता था। दो-तीन बार अपने घर से मुझे यहाँ छोडने भी तो आया था। एक बार सुषमा और उसके साथ बोटिंग करने भी गयी थी। पहले तो बडा मज़ाक करता था। उफ़! कितना हँसाता था! फिर धीरे-धीरे कितना सकोची हो गया! तब क्या सचपुच उसके दिल में एक बादल नही उठा था? एक भूले हुए सगीत की कडियाँ अपने आप मुखर होने को तत्पर नही हो गयी थी? और क्या सचमुच उसके अन्दर कोई चीज़ टूटने जैसी नही हो गयी थी?

तभी आनन्द मिला था।

"हाँ, दाता की निगाहें बदल जायँ, उसके इरादे बदल जायँ, तब तो बात ही दूसरी है। पर सहानुभूति और स्नेह का सम्बल देने में मर्यादा भंग होने, दुनियाँ उजडने और सीमाओ के टूटने की बात तो वही लोग सोच सकते हैं जिनकी सहानुभूति का कोष समाप्त हो चुका होता है; जिनका आत्म-विश्वास मर चुका होता है, जिनकी आस्था पर मकडी का जाला फैल गया होता है और जिनकी चेतना पर स्वार्थों का भौतिक, सुखो का हिमालय सिर उठा लेना है। ऐसे इन्सान भौतिक सुखो के, अपने हितो के और वैभव के मित्र भले ही हो सकते हैं, पर जीवन के कदापि नही। लोग कहते हैं मानवता को विज्ञान की बढती हुई प्रगति से खतरा है। लेकिन मैं कहता हूँ कि इन्सान के लिये इन्सान से बढ़कर दूसरा खतरा कभी हो ही नही सकता। और राज, तुम भी ऐसी मनोवृत्ति को प्रश्रय दोगी, मैंने स्वप्न में भी नही सोचा था। खैर, ठीक ही है।"

धीरे-धीरे आनन्द उसके निकट आता गया। कुछ बिखरता गया, कुछ जुड़ता गया। कुछ वह खोती गयी, कुछ संचित करती गयी। आनन्द जैसे एक सैलाब था कि वह उमडा तो उसके पैर उखड गये। अन्दर-ही-अन्दर एक उमड-घुमड हुई और समर्पण की सरस्वती फूट पडी थी। आनन्द जैसे एक ऑधी था जो उसे मन-सा झकझोर करके भी, एक नयी शक्ति दे गया। आनन्द जैसे एक रोशनी था जो उसकी ऑखो को चकाचौंध करके भी एक नूतन आलोक से भर गया, एक नयी जीवन-दृष्टि दे गया, एक नूतन क्षितिज के दर्शन करा गया। आनन्द जैसे एक संगीत था, जिस पर उसके थके-हारे चरण गतिशील हो उठे। उसके गीत नयी जिन्दगी पा गये थे। उस सगीत में वह भटक गयी थी; लेकिन तभी मञ्जिल का दीप झिलमिला उठा था। आनन्द जैसे एक ध्रुव तारा था जो उसके मन के आकाश के किसी निभृत कोने में एकबारगी धधक उठा था और वह दिशा पा गयी थी। उसके चरणो ने पथ पा लिया था और मन ने उसपर बढने का आत्मविश्वास पा लिया था। आनन्द जैसे एक इन्द्रधनुष था, जिसमे उसके अरमानो के रंग मिल गये थे और वह स्वयं सतरगी हो उठी थी।

लेकिन ' यह स्वर 'यह आवाज़ ' 'यह दृष्टि ···बिखरा हुआ सैलाब ·· 'टूट चुके किनारे ' 'दम तोड चुकी ऑधी ' · ' बुझा हुआ संगीत रुके हुए चरण ·· ·· गीतो की लाश पर आसुओं का कफ़न ·· ··मरी हुई रोशनी ·· ' अँधेरे का प्रेत ··· ' कराहता हुआ क्षितिज ' ' धुवॉ उगलता ध्रुवतारा ' ' चिथडे-चिथडे आत्मविश्वास' ' ' ··रोते हुए रग और नीलाम हो गया इन्द्रधनुष ···· ··मरघट की खामोशी ' अधजली स्मृतियो के चटकने का शब्द और पागल सपनों के भूकने का स्वर। खामोशी और आवाज़ पलको से टकराई तो आखें चीख उठी। स्वर उभरे तो ओठो की ठोकर खाकर मर्माहत हो गये। बाहर आये तो घायल हो चुके थे!

'आनन्द, साफ़ कहो न ···? सीधे क्यो नही कहते कि राज तुम भी' ··

हाँ मैं भी ? दिल खोलकर कहो ''' मन भरकर । दूसरा अवसर नही मिलेगा ' ।' और वह अन्दर भागी थी । जैसे आनन्द के सामने वह राख हो जायगी । सामने रहकर वह सुन नही सकेगी । शायद आनन्द खुलकर कहे भी न । लेकिन मन की बात तो निकलनी ही चाहिये ।

राज की आँखो में सचमुच आँसू आ गये थे । पहली हिचकी जब अपने आप निकली तो वह जैसे होश में आ गयी । सचमुच एक बीभत्स सन्नाटा था । उसे डर लगा । पखा और बिजली आफ़ करती हुई वह माँ के पास पहुँची । बाहर मगल कब का सो चुका था । सामने माँ बेसुध पडी थी । चादर नीचे खिसककर ज़मीन पर जा पडा था । चदरा उसने आकर खाट पर रखा । ओफ कुत्ते भी नही भूकते ! ये आवाज ' ओफ़ मेढक तो ' 'बेद पढैं जनु बटु समुदाई' वाहरे तुलसी बाबा ! स्लीपर उतारकर वह पलंग पर लेट रही । लेकिन नीद के कोई आसार नही थे । उसने आँखें बन्द की । पलको पर तकिया रख ली और हाथों से दाब भी ली, लेकिन बेकार । जैसे सारे विरोधो के बावजूद सारी बात, सारी घटना फिर से उसके मन में, उसकी आँखो में, दुहरा जाना चाहती थी । जब वह अधिक नही सहन कर सकी तो उठकर माँ के साथ लेट गयी ।

माँ कुछ चौंकी सी । "क्या है राज ' ?" "कुछ नही माँ ' ?"

"तो अपने बिस्तर पर क्यो नही लेटती ? बडी गर्मी है भई ।"

" नींद नही आ रही है । आज तो मैं साथ ही सोऊँगी अम्मा !"

माँ को कुछ नीद, कुछ राज को बच्चो जैसी जिद ! उनके ओठो पर एक मुस्कराहट कौधी और छिप गयी । राज को उन्होने एक बच्चे की भाँति चिपका लिया । और राज को लगा, जैसे एक शोर था जो चुप हो गया है, एक बेचैनी थी जो धीरे-धीरे हल्की होकर उडी जा रही है और नीद का जादू उसके ऊपर चलता जा रहा है ।

४

आनन्द इन दिनो बडा उद्विग्न है। वह कोई रास्ता नही निकाल पा रहा है। कभी वह प्रतियोगिता की सोचता है, कभी शोध की। कभी उसकी इच्छा होती है 'यूँ ही पत्रकारिता के सहारे सार्वजनिक जीवन क्यो न बिताया जाय?' लेकिन घर की चिन्ता खाये जा रही है। 'शान्ति का विवाह कभी हो गया था। आज वह दो बच्चो की माँ है। ससुराल सम्पन्न नही तो क्या, सुबह-शाम मेहनत की रोटी मिल ही जाती है। रामू लखनऊ में पढता हैं। इस वर्ष उसने बी० ए० किया है और एम० ए० मे प्रवेशाधिकार लेकर प्रतियोगिता की तैयारी कर रहा हैं। पचास रुपये प्रतिमास वह उसे भेज देता है। कुछ आप वह अपने स्फुट उद्योग से वहॉ कर लेता है। वह पढने में तेज है। पहले कितना शैतान था! लेकिन आजकल कितना गम्भीर हो गया है! उसकी कोई खास चिन्ता नही करनी है। रह गया घर। वह चाहता है कही कुछ काम-धाम मिले तो बापू से कहे कि बेफिक्र होकर रहो, रुपया वह देगा। मज़दूरो से काम कराओ। लेकिन मॉ की ज़िद। इस बार तो किसी तरह मान गयी, लेकिन आगे?

यही आकर आनन्द उलझ जाता था।

वह कैसे माँ को समझाये कि वह क्या करना चाहता है!—उसकी क्या महत्वाकांक्षाएँ हैं! वह अपनी तो किसी तरह काट लाया; लेकिन आने वाली पीढ़ी भी उसी की तरह मन-ही-मन रोये, अपनी महत्वाकाक्षाओ को परिस्थितियो के मज़ार में बेबस होकर दफ़ना दे; यही वह नही चाहता है। वह नही चाहता है कि किसी तरह उसकी सन्तान सोचे कि बाबा की तो कोई बात नहीं, वे तो गॉव के किसान थे, फिर भी उन्होने अपने लडकों को

पढाने में कोई कोर-कसर नही उठा रखो। लेकिन उनके पिता तो पढ़े-लिखे थे; उन्होने तो दुनियाँ देखी थी और खुद भी तो कुछ कम नही भोगा था। फिर भी उनकी आँखें नही खुली। वह माँ को समझाना चाहता है कि माँ, मुझे विवाह से इन्कार नही। विवाह तो मै करूँगा ही। एक जीवन संगिनी के बिना भी कोई जीवन होता है! लेकिन जिन्दगी का एक ढर्रा तो बँध जाने दो। उसे इस काबिल तो हो जाने दो कि वह दूसरे का भी बोझ अपने कन्धो पर उठा सके। उसका अपना ही बोझ उसके ऊपर कितना भारी पड रहा है, यह वही जानता है। फिर रामू पढ ही रहा है। वह उससे दो ढाई साल छोटा है; लेकिन पता नही, वह उसे बिल्कुल बच्चा क्यो लगता है। वह चाहता है कि जो कुछ उस पर पडे, उसे हँसी-खुशी से झेल ले। लेकिन रामू के मस्तक पर शिकन नही आनी चाहिये।'

साल भर से ज्यादा हुआ, वह उसे पचास रुपये महीने भेजता आ रहा है। अब अगर बन्द हो गये, तो वह क्या सोचेगा! शिवा की तो कोई बात नही। वह इस वर्ष दसवें में गया है। और माया? हाँ, माया ने भी तो इस वर्ष प्राइवेट रूप से हाईस्कूल कर लिया है। वह तो विवाह के योग्य भी होती जा रही है। होती क्या जा रही है, अम्मा की निगाह में हो ही गयी है। कितनी चिन्तित रहती हैं वे!

आनन्द इसलिये भी बडा परेशान है कि वह सोचता था कि एम० ए० के बाद ही उसे कही-न-कही कोई काम मिल जायगा। थोडा-बहुत पढ़ने-लिखने का काम भी वह करता रहेगा और गाडी चलती रहेगी। जो काम उसे मिलने वाला था, डाक्टर साहब उसमें माध्यम थे। वे अब मन-ही-मन यदि नाराज नही, तो असन्तुष्ट अवश्य हैं। और कृष्णप्रकाश? उसे तो वह उस दिन गाली ही दे आया है। अब वह किस मुँह से उससे काम के लिये कहेगा? दूसरे लोग बिना किसी परिचय या प्रभाव के काम देने में कितना हीला-हवाला करते हैं, यह भी वह जानता है। इसीसे वह कुछ तय नहीं कर पा रहा है। दो-एक जगह उसने आवेदन-पत्र भी भेजे है; लेकिन

उनका कहीं से उत्तर नही आया है। उसने कभी नहीं सोचा था कि सबसे बडी बाधा निकल जाने के बाद ही उसे इस भाँति अव्यवस्थित हो जाना पडेगा। बी० ए० करने के बाद उसे अवश्य कुछ ऐसा लगा था कि अब पढाई आगे नही चलनेवाली। तभी उसने दो-एक जगह नौकरी के लिये कोशिश भी की थी। उसे सफलता भी मिली थी। और उसी के आधार पर उसने रामू को यहाँ बुलाने के बजाय लखनऊ भेज दिया था। उसके बाद ही उसे वकील साहब का आश्रय मिल गया—रानी का ट्यूशन मिल गया। फिर रहने के लिए वह इसी बँगले में एक कमरा पा गया था। वकील साहब ने ही कृष्णप्रकाश से उसका परिचय कराकर लिखने का काम दिला दिया था। उसने भी भविष्य की चिन्ता छोड, सामने के रास्ते पर कदम उठा दिये थे। लेकिन आज उसके सामने यह शून्यता छा जायगी, यह संघर्ष उसके मन में घर कर लेगा, उसने कभी नही सोचा था।

वह कभी-कभी आशंकित हो उठता है—'कही उसका किया-कराया—उसका सोचा हुआ सब मिट्टी न हो जाय! कही वह खुद कमजोर न पड जाय! कही शिवा का जीवन अँधेरे कुहासे मे न खो जाय! कही माया के साथ साथ लगी हुई उसकी अभिलाषाएँ न बिखर जॉय! सबसे दुःख की बात तो यह है कि इस अन्तःसंघर्ष मे उसकी कर्तृत्व शक्ति क्षीण होती जा रही है। एक पत्रिका में उसे एक लेख लिखना है। आज एक महीने से वह पडा है। वह रोज सोच करके भी उसे आरम्भ नही कर पाता है। एक परिचित लेखक ने उसे—'विश्व की सर्वश्रेष्ठ लघु कथाएँ'—एक सग्रह तैयार कर देने के लिए कहा था, लेकिन वह कुछ नही कर पा रहा है। दो-एक बार लिखने भी बैठा, तो कलम रुक गयी, शब्द भूल गये, विचार-धारा छिन्न-भिन्न हो गयी।

आजकल वह सुबह घर से निकल जाता है। दिन भर इधर-उधर घूमता रहता है। कभी इसके यहाँ, कभी उसके यहाँ। दो-एक जगह काम के लिये भी हो लेता है। लेकिन कोरा जवाब सुनकर चला आता है। भले ही वह जवाब

बडी ही आत्मीयता और सहानुभूति के आवरण में लपेटकर दिया गया हो। संध्या समय वह बँगले पर आता है। अकेले सिनेमा देखने या काफ़ीहाउस जाने का वह कभी आदी नही रहा, लेकिन इधर अकेले भी चला गया है कितने ही घटे अकेले बैठे-बैठे काट दिये हैं। कई बार तो ऐसा भी हुआ है कि इधर पर्दे पर चित्र चल रहा है, उधर उसके मन में द्वन्द्व उठ रहा है। शरीर पसीने से नहा उठा है, सिर में एक चिलकन सी उठने लगी है और वह सिनेमा छोडकर चला आया है। कभी काफीहाउस में बैठा-बैठा मन-ही-मन बिसूरने लगा और आधा कप छोडकर उठ खडा हुआ है।

कभी-कभी वह यह भी सोचता है कि मारो गोली सबको। मेरे लिये किसने कुछ किया! जैसे मैने पढा, वैसे ही रामू पढे, शिवा भी पढ़े। जैसे शान्ति का विवाह हुआ था, उसी तरह किसी ठेठ किसान से माया का भी विवाह हो जायगा। अगर उसके अपने खर्चे से कुछ बचता है, तो ठीक है। वह अवश्य देगा। नही तो राम राम! वह सबका जिम्मेदार नही है।'

तभी एक लहर आती है और हरहराकर निकल जाती है। कुछ शोर पीछे छूटता जाता है, जिनमे रामू की महत्वाकाक्षाएँ कराहती हैं, शिवा की कल्पनाएँ चीखती हैं और माया के सपने विकलाङ्ग हो जाते हैं। लहर धीरे-धीरे उतर जाती है। लेकिन साँप काटने के बाद की तरह उसके मन में एक लहर उठती-गिरती है। आँखो के सामने मीलो उदासी भरा-भरा रेगिस्तान फैल जाता है और एक पागल की तरह दौडनेवाली भूखी-प्यासी खूँखार आँधी आ जाती है। धूल और गर्म बालू के पहाड उडते चले जाते हैं। सामने बालू में अधढकी-अधखुली डिग्रियाँ पडी हैं—धन पडा है, दौलत पडी है, यश और प्रतिष्ठा पडी है, सपने पडे हैं, जवानी पडी है निर्मल किलकारियाँ, मुक्त हँसी और उल्लास पडा है। लेकिन उन्ही की ओर घसिटती हुई चन्द लाशें नजर आती हैं। किसकी हैं ये लाशें? ओफ् ये लाशें रामू, माया और शिवा की हैं! ऊपर आसमान में चार आँखें चमकती हैं—पहचानी हुई आँखें—माता और पिता की आँखें। उनसे पानी गिरता

है, बरसात होती है और ढकी हुई चीज़ो पर बालू बह जाती है और लाशें भी बह जाती हैं।

बिस्तर पर लेटे-लेटे वह यही सोच रहा था कि अचानक उसकी दृष्टि रोशनदान पर जा पडी। दो चिडियॉ फुदक रही थी चुंग-चुंग, जैसे कोई बात-चीत हो रही हो। एकायक एक चिडिया उडकर बाहर चली गयी। दूसरी चुपचाप इधर-उधर देखती बैठी रही; फिर वह उडी फर्र-फर्र कमरे के तीन-चार चक्कर लगाये और पुनः उसी स्थान पर बैठ गयी। इसके बाद दो-तीन बार बाहर की ओर देखा और उड गयी।

आनन्द का सोचना रुक गया था। जब चिडिया उड गयी, तो वह सामने दीवार पर लगे कलेण्डर को देखने लगा। शुभ्रवसना, कमलनयना, वीणापाणि सरस्वती का चित्र। कितना सुन्दर चित्र है! इसे अगर मढ़वा लिया जाय तो कैसा रहेगा? ओफ्! सब चौपट हो गया। यह ऊपर-नीचे बीडी के बण्डलो का चित्र और अनोखेलाल-चोखेलाल बीडी-कम्पनी का विज्ञापन। अच्छा, इसे काटकर निकाला जा सकता है। उहुँ, तब तो चित्र भी कट जायगा। लेकिन फिर भी बीडी-कम्पनी के मालिको की कृपा है सरस्वती पर कि उन्होने अपने कलेण्डर मे उनका चित्र छाप दिया। नहीं तो बडी-बडी ऑखें और आधे खुले आधे ढँके सुन्दरियो के वक्षो के अतिशय कामोत्तेजक उभार के सामने कौन पूछता है सरस्वती के चित्र को! और क्यो पूछें? सरस्वती के उपासक कौन बीडियो से लगाव रखते हैं? बीडियो से तो लगाव वही रखते हैं जो जीवन के संघर्षमय क्षेत्र मे संघर्षों से दो-दो हाथ भिड लेने का साहस त्यागकर मिथ्या सतोष की दुहाई देने लगते है और जीवन की अजस्र धारा मे लहरो के ऊपर अपने को एक बहती हुई लाश की भाँति छोड देते है; जो अपने बच्चो के भविष्य के प्रति ऑखें मूँद कर, राष्ट्र, समाज और अपने परिवार के प्रति उदासीनता अपनाकर—और यही नही, खुद अपनी शक्ति, अपनी सामर्थ्य की उपेक्षाकर आफ़िस से लौटकर या किसी अपने अन्य कामो से छुट्टी पाने पर—घर आते हैं, पत्नी

की सिसकियो और जलते मन के बीच लाचारी से बनाये गये भोजन को पेट में डालते है, बच्चो को झिड़कते है और पत्नी को भला-बुरा कहते हुए एक बीडी मुँह में दबाये और एक बण्डल और दियासलाई जेब मे डाले बाहर निकल जाते है कि देखें कहाँ शतरंज जमी है, कहाँ ताश की फड जमी है, कहाँ हँसी मजाक का बाजार गर्म है और कहाँ सबसे अश्लील और 'जान तोरे जोबना पर जाऊँ कुर्बान—या कमर मटकाय के, जोबना उभार के, नैनो के तीर चलाना ना' के गानो वाला कौन सिनेमा कहाँ लगा है। भले ही चेहरा पीला पड रहा हो, आँखें खोखली होती जा रही हो, शरीर अस्थि-पंजर होता जा रहा हो, घर मे दस-दस बारह-बारह वर्ष के बच्चे क ख ग न जानते हो; भले ही हर साल बच्चे जननेवाली गृहिणी पचीसो रोगो की शिकार हो चुकी हो, भले ही घर पहुँचने पर एक पैसे-पैसे की कमी के कारण नमक न आया हो, भले ही दो रुपयो के कारण दर्जी के यहाँ से बच्चो के नये कपडे सिल के न आये हो और वे फटे गन्दे कपडो में ही नाक-मुँह पोछते घूमते हो। लेकिन एक बीडी मुँह में और एक-एक कान पर हो तो क्या चिन्ता! एक गहरे कश के धुएँ में आँखें स्थिर कर वह तो समझते है—शायद इसी के बीच से थैली निकल पडेगी! ऐसे लोगो की आँखो में ही तो कलेण्डर के चित्रो की नगी छातियाँ उतर जाती हैं और उस पर का विज्ञापन रह जाता है। गोया वह सुन्दरी भी उसी बीडी को पीती है और उसी बीडी के पीनेवाले पर अपनी आँखों का नशा—अपने वक्ष का उभार—ढरका देगी!

अचानक आनन्द की दृष्टि चित्र से फिसलकर उसकी तारीखो पर आ पडी और अपनी विचारधारा में बहता हुआ आकर जैसे वह एक भँवर में फँस गया। '‘आज अठारह तारीख हो गयी! रमेश को, उसके पत्र के उत्तर में उसने लिखा था—तुम चिन्ता न करना, मैं दस तारीख तक रुपये अवश्य भेज दूँगा। लेकिन आज तो अठारह हो गयी। उस दिन वह कृष्ण-प्रकाश से तीन सौ रुपये का चेक ले आया था, सो उसने अपने फूफा को दे

दिया था। शान्ति के विवाह मे उन्होने रुपये जो लगाये थे, पता नही किस आशा से इतने उदार हो गये थे उस समय। लेकिन अपनी भान्जी की लडकी की शादी के लिये जब गाँव गये और माँ ने इन्कार कर दिया; क्योकि लडकी काली थी, साथ ही कुछ लँगडाकर चलती थी। तब से कितने पत्र उलाहने और तगादे के लिये आगये थे। अन्तिम पत्र तो उसी को गाँव पर मिला था कि अगर दो महीने में उन्होने रुपये नही दिये तो वे मुकदमा चलाने मे सकोच नही करेंगे। संयोग था कि वह पत्र आनन्द के ही हाथ पडा था। उसको यह पता था कि फूफा जी ने शान्ति के विवाह मे कुछ मदद अवश्य की थी। लेकिन वह कितनी थी और उसका क्या रूप था, वह नही जानता था। वहाँ आने पर उसने फूफा से मिलकर पता लगाया था, तो पता लगा था, सब मिलाकर कोई दो सौ सत्तर रुपये निकलते हैं और अब आप गाँव कोई पत्र न लिखें। हफ्ते—दो—हफ्ते के भीतर ही मैं आप को रुपया दे जाऊँगा। कृष्णप्रकाश से चेक लाने के दो दिन बाद ही वह फूफा जी को रुपया दे आया था। आते समय सुना भी आया था—फूफा जी क्षमा कीजियेगा, किसी पूर्व मंतव्य की भूमिका के रूप में किया गया उपकार अपने ही खून के साथ व्यभिचार करना है। मुझे पता लगा है कि आप विवाहो की दलाली करते हैं। सो आप यह समझ लीजियेगा कि इसे आप पचा नही सकेंगे। एक दिन भोगेंगे, आँसू बहायेंगे पर, तब तक स्थिति-सुधार का अवसर बीत चुका होगा!"

'लेकिन रमेश क्या सोचता होगा बेचारा! कृष्णप्रकाश के यहाँ जो रुपये बाकी हैं अगर वही मिल जाते, तो भी समस्या हल हो जाती।...लेकिन वह बाहर गया हुआ है।—जीवन से माँगे? 'हाँ, वह तो कहते ही दे देगा!—लेकिन जब आज तक उसने किसी से रुपयों के लिये नही कहा, तब आज वह रुपये लेकर क्यो सदा के लिये दूसरो की कृतज्ञता अपने ऊपर लाद ले? ...मगर मित्र किस दिन के लिये होते हैं? इन्ही सब अवसरो के लिये न! लेकिन मान लो, अगर जीवन मेरा मित्र न होता? नही-नही रुपयों के लिये

मैं दीन बनकर हाथ नही फेलाऊँगा। हाँ, जैसे पहले कभी नही फैलाया था!…पहले कब फेलाया था?' अरे स्पष्ट रूप से न फैलाया हो, मुँह से कहकर न फेलाया हो; लेकिन अप्रत्यक्ष रूप से तो फैलाया है। जब वकील साहब के कहने पर, बिना किसी विशेष विरोध के, यहाँ आ गये थे, तब वह स्थिति सहायता के लिये दीन होकर हाथ फैलाने जैसी नही थी? मगर यह कोई कृतज्ञता नही है उनकी। विमल का ट्यूशन भी तो वह मुफ्त ही करता है और वकील साहब के और भी तो कितने ही काम कर देता है। तब क्या सोचना विचारना! उन्ही से माँग लो। ' लेकिन रुपये माँगना और बात है।—और बात क्या है? कृष्णप्रकाश से रुपये मिलें, तो वापस कर देना। शायद कृष्णप्रकाश आ गया हो। आज ही की तो तारीख बतायी थी उनके नौकर ने। आज शाम को हो लूँगा उनके घर।—पर अगर कुछ कहा तो?— कहेंगे क्या? मेरे मुँह नही है क्या?"

'झन्' से कुछ गिरा। आनन्द चौका। उचककर देखा, तो चुहिया ने आले में रखी एक छोटी सी शीशी फर्श पर गिरा दी थी। और अब दीवार से मेज और मेज से लटकते तौलिये से नीचे उतरकर स्तब्ध हो गयी थी। लेकिन दूसरे सेकेण्ड ही शीशी के टुकडो को जरा-सा सूँघकर कमरे की देहरी मे बने छिद्र से बाहर निकल गयी।

'क्या था शीशी में? नही कुछ नही था। उहूँ! महेश छोड गया था उस दिन; इत्र की थी। अच्छा, दरवाजे के पास ही गिरा दिया! कोई आये तो?'

वह पलँग से उठा। फ़र्श से टुकडे बीने, जाकर बाहर फेंका और सडक की ओर देखता हुआ खडा हो गया।

सबेरे पानी बरस चुका था, तब से आसमान खुल गया था, बादल छिटक गये थे; मगर धूप नही निकली थी। हवा में थोडी नमी थी और सड़क पर बने खाली स्थानो में अभी भी जगह-जगह किंचित पानी जमा था, जो धीरे-धीरे सूख रहा था।

आनन्द सोचने लगा—अगर झीसी पडने लगे, तो चप्पल डालकर जीवन के यहाँ तक पैदल ही चला जाय।

हल्की-हल्की झीसी में घूमना आनन्द को बडा अच्छा लगता था। और उससे अच्छा तब लगता था, जब वर्षा मे खूब भीगने के बाद बदन सुखाकर वह कपडे बदल ले और पानी बरसता रहे।

उस क्षण अन्दर रानी गुनगुना रही थी—"मैंने तो दो नैनो के दीपक लिये सँजोय।"

आनन्द घूमकर कमरे में आ गया और पुनः बिस्तर पर लुढक गया।

'शिवप्रसाद अब शायद अस्पताल से आ गया हो। चलो, बिचारे की टॉग बच गयी। पहले तो डाक्टर्स कहते थे कि काटनी पडेगी, लेकिन भाग्य था, बच गयी। वह कितने मौके से पहुँचा था उस दिन! भाभी ने रो-रोकर सारा किस्सा बताया था साइकिल-मोटर दुर्घटना का।—'आनन्द बाबू, परसो शाम को उनके एक मित्र आये। पहले भी दो-तीन बार आ चुके थे। बडी सहानुभूति जताने लगे कि मुझे उसी दिन खबर लग गयी थी। तब से मैं रोज सुबह-शाम अस्पताल हो आता हूँ। आज डाक्टर साहब ने अमुक दवा बताई है। साठ रुपयो की है। तो आप ऐसा करें कि रुपये मुझे दे दें। मैं दवाई लेकर पहुँचा दूँ। ऐसे काम मे देर नही करना चाहिये।' ·· लाला, मैं तो मूरख ठहरी। पास में इतने रुपये नही थे, सो करधनी निकालकर दे दी कि इसको ले जाइये, बाकी रुपये मुझको दे जाइयेगा, या फिर उन्ही को वहाँ दे दीजियेगा। लल्लन वही गया है, शाम को मैं भी उसके साथ देखने जाऊँगी तो उनसे ले लूँगी। सो लाला, वह करधनी लेकर चले गये और आज तक उनका पता नही। उनसे कहा, तो उसी दशा में बिगड उठे—"तुम तो मूर्ख-अपढ़ हो! और क्या करोगी? अब हाथ धो रखो करधनी से। अरे वह एक नम्बर का पाजी और बदमाश है। यहाँ एक दिन भी मुझे देखने नही आया। और फिर अगर वह दो-तीन बार मेरे साथ घर आया, तो वह

इतना विश्वासी हो गया कि जो माँगे, उठाकर दे दो। भोगो अब! क्या करती लाला! सुन लिया, रो लिया। आज सचमुच रुपये की ज़रूरत पड़ी है तो अभी-अभी उन्ही के बताये उनके दोस्त के साथ लल्लन को नथ देकर भेजा है। तुम्हारे भैया तुमको भी पूछ रहे थे। लेकिन तुम्हारा घर नही मालूम था। कौन बुलाता ?"

तब तक लल्लन आ गया। आनन्द को देखकर 'नमस्ते' करता हुआ बोला—"अरे चाचा जी आप! आप को तो बाबू कितनी बार पूछ चुके है। एक दिन मैं गया भी था आप के यहाँ। लेकिन आप मिले ही नही।"

फिर माँ की ओर एक कागज़ की पुड़िया बढ़ाता हुआ बोला—"अभी रखो इसे अम्माँ, लाला मेवाराम की दूकान बन्द हो गयी। कल सुबह खुलेगी। निगम-चाचा कहते थे—"अनजानी जगह रेहन रखना ठीक नही। फिर कौन ज्यादा रुपये की बात है। कल सुबह ही रख देंगे, और वे अपने घर चले गये।"

आनन्द ने उठते हुए कहा—"अच्छा, भाभी चलता हूँ। और देखो, अब यह नथ रखने की ज़रूरत नही, समझी न? रुपये मैं कल सुबह तक पहुँचा दूँगा। लल्लन, वहाँ अस्पताल में किस कमरे में है तुम्हारे बाबू?"

"ग्रीन वार्ड में, पाँच नम्बर के बिस्तर पर। आप जा रहे है क्या वहाँ?"

"हाँ।"

और वह उठकर चला आया था।

अस्पताल जाकर वह शिवप्रसाद से मिला। करीब आध घण्टे तक बातें की और चल दिया। रास्ते में रुपये की बात सोचता आया। उसे कोई रास्ता नही मिल रहा था। फूफा को रुपये देने के बाद तीस रुपये उसकी जेब में थे, जिसमें वह एक चप्पल दो क़मीज़ और दो कुर्त्ता बनवाने की बात सोच रहा था। कितनी घिस गयी है उसकी सैण्डिल! यह तो कहो कि वह

उस पर ठीक से पालिश किये रहता है, नही तो सोल तो बिल्कुल घिस गया है और हो भी तो गये दो साल। और कपडो की हालत भी तो खस्ता हो गयी है ! उलटवाये हुए कालर तक फट गये है। इन धोबियो के मारे और नाक मे दम है। चार महीने पहले बनवायी नयी कमीज उस दिन फाड लाया।'

वह तीस रुपये जेब में डाले, कमरे में आ गया था। ''"क्या करे क्या न करे ?"'

सोच रहा था—शिवप्रसाद उसका मित्र है। आज दो वर्षों से उससे जब तब ही मिलना होता है। क्योकि बी० ए० के बाद ही वह एक आफ़िस में लिपिक हो गया था। लेकिन बी० ए० के दूसरे वर्ष में वह और शिवप्रसाद एक ही कमरे मे रहते थे। शिवप्रसाद आनन्द से चार-पॉच वर्ष बडा था और तीन वर्षो से नौकरी कर रहा था। फूफा के यहॉ रहते ही उससे साक्षात्कार हुआ और मैत्री बढ़ी थी। फिर फूफा का घर छोडने के बाद अब वह अलग कमरा लेकर रहने लगा था। हालॉकि प्रत्यक्ष रूप से उसने आनन्द की कोई मदद नही की थी, क्योकि आनन्द बावजूद शिवप्रसाद के विरोध के, कमरे का आधा किराया उसे दे देता था। और मेस में खाने का तो देता ही था। लेकिन शिवप्रसाद का स्नेह उसे अब तक याद है और आगे भी रहेगा।

कमरे मे कुर्सी पर बैठे बैठे अचानक उसे याद आया था कि उसके विश्वविद्यालय में इतिहास-विभाग के एक चपरासी, संगम की जब नौकरी छूट गयी थी और तीन महीने तमाम कोशिश करने पर भी कोई काम नही मिला था, पत्नी के आजकल में बच्चा होनेवाला था, तब पैसे के अभाव में वह उसे अस्पताल मे दाखिल नही करा सका था। इतना ही नही, उसके कथनानुसार दो दिन बाद भोजन-सामग्री भी समाप्त होनेवाली थी, तो उसके ऑसुओ को सहन न करके उसने उसे चालीस रुपये दिये थे, जिसके कारण वह दो महीने तक अपनी कमजोर आर्थिक स्थिति को और बिगाड बैठा था।

और दिन में सोलह-सत्रह घण्टे लगातार काम करके किसी भाँति कृष्णप्रकाश का काम पूरा कर पाया था।

'अब तो सगम कहीं चुंगीघर में लिपिक हो गया है; क्योंकि वह इण्टर-मीडियेट पास था। कहाँ ? किस जगह उसका चुंगीघर है, याद नही पड रहा है .. लेकिन क्या हुआ, घर तो वह जानता है। नौकरी पाने के बाद भी संगम जब तब रास्ते मे मिल गया है। अब तो बडे कायदे से रहता है। उस दिन हाल की खरीदी नयी साइकिल पर मिला था। कहता था घडी बनने को दी है। उसी को लेने जा रहा हूँ। इसका स्पष्ट अर्थ है कि उसने घडी भी खरीद ली है। लेकिन जब मिलता है, तब हमेशा कही-न-कही जरूरी काम से ही जाता मिलता है। हो सकता है, बहाना बताता हो कि कहीं मै रुपये न माँग बैठूँ। वैसे मैं न भी माँगता, लेकिन अब कौन बुराई है इसमें ? अब तो उसको अच्छा वेतन मिलता है, ऊपरी आमदनी भी अच्छी खासी है। क्यों न चलकर उसी से माँगा जाय ?'

सोचकर आनन्द उठ खडा हुआ। संगम के घर गया तो पता लगा कि वह घर पर नही है। वह लौट ही रहा था कि सगम आ गया।—"अरे आनन्द बाबू, आप यहाँ कैसे !"

"तुम्हारे पास ही आया था संगम। बात यह है कि ।"

संगम एक क्षण चौंका, फिर बोला—"तो आइये न, कमरे में बैठकर बातें करें। बड़े भाग्य से तो आप आये यहाँ तक। जरा घर भी पवित्र हो जाय।"

आनन्द संगम के साथ हो गया।

कमरे में पहुँचकर आनन्द ने देखा—अच्छा कमरा है। मजे का सजा भी लिया है। खूँटियो में कई पैण्ट और कमीजें टँगी है। वह भी सब अच्छे कपडे की थी। आले में टेबिल क्लाक टिक्-टिक् कर रही थी। कुर्सियाँ भी बडी अच्छी हैं। एक किनारे टेबिल फैन भी रखा है।

"अच्छा, ज़रा आप बैठिये। मैं लस्सी बनवा लाऊँ आप के लिये।"

आनन्द नही-नही करता रहा, लेकिन "ऐसा कैसे हो सकता है!" कह कर सगम अन्दर चला गया। अन्दर की बातचीत के स्वर बाहर आ रहे थे—

"मुन्नू की माँ! ज़रा दो गिलास लस्सी तो बना देना जल्दी से; एक मित्र आये है।"

"दही और बर्फ ले आओ।"

"अभी लाया।" सगम सर्र से उसी कमरे से होकर बाहर सडक पर आ गया। दो मिनट में लौटा तो एक हाथ में प्याले में दही का कुल्हड और दूसरे में बर्फ का ढेला था।

"लो बना तो दो ज़रा जल्दी से, और देखो ज़रा गाढ़ी बनाना।"

"ज्यादा अच्छी-अच्छी करना है तो खुद बनालो अपने हाथ से। मुझसे जैसी बनती है वैसी ही बनाऊँगी। हाँ, नही तो। मैं क्या अपनी जान में कोई कसर रखती हूँ?"

"अच्छा-अच्छा। बनाओ जैसे चाहो। मगर चार पान भी लगा लेना। समझी?"

"समझी। लेकिन तुम बताओ, पंखा आज फिर रह गया! जाओ अभी। अभी जाओ मित्र को विदा करने के बाद, ठीक करा लाओ। कितनी मुसीबत होती है रात में?"

"अच्छा-अच्छा। लेकिन यह ठीक नही है। इसे लौटाकर पन्द्रह-बीस जो लगेंगे, लगाकर दूसरा नया पंखा लाऊँगा।" कहता सगम कमरे में आ गया।

कमरे में आते ही बोला—क्या बताऊँ आनन्द बाबू, ऐसी मुसीबत में जान है कि कुछ पूछिये मत। तन्खाह सा॰ली अस्सी रुपये, और काम पूरा

दो आदमियो का। मैं तो आजिज़ आ गया इस नौकरी से। और यह साली मँहगाई! यह तो और मज्ज़ माठा किये है। आप ही बताइये अस्सी रुपये में क्या हो! क्या खाये, क्या पहने? क्या मकान का किराया दे और क्या खर्च करें! फिर आजकल आदमी को न जाने क्या हो गया है। जाने कैसा उनके दिमाग़ में होता है कि एक दूसरे का विश्वास ही नही करते। मकान मालिक से कहा कि भाई अगले महीने में तीन महीने का किराया एक साथ ले लेना। लेकिन नही, साला समझता है कि मै भाग जाऊँगा कही। उसका रुपया खा जाऊँगा, रोज तगादे पर तगादे।"

आनन्द पहले हतप्रभ हुआ, फिर मुस्कराने लगा।

"वैसे नौकरी अच्छी भी है। चाहूँ तो रोज़ ही दस-पन्द्रह पैदा करूँ। लेकिन मुझसे नही होती यह बेइमानी। आनन्द बाबू, सच बताऊँ? कभी-कभी बहुत इच्छा होती है कि जब सभी पैदा करते हैं तो मैं क्यो पीछे रहूँ? लेकिन फिर हिम्मत नही पडती। पर अब इस भाँति ज्यादा दिन गुज़र नही होने की; अपनी इमानदारी के कारण बहुत भुगत लिया है। सब मिलाकर हज़ार रुपया कर्ज़ हो गया है। आपका ही चालिस रुपया है। कितने दिन से सोचता हूँ कि कैसे पटाऊँ; लेकिन बचता ही नही। एक-आध बार सोचा कि सब एक साथ न सही, पाँच-पाँच दस-दस ही दूँ। लेकिन महीने के आखीर तक दस-पन्द्रह दुकानदारो के ही कर्ज़ हो जाते हैं। वैसे मैं इतना जानता हूँ आपको अपने रुपयो की चिन्ता नही है। आपका उदार स्वभाव है। न जाने कितनो की इस तरह मदद की होगी! लेकिन मुझे तो आनन्द बाबू जिस किसी का एक पैसा मेरे ऊपर है, साँप की तरह डसता है।"

कमरे में कुछ ऊमस थी। आनन्द से रहा नही गया। बोला—"संगम ज़रा पंखा तो लगाओ, बडा अच्छा है पंखा तुम्हारा। कितने का लाये थे?"

लाया हूँ, कितने को लाये थे? "आप भी क्या कमाल करते हैं आनन्द बाबू! मैं भला पंखा ख़रीदूँगा! यह तो हमारे साहब का है। बनने के लिये

देने को कहा था, सो परसो का लाया रखा है। समय ही नही मिला, आज अभी जाऊँगा दे आऊँगा। कही जो रह गया, तो रह ही जायगा।"

संगम की बातो से वह समझ गया कि किस धूर्तता से संगम ने रुपये की बात उडा दी! उसका मुँह ही बन्द कर दिया है। अब इससे अधिक आशा क्या की जाय! अतः वह उठ खडा हुआ। बोला—ठीक है, मैं चलता हूँ।"

"अरे-अरे, लस्सी बन गयी है। उसे पीते तो जाइये।"

"लस्सी! मैं तुम्हारे यहाँ पानी तक पीना पाप समझता हूँ संगम। बेईमानी और क्षुद्रता के पैसो ने तुम्हारी आँखें फोड दी हैं। तुमको शर्म नही आती मुझसे झूठ बोलते हुए!—मुझको चराने चले हो! मैं जानता हूँ तुम शराब पीकर आये हो। तुम्हारे मुँह से उसकी दुर्गन्ध आ रही है। तुमने लाख पान खाया हो, पर इससे क्या? मुझ पर अपनी ईमानदारी और सच्चरित्रता का रोब ग़ालिब करने चले हो! मैं स्पष्ट देख रहा हूँ कि एक ओर तो तुम अपनी बढ़ती आमदनी के मद में विलासिता को आवश्यकता का रूप देते जा रहे हो, दूसरी ओर मुझसे अपनी आर्थिक तंगी का रोना रोते हो! डूब मरना चाहिये तुम्हें चुल्लू भर पानी में। यद्यपि उपकार करके किसी प्रकार के प्रतिदान की मैं कभी आशा नही करता हूँ, लेकिन तुम्हारी स्थिति देखकर ही मैं आज आया था। वैसे सच्ची बात तो यह है कि मैं आज रुपयो के लिये ही आया था। लेकिन मै वैसे भी आता तो तुम्हारी धूर्तता, तुम्हारे मन का चोर, तुम्हारी नस-नस में बस गयी चालबाज़ी और बेईमानी तुम्हें यह सोचने पर विवश कर देती कि मै रुपयो के लिए ही आया हूँ। और यही तुम समझ भी गये, जब कि डेढ़ वर्षों में मैंने तुमसे इस विषय पर कभी किसी तरह का संकेत तक नही किया। मैने आज तक उपकार को कभी उपकार के रूप में लिया ही नही। मैं उसे एक मानवीय धर्म ही समझता रहा हूँ! तुम जान नही सकते कि तुमको देखकर, तुम्हारे

बदले हुए दिन देखकर, आज तुम्हारे घर आकर, तुम्हारा घर देखकर मुझे कितनी खुशी हुई, कितनी तृप्ति मिली थी! तुम्हारे प्रति किये गये उस मानवीय धर्म पर मुझे प्रसन्नता हुई थी। अपनी इस प्रवृत्ति पर मेरा कुछ आस्था ही बढ़ी थी। लेकिन अब मुझे पाश्चाताप है कि उस समय तुम्हारे आँसुओ को देखकर मेरा मन क्यो पिघल गया था? क्यो मैंने तुम्हारे प्रति अपने उस कर्तव्य का निर्वाह किया था। भूल गया वह दिन जब तुम्हारे यहाँ खाने को नही था! जब तुम्हारी पत्नी के आजकल मे बच्चा होनेवाला था और तुम्हारे पास एक रुपया भी नही था! तब मैने तुम्हारे दुःख के साथ तादात्म्य स्थापित कर अपनी परेशानियो की परवाह न करके तत्काल चालिस रुपये दे दिये थे। अब प्रेम से घोट जाओ चालिस रुपयो को। समझे? मरते समय अपने बच्चो को भी यही समझा देना। मैं अब चला। मुझे रुपये की चिन्ता नही है। चिन्ता मैने कभी की भी नही थी। लेकिन याद रखना, इस तरह के कर्म तुम्हे मिट्टी में मिला देंगे!"

अपने कथन के अन्तिम वाक्यो में उसने एक स्त्री को शीशे के गिलास में लस्सी लिये खडा देखा था। फिर फचाक से उस के फर्श पर गिरने की आवाज़ भी सुनी थी। संगम के मुँह पर हवाइयाँ उडती छोड कर वह तेजी से चला आया था।

लौटकर कमरे में आने पर सहसा उसके मन में एक विचार आया। वह झटके से उठा, आलमारी खोली। कुछ पुस्तकें देखी, समझी और फिर उनमें से कुछ निकालकर एक सुतली के डोरे से बाँधकर हाथ में ले सडक पर निकल आया।

पुस्तकें पढने और संग्रह करने का उसे शौक था। शौक के नाम पर बस यही एक शौक उसे था। उसने आजतक कभी कोई पुस्तक बेची नही थी। एक तो वह ऐसी पुस्तक ही न खरीदता था जो एक बार पढने के बाद बेकार हो जाय और अगर खरीद भी लेता था तो काम निकलने के

बाद किसी को दे देता था। यह बात दूसरी है और पुस्तक उस दूसरे के यहाँ से कबाडी पुस्तक-विक्रेता के यहाँ पहुँच जाय !

लेकिन उस दिन—एक क्षीण दुःख और गहरे आत्म-संतोष से उसके पैर पुस्तक-विक्रेताओ की दुकानो की ओर उठे जा रहे थे।

आज वकील साहब को आये करीब एक हफ्ता हो रहा है। लेकिन पहले दिन छोडकर वह उनसे मिला नही। मिले कैसे ? वह सुबह आठ बजे निकलता है तो रात दस बजे लौटता है, जब वकील साहब सो जाते हैं। सुबह वे पढते है। दूर क्या जाऊँ, महेश से ही दो दिन से बातें नही हो पायी है। तीन दिन तो वह अपने फूफा के यहाँ पडा रहा है। कल भरोस पूछ रहा था—"भइया कहाँ रहते है आप ? मालिक बहुत पूछत रहे।"

"क्या कह रहे थे भरोस ?"

"यही कि घर पर दिखाई नही पडते। क्या करते हैं बाहर ? रानी बिटिया भी बहुत पूछ रही थी कि मास्टर साहब तो ऐसा गायब रहते हैं जैसे घर में रहते ही नहो।"

"और कुछ ?"

"और कुछ का, यही कहत रहेन।"

"अच्छा।" कहकर वह बाहर निकल गया था।

इसी समय बरामदे में किसी के आने की आवाज़ हुई—"भरोस ओ भरोस ! ये लो, यह लिफ़ाफ़ा डाल दो—और ये पैसे है। दो पोस्टकार्ड और दो लिफाफा लेते आना।"

आनन्द जान गया कि यह रानी है। तभी रानी किवाडों के पास आकर बोली—"मास्टर साहब !"

"ओः ! रानी ।" वह पलँग पर खिसक कर दीवार के सहारे बैठता हुआ बोला—"आओ न !"

रानी अन्दर आ गयी ।

"कहाँ रहते हैं आप ? दिखाई हीं नही पडते हैं । पापा ने पूछा, अम्माँ ने पूछा, आप का कुछ पता ही नही चलता है ।" रानी कुर्सी पर बैठते हुए बोली ।

"कहीं नहीं, यूँ ही इधर कुछ परेशान था ।"

"हाँ, महेश भाई बता रहे थे कि आपकी पुस्तक पर कृष्णप्रकाश ने नाम नही दिया । पापा को भी बडा दुःख हुआ । कह रहे थे कि कृष्णप्रकाश से जरा भेंट हो तो कुछ बात करूँगा ।"

"अरे उसी की एक बात नही है रानी !"—आनन्द सोच रहा था—काश रानी की जगह रंजना होती । वह सब कुछ खोलकर कह देता । जिसके सामने वह आदि से लेकर इति तक खुल जाता । क्योंकि उसे विश्वास था कि रंजना से यदि वह कहे, तो वह उसके माथे पर पडी उदासी की घटाओ को, बालो की लट के बहाने, अपनी जादू भरी अँगुलियो से ऊपर कर, दूर कर देगी ।—रंजना, जो उसकी क़मीज़ का कालर ठीक कर अपनी बाहो में लेकर कुर्सी पर ढकेल दे और कहे—पागल ! इसी हिम्मत पर जीवन का संघर्ष झेलोगे ?—रंजना, जो उसकी आँखों में आँखें डाल उसके भीतर नया उत्साह, नया हास्य और नयी प्रेरणा का अमृत घोल दे । —रंजना जो उसके जलते माथे पर एक फूक मारकर कहे कि लो मैंने फूक दिया । अब सब ठीक हो जायेगा !

लेकिन रानी तो रंजना नही है । क्या हुआ जो वह युवती है, सुन्दर है, समझदार और सहृदय है । पर वह तो उसकी शिष्या है । वह उसका मास्टर जो है । बीच में एक रेखा है, जिसके परे उसे नही जाना है—नहीं जाना है ।

"ऐसे ही, पहले जरूर सोचा था, लेकिन फिर इतिहास ही जँचा। आपका विषय जो है मास्टर साहब ! आपको कई कहानियाँ सुनानी हैं लेकिन आपतो।"

"रानी ने बच्चो की तरह रूठने-सा मुँह फुला लिया।

आनन्द को हँसी आ गयी। कितना बचपना है रानी मे अभी!—"तो सुनाओ ! ये लो, खुद तो सुनाना नही चाहती और न सुनने का दोष मुझ पर देती हो!"

"और हाँ मास्टर साहब, आप प्रतियोगिता की तैयारी नही कर रहे हैं?"

"करूँगा रानी।"

आनन्द समझा नही, रानी ने कहाँ की बात कहाँ लगा दी। उसे लगा जैसे किसी ने उसके घाव को सहलाने के धोखे दुखा दिया है। अतः वह भी बात बदलने के इरादे से बोला—"इस बार तो तुम्हारे बैडमिन्टन-कैप्टेन होने की सम्भावना थी! वह तो चली गयी!"

"जाने दीजिये। मैं यहाँ होती तो भी नही बनती।"

"क्यो?"

"पापा कही बाहर जाने देते हैं! पर साल कितनी मुश्किल से जाने दिया था। बाद में मुझे पता लगा कि उनका ख्याल ठीक ही है। आपको पता नही, शीला और कपूर साहब के विषय मे लोगो ने कितना उडाया था! मैंने तो तय कर लिया है कि अब की केवल डिस्ट्रिक्ट टूर्नामेंट में भाग लूँगी। और वह भी महेश के साथ। और हाँ मास्टर साहब, जानते हैं शीला मुझसे क्या कह रही थी।"

"छोडो उसको। तुमने वे किताबें पढली जो ले गयी थी!"

"अरे कहाँ मास्टर साहब ! घूमने से फुर्सत ही नही मिलो। एक बात इस बार आपके भाई साहब आनेवाले थे?"

"कौन, रामू ?"

"हाँ रामू भाई साहब ।"

"उसने वही प्रवेश ले लिया है ।"

बडी देर तक इसी तरह इधर-उधर की बातें होती रही। बीच में महेश भी अपने कमरे से आगया । उसके आने से बातो मे और भी रस घुलने लगा । वह रानी को चिढाता-सा रहा; लेकिन रानी कब हार मानने वाली थी । तभी पोर्टिकों में कार रुकने की आवाज़ हुई। रानी बोली—"पापा आ गये ।" इतने में वकील साहब दरवाज़े के पास आकर बोले—"आनन्द !"

"जी ।" आनन्द उछलकर चारपाई से नीचे आ रहा । पैर में चप्पल डाल ही रहा था कि वकील साहब ने दरवाज़े पर आकर कहा—"अच्छा बैठक जमी है ?"

"जी, रानी नैनीताल की कहानियाँ सुना रही है ।"

"अच्छा, अच्छा, बैठो तुम लोग । महेश, तुम्हारी तैयारी तो ठीक है न ?"

"जी चाचा जी' वह कुर्सी से उठा और हाथ की पिन अपने बगल से रानी के हाथ में चुभाता हुआ बोला—'तैयारी तो है लेकिन भाग्य ही तो है । आप लोगो का आशीर्वाद चाहिये ।"

तब तक रानी 'उई' कहकर उछल पडी ।

वकील साहब चौंके—"क्या बात है बेटी ?"

" कुछ नही चाचाजी । आनन्द की लापरवाही से कुछ चीटियाँ हो गयी है कमरे में ।"

रानी हाथ मल रही थी । वकील साहब हँस पड़े—"अच्छा-अच्छा, करो बात तुम लोग ।" और अपने कमरे की ओर चले गये ।

"अभी आया एक मिनट में। यह पत्र ज़रा डाल दूँ।" कहकर आनन्द टेबिल पर से एक पत्र उठाकर बाहर निकल गया।

"बडे खराब हैं आप! देखिये, खून झलक आया। अभी आपको चुभा दूँ तो मालूम पडे।" रानी ने महेश को घूरते हुए कहा।

"कभी अच्छा भी था! देखें कहाँ खून आ गया?"

महेश ने रानी का हाथ पकडकर उसे अपनी ओर खीचा।

रानी ने हाथ झटक दिया—"रहने दीजिए। जानती हूँ कितनी हमदर्दी है आप में।"

"खज़ाना हूँ हमदर्दी का खज़ाना। आप अभी जानती ही क्या हैं?"

"वह भी देख लूँगी।"

"देख लेना! अकडती क्या हें आप?"

"अब चुप हो जाइये। नही तो हाँ, आज लडाई हो जायगी।" रानी ने हँसते हुए कहा। कपोलो में अमृत कूप पड गये।

"हाँ नही तो। हमारा गुस्सा जोर गरम"।

महेश जल्दी छोडनेवाला थोडे ही था।

"हटो" और रानी मेज़ पर पडी हुई कोई पत्रिका उठाकर चल दी। फिर झट लौटकर बोली—"आपकी परीक्षाएँ कब खतम हो रही हैं?"

"चौबिस को। क्यो?"

"उसके बाद अभ्यास शुरू करेंगे बैडमिण्टन का।"

"अपने मास्टर साहब के साथ करो ना?"

"मास्टर साहब को खेलना ही कितना आता है। हाँ, राज दीदी से सीख आयें तो मेरे साथ खेलें भी। तब भी पन्द्रह दिन तो निल-गेम ही पायेंगे।"

रानी हँसती हुई भाग गयी।

तब तक आनन्द आ गया। "कहाँ जाते हो महेश? बैठो न, थोडी देर?"

महेश बोला—"हम भी चले भाई। जरा अन्तर्राष्ट्रीय विधान से निपटना है। आज शाम को चलेंगे कहीं?"

"क्यों अब, पढना नही है क्या?"

"अमाँ पढ़ना तो है; लेकिन जान भी तो देखनी है। अच्छा, कही जाना नही।"

"अच्छा।"

महेश के जाने के बाद आनन्द मेज साफ करने लगा। घण्टे भर में ही रानी ने सब उलट-पलट कर दिया था। तभी रानी फिर कह कर चली गयी—"मास्टर साहब, आप को पापा बुला रहे हैं।"

"कह दो, आ रहा हूँ"

श्रीमनमोहन कहने के लिए एडवोकेट हाईकोर्ट हैं; लेकिन वकालत कितनी चलती है, यह वही जानते हैं। फिर वकालत की ओर उनका ध्यान भी नही है। पिता का कमाया काफ़ी पैसा था। अच्छी जमीदारी थी। नगर में कई बँगले और कोठियाँ थीं; एक मिल के डाइरेक्टर्स में से थे। पिता नकद भी काफ़ी छोडकर मरे थे। छोटा भाई पिता के जीवन-काल में ही इग्लैंड गया था, लौटा तो पिता जी की मृत्यु हो गयी थी। उसके बाद वह आई० सी० एस० हो गया था और अब केन्द्रीय सरकार में इतने उच्च पद पर था कि उसकी तूती बोलती थी। उसकी पत्नी भी वही कलकत्ते में एक उच्च पद पर थी। नौकरी में आने के बाद उसने घर के पैसे

की ओर मुँह नही फेरा। वकील साहब ने पिता के समय मे ही उनके साथ वकालत प्रारम्भ कर दी थी। पिता की जमीजमाई वकालत थी। अगर मेहनत करते तो बहुत आगे निकल जाते, लेकिन उनसे मेहनत हो न सकी। फिर तब तक वकीलो की भी भरमार हो चुकी थी। और वकालत चलाने के लिये नये-नये हथकण्डे भी ईजाद कर लिये गये थे। रिक्शेवालो और ताँगेवालो को आसामियो के लिये पैसा देना, होटलवालो और धर्मशाला वालो को मिलाना, मुवक्किलो के लिये और तमाम आदमियो को तय करना। यह एक प्रकार की पण्डेबाजी थी, जिसमे यजमानो को फसाने के लिये पचीसो प्रकार की तिकडम आवश्यक है, वकील साहब को कुछ जॅची नही या साफ कहिये उनसे हो नही सका। हो न सकने का यह मतलब नही कि वे मुवक्किल फँसाने के इन सब नुस्खो से बिल्कुल घृणा ही करते थे। असल में इन लटको को साधने के लिए जिस कुशलता की आवश्यकता होती है उसका वकील साहब में अभाव था। इसलिये इस कोशिश के बावजूद उन्हे सफलता नही मिली। अत स्वाभाविक रूप से इन झंझटो के प्रति उनको अरुचि हो गयी।

एक घटना ऐसी भी हुई कि फ़ौजदारी के एक नामी वकील काफ़ी बीमार पड कर अस्पताल चले गये और दूसरे ने बडी तेज़ खबर उडा दी कि उनकी मृत्यु हो गयी। फिर इसी बीच उनके कितने ही मुवक्किल पार कर दिये गये। इस घटना से उन्हे बडी घृणा हुई। मन उनका पहले से ही नही लगता था। अब तो और उचट गया। पढ़ने के बडे शौकीन हैं। शुरू के कुछ दिनों में 'हिन्दुस्तान टाइम्स' के प्रतिनिधि भी थे। अब भी जब कभी उसमें तथा अन्य पत्रो में लिखते रहते थे।

सार्वजनिक कामो में बडी रुचि रखते थे। समय तो नही दे पाते थे; लेकिन अपनी उदारता और सरल प्रकृति के कारण कितनी ही संस्थाओ से सम्बन्धित थे। वैसे आर्थिक दृष्टि से बडे सतर्क थे। आय के लिये कही- न-कही से गोटी ज़रूर बैठाते रहते थे। अधिकारियो से बडा मेल-मिलाप रखते

थे। उनके घर के खर्चे से ज्यादा बाहर का खर्चा था। सन्तान के नाम पर दो पुत्र और पुत्रियॉं थी। बडा लडका नरेन्द्र स्टेट-बैंक की नौकरी में बम्बई में था। छोटा कालेज में पढ़ता है। बडी लडकी रानी थी और छोटी अपने चाचा के साथ रहती थी।

सभी लोगो के प्रति और विशेपतः विद्यार्थियो के प्रति वे बडे ही उदार थे। उनके पिता तो कितने ही विद्यार्थियो को छात्रवृत्ति भी देते थे। वकील साहब ऐसा कुछ तो नही करते। लेकिन हॉं, जब किसी को ठीक-ठीक समझ लेते तो थोडी-बहुत मदद अवश्य कर देते थे।

डाक्टर मिश्रा ने जब उनसे आनन्द की प्रशंसा की और उसकी स्थिति के विषय मे बताया, तो उन्होने उसे विमल के लिए रख लिया था। फिर रानी भी उसी से पढने लगी। वकील साहब उससे प्रभावित थे ही। इसी बीच मित्रा साहब से उनकी और बाते हुई तो एक दिन उन्होने कहा कि आनन्द, तुम एक काम क्यो नही करते ? यही आ जाओ न ? तुमको आना भी तो दूर पडता है, फिर इतना बडा बॅगला है। बाहर का कमरा तो खाली ही रहता है। तुम रहोगे, तो मुझे भी एक बोलने-बतानेवाला आदमी मिल जायेगा।

आनन्द ने तब भोजन की बात की,—"वहॉं तो कई आदमियो का मेस चलता है।" वकील साहब ने इस प्रश्न को हँस कर टाल दिया था—"अरे भोजन ! जब घर में महराजिन बनाती है, चार आदमियो का खाना बनता ही है, तो क्या तुम्हारे खाने से कम पड जायगा ?

इस भॉंति वह आ गया था। फिर उसके आने के कुछ महीने बाद ही महेश अपने पिता का पत्र लेकर वकील साहब के पास आगया था।

महेश के पिता किसी समय में उनके सहपाठी और अभिन्न मित्रो मे थे। इधर जबलपुर ठेकेदारी में उन्होने काफ़ी कमाया था। हॉं तो, महेश जो पत्र

लेकर आया था, उसमें लिखा था— "यदि आप महेश को कही एक-आध अच्छा सा कमरा दिला दें तो मैं बहुत ही अनुग्रहीत होऊँगा।" आदि।

इस पर वकील साहब बहुत हँसे थे। —"अनुग्रहीत होगे? क्या होगे? अनुग्रहीत होगे। अरे जब तुम उनके लडके हो, तो मेरे पहले हुए कि नही? ले आओ सब सामान यही। तुम्हारा और आनन्द का अच्छा साथ रहेगा।"

इसभाँति महेश भी आनन्द के सामने के कमरे में आ गया था। ऐसे थे वकील साहब।

आनन्द जब कमरे में पहुँचा तो कुर्सी पर बैठे सिगरेट पीते हुए वे कोई कागज़ देख रहे थे। पगध्वनि से उन्होने सिर उठाया और हाथ का कागज़ सामने की तिपायी पर रखते हुए वे बोले—"आओ आनन्द। इधर तुमसे तो बात ही नही हुई।"

उन्होने चश्मा उतारकर कागज़ के ऊपर रख दिया। फिर वे कुर्सी की पीठ के सहारे टिक गये। आनन्द चुपचाप जाकर एक कुर्सी पर बैठ गया।

"तुम्हें इस बीच कोई तकलीफ़ तो नही हुई?"

"नही तो।"

"महाराजिन आती थी न समय से?"

"जी।"

"सुना, वह बीच में बीमार पड गयी थी?"

"हाँ, लेकिन दो-चार दिन बाद ही ठीक हो गयी थी।"

"तो होटल में खाते थे?"

"एक-आध दिन वहाँ भी खा लिया था। नही तो हलवायी के यहाँ से सामान मंगवा लेते थे।"

"अच्छा !" वकील साहब हँसते-हँसते बोले—"तो यह कहो कि राम-आसरे को ओब्लाइज करते थे।"

"जी" आनन्द मुस्कराया।

"और बताओ ? क्या कर रहे हो आजकल ? अब क्या विचार है ?"

"कुछ समझ में नहीं आता पापा, क्या करूँ ?"

"क्यो, आखिर कुछ तो सोचा होगा ?"

"अभी तो कुछ नही निश्चय कर पा रहा हूँ। यूँ शोध का प्रपत्र भी भर दिया है। सोचता था अगर कुछ पार्टटाइम या लिखने-पढ़ने का काम मिल जाता, तो शोध ही पूरी कर डालता। लेकिन रामू की भी चिन्ता है।" आनन्द ने बडी शीलता से कहा।

"सो तो है ही।" वकील साहब ने कुछ सोचते हुए कह दिया।

"और पापा, मैं नही चाहता कि आर्थिक पहलू को लेकर उसके अध्ययन में किसी तरह की बाधा पड़े।"

"बडा सुन्दर विचार है तुम्हारा।"

"लेकिन न तो कोई काम ही मिला, न लिखने आदि में ही प्रगति हुई। कृष्णप्रकाश ने जो कुछ किया, शायद वह आपको विदित ही होगा। उससे मेरा दिल टूट गया है, पापा जी ! अब मैं इस तरह काम करना नहीं चाहता।"

"हाँ, मुझे पता लगा है। सचमुच यह बडी नीचता है कृष्णप्रकाश की। लेकिन करोगे क्या ? अब तो वह हो ही गया। खैर ! बताऊँगा कृष्णप्रकाश को। अभी तो उनका बहुत काम पडेगा मुझसे। तुम्हे पता है कि मैं बोर्ड का मेम्बर हो गया हूँ और इतिहास और हिन्दी की कमेटी में भी आ गया हूँ।"

"पढ़ा था समाचार पत्र में।"

"अब दौड़ेंगे पचास बार, तब मैं बताऊँगा। हाँ तो मैं बात कर रहा

था तुम्हारे बारे मे। एक बात बताओ आनन्द! शोध की तुम्हारी बहुत इच्छा है न?"

"जी" आनन्द समझ नही पा रहा था, वकील साहब कहना क्या चाहते है।

"ठीक है। लेकिन शोध के बाद क्या करोगे? नौकरी ही न?"

"हॉ, और क्या?"

"तुम सोचते हो कि शोध के बाद नौकरी धरी-धरायी मिल जायगी। "कुछ कोशिश नही करनी पडेगी?"

"करनी क्यो नही पडेगी? लेकिन कुछ सुविधा तो जरूर ही रहेगी।"

"मानता हूँ। लेकिन मन का काम न मिलने पर एक असन्तोष भी तो होगा कि नही? कि देखो तीन साल भी खराब किये और नौकरी भी मिली, वो इच्छा के प्रतिकूल!"

"हाँ, यह बात तो ठीक है।"

"इसी से मै सोचता हूँ कि जब शोध के बाद भी नौकरी की तलाश से माथापच्ची करना है, तो अगर अभी कोई अच्छी नौकरी मिल रही है तो कर क्यों न ली जाय? अगर शोध के लिये वास्तविक इच्छा है और इच्छा में कुछ दम है, तो वह आगे पीछे भी तो हो सकती है कि नही?"

"आप ठीक कहते है पापा जी। लेकिन नौकरी मिल कहाँ रही है। और क्लर्की! क्लर्की ही अगर करना तो होता मै बी० ए० के बाद ए० जी० आफ़िस में काम करके क्यो छोड देता।"

"तुम उसकी चिन्ता क्यो करते हो? वह तो मैं बताऊँगा न! और क्या तुम समझते हो कि मै तुम्हे ऐसी ही नौकरी बताऊँगा?"

"अरे नही पापा जी! आप भी क्या कहते हैं? आप तो मेरे लिये पिता के तुल्य हैं।"

"इसी से तो कहता हूँ। बम्बई में एक अमेरिकन फ़र्म है मशीनरी के पार्ट्स की, जिसकी एक ब्रान्च है लखनऊ में। उसके अस्सिटेन्ट मैनेजर नरेन्द्र के दोस्त हैं। उन्हे एक आदमी की ज़रूरत है। नरेन्द्र ने ही मुझसे कहा था कि अगर आनन्द को रखवा दिया जाय तो कैसा रहेगा! मैने कहा—ठीक है। अच्छा तो है। विदेशी संस्था है, परिचय बढ़ा और काम अच्छा रहा तो तरक्की भी कर सकते है। अगर मौका लगा तो बाहर घूमने के भी अवसर हैं। तनख्वाह भी अच्छी देंगे, साढ़े तीन सौ। क्या बुरा है?"

"बुरा! इससे अच्छा क्या होगा।" आनन्द मन-ही-मन खुश हुआ।

"तो लिख दूँ नरेन्द्र को?"

"अवश्य लिख दीजिए।"

"मैं कल ही लिखता हूँ। और अपना काम करना, हो सके तो प्रतियोगिता की भी धीरे-धीरे तैयारी करना। कौन सरकारी नौकरी है।"

तभी रानी ने आकर कहा—"पापा चाय तैयार है।"

"तो यही ले आओ न बेटी। आनन्द भी है। और हाँ, देखो, अगर महेश पढ़ने में लीन न हो तो उसे भी यही बुला दो। पढ़ता हो तो रहने देना। आजकल उसका एक एक मिनट कीमती है। समझी! अभी विमल नही आया क्या?"

"अभी नही आया। आज उसके स्कूल में उत्सव है।" कहती हुयी रानी चली गई। थोडी ही देर में वह चाय की ट्रे लेकर आयी तो वकील साहब ने कहा—'बेटी वह बडी तिपायी उठा ले, यह छोटी पडेगी।'

आनन्द ने उठकर बडी तिपायी लाकर छोटी के बगल में रख दी। वकील साहब ने पूछा—"महेश आ रहा है?"

रानी ने कहा—"जी।" और तभी महेश आ गया।

चाय पीने के बाद भी बड़ी देर तक आनन्द की नौकरी के बारे में बातें होती रहीं। वकील साहब ने यह भी कहा कि वह देखेंगे अगर कोई प्रकाशक मिला, तो वह कुछ लिखने आदि का काम भी दिलाने का प्रयत्न करेंगे।

५

आनन्द जब रंजना के घर पहुँचा, तो वह बाहर लान में एक आराम-कुर्सी डाले बैठी हुई थी। एक पुस्तक उसके हाथ में थी और कुछ पुस्तकें सामने पडी एक छोटी सी मेज पर रखी थी। आनन्द ने उसको देखा, तो उसने सिर नीचा करके पुस्तक पर आँखें गडा ली। आनन्द ने भी देखा और रिक्शा विदा करके, लान के किनारे की क्यारियो से कुछ फूल तोड़े, फिर उन्हे अञ्जलि में सँभाले चुपचाप वह रंजना के पास पहुँचा और खड़ा हो गया।

रंजना ने दृष्टि नही उठायी। आनन्द ने फूल उसके सिर पर डाल दिये। एक भी शब्द कहे बिना वह चुपचाप स्थिर खडा रहा।

रजना उठ खडी हुई। बोली—"यह क्या कर रहे हैं आप?" और झुककर वह जमीन पर गिरे-पडे फूल बीनने लगी। कुछ फूल उठाकर उसने पुस्तको पर रख दिये।

"देवी को प्रसन्न कर रहा हूँ।"

"देवी वैसे ही प्रसन्न हैं।"

"प्रसन्न हैं?"

"हाँ। और देवी के प्रसन्न होने-न-होने से किसी का क्या बनता बिगडता है?"

रंजना ने पुस्तकें उठाते हुए कहा। फिर वह घर की ओर चल दी। उसके साथ चलते हुए आनन्द ने कहा—"वाह! देवी अप्रसन्न होगी तो भक्त को अभिशाप नही लगेगा? और हाँ रंजना, मैं तुमसे यह कहना तो भूल ही गया कि मुझे नौकरी मिलनेवाली है।"

"बडी अच्छी बात है। मुँह लटकाये हुए उसने उत्तर दिया। फिर आँखो के पलक ऊपर उठाये और बिना मुस्कराये कह दिया—"कहाँ ?"

"अभी तो लखनऊ में, फिर देखो कहाँ जाना पडे।"

'अच्छा तो है। एक तो नवाबी शहर, फिर काफ़ी जिन्दादिली है वहाँ तो।'

कमरे में पहुँचकर किताबें उसने टेबिल पर रख दी और कुर्सी की ओर इशारा करती हुई बोली—"बैठिये। कैसे आ गये आप ? माँ तो आपके यहाँ गयी हैं।"

"मेरे यहाँ ?"

"हाँ, वकील साहब के यहाँ। अभी भरोस आया था। वही साथ ले गया है। मौसी ने बुलाया है।"

आनन्द ने रंजना को देखा। वह उदासी की प्रतिमा की तरह टेबिल पर हाथ टेके खडी थी। मुरझाया हुआ मुँह और खाली-खाली आँखें। उसने निगाह उठायी, तो वह नीचे देखने लगी।

"क्या बात है राज, बैठो न ?"

"ठीक है। मैं खडी ही अच्छी हूँ।"

"क्यो, क्या बात है ?"

"कुछ नही, मै आपके बराबर बैठने योग्य नही हूँ !"

उसका गला भर चला था।

"मैं इन दिनों बेहद परेशान था राज। कई बार इच्छा हुई कि तुमसे मिलूँ, लेकिन ......।" आनन्द ने वाक्य अधूरा छोड दिया। फिर वह बोला—"पता नही राज, क्या बात है, जब मैं ज्यादा परेशान होता हूँ, तब तुम्हारी बहुत याद आती है। जानती हो क्यो ?"

"जानकर क्या करूँगी। याद आ जाती है, यही क्या कम है !"

आनन्द ने देखा, वह काँप-सी रही है। उठकर उसने उसे कन्धे से लगा लिया। फिर उसे सँभालते हुए कहा—"राज ! राज !! रंजना !!! तुम्हारी तबियत तो ठीक है न ?"

तब तक कई दिनो से बलात् बँधा हुआ बाँध टूट गया। धार को सहानुभूति का सहारा मिला, तो रास्ते की चट्टान छिटककर दूर जा रही।

"तुम यहाँ क्यो आये आनन्द? जब तुम्हे लडकियो पर विश्वास नही, तब तुम क्यो आये? मैं भी लडकी ही हूँ; मेरे भी तो पैर गड्ढे मे पडे होगे। मैं भी तो अपवित्र हूँ आनन्द! तुम दूषित हो जाओगे न? तुम्हारी सफ़ेदी मटमैली हो जायेगी आनन्द! तुम्हें यहाँ नही आना चाहिये था।"

आनन्द उस दिन इस बात को उतनी गहराई से नही समझा था कि उसकी बात से रंजना कितना आहत हो गयी है। आज उसे लगा, उसने सचमुच रंजना को अत्यधिक पीडा पहुँचायी है। उसका मन स्वयं गीला हो आया। उसके मुँह से निकल गया —"मुझे माफ़ करो रंजना। मैंने उस दिन यूँही बक दिया था। मैं तुम पर अविश्वास करूँगा तो कहाँ जाऊँगा! तुम पर सन्देह करके मैं अपने प्रति शंकालु नही हो जाऊँगा! चुप हो जाओ रंजना। बस, बहुत हो चुका।"

रंजना आनन्द के पास से धीरे से हटी और कुर्सी पर बैठ गयी।

"रंजना, तुम भी अगर मेरी बातो का बुरा मानोगी तो हो चुका। मैं किससे कुछ कहूँगा! अगर ‥ ।"

"बुरा मानने की बात नही (हिचकी) आनन्द। तुम्हें क्या पता, इन तीन हफ्तो में मैंने क्या नही सहा! दुनियाँ कहे, लेकिन मैंने कभी नही सोचा था कि तुम भी इस तरह कहोगे। (हिचकी) मै ही जानती हूँ, ये दिन कैसे कटे हैं। तुम्हे क्या? तुम तो मित्रो के बीच हँस-बोल लेते होगे। लेकिन मैं? मैं रोना चाहकर भी रो नही सकी हूँ। आज एक हफ्ता हो गया, डाक्टर साहब ने शोध का प्रारूप बनाने के लिये कहा था, लेकिन एक अक्षर नही लिखा गया।"

"कोई बात नही; आज्ञा होगी, तो मैं बनवा दूँगा।"

आनन्द ने वातावरण को हल्का बनाने का प्रयत्न किया।

"हूँ, बड़े आये बनवानेवाले।" कथन के साथ रजना अपने ऑसू पोछने लगी।

"अरे ये ऑसू तो मुझे बडे अच्छे लग रहे थे। प्यार के प्रतीक थे वे। हृदय का रुद्ध द्वार खोलकर बाहर निकले थे। तुमने पोछ क्यो दिया ? मैं तो दूसरा 'ऑसू' लिखने की सोच रहा था।"

आनन्द को लगा, उसे अपने प्रयास मे सफलता मिल रही है।

"महाप्राण प्रसाद ने 'ऑसू' के लिये किसी को ज़बरदस्ती नही रुलाया होगा। जाने कौन बता रहा था, जब उन्होने देवसेना का गीत—'आह वेदना मिली विदाई' लिखा, तो खुद भी एक बार उनकी ऑखें गीली हो गयी थी।"

"ओः ! तुम देवसेना की बात करती हो ! तो क्या उसी का अनुकरण करने का विचार है ?"

"अगर तुम 'स्कन्दगुप्त' निकले, तो चारा ही क्या है ?"

विवश रंजना मुसकरा उटी। उसे प्रतीत हो रहा था—आनन्द निर्मल है, आनन्द निष्कलंक है, आनन्द निर्विकार और निरंजन है।

"आनन्द, शायद तुम्हें एक बात न मालुम हो, छै-सात दिन हुए, भैया आये थे; कह रहे थे अब यहॉ रहना बेकार है। वहॉ अकेले मेरा मन ऊबता है। क्यो न यह बँगला बेचकर सब वही चले। इतने बड़े नगर में अकेले नही रहा जाता है।" राज धीरे-धीरे बोल रही थी—"लेकिन मॉं ने इनकार कर दिया। वह कहने लगी—'उनका बनवाया हुआ बँगला वह नही बेचेंगी।' मेरे पिता जी को इलाहाबाद बहुत पसन्द था, आनन्द। वह तो कहते थे कि उत्तरप्रदेश में अवकाश प्राप्त जीवन बिताने के लिये इलाहाबाद से बढ़कर अच्छा नगर कोई है ही नही। उन्होने बडे मन से यह बँगला बनवाया था।"

"फिर भैया ने क्या कहा ?" आनन्द ने पूछा।

"कहने लगे कि कुछ भाग किराये पर उठा दें तो कुछ हर्ज है ? लेकिन मॉं नहीं मानी। उनका कहना है कि दुनियॉ तो यहॉं तीर्थराज में मरने

आती है और वह बाहर मारी-मारी फिरें। पिताजी के मरने के बाद अम्माँ नित्यप्रति गंगा-स्नान करती हैं। उस बार जब बीमार पड़ी तब डाक्टर ने बहुत मना किया था, पर अम्माँ भला कहाँ मानने वाली! असल बात यह है कि माँ चाहती है कि भैया को अगर वहाँ दिल्ली में अकेलापन लगता है, तो उन्हें विवाह कर लेना चाहिये।"

"बिलकुल ठीक है। अब तो उन्हें विवाह कर ही लेना चाहिये।" स्वाभाविक रूप से दिये, अपने ही उत्तर से—"वे कहते हैं, जब राज का हो जायेगा तब देखेंगे"—राज लाल हो उठी, कपोलो में कटोरे से खिल उठे।

"अच्छा तो है" आनन्द ने उस पर दृष्टि गड़ाते हुए मुस्कराकर कहा।

"हूँ, खाक अच्छा है। जरा बताइये तो, क्या अच्छा है?"

तभी राज की माँ आ गयी।

आनन्द ने उठकर प्रणाम किया तो बोली—"जीते रहो बेटा। तुम तो ऐसे निकले कि आना ही छोड़ दिया। अभी कामेश्वर आया था। कोई बोस, दोस्त है उसका। उन्ही के साथ आया था। दो दिन तो रहा ही। पूछता था तुम्हें। कहता था कि समय नही है नही तो आनन्द से अवश्य मिलता। अरे कभी-कभी तो हो जाया करो।"

"क्या बताऊँ मौसी! कुछ काम ही ऐसा था इन दिनो कि आ नही पाया। यद्यपि मैं उस दिन आया था, पर आप मिली ही नही। बड़ी देर तक इन्तज़ार करता रहा। राज ने तो बताया होगा?"

"बताया था, मैं उस दिन ज़रा प्रमोद के यहाँ गयी थी। तुमने कुछ पानी-वानी पिया?"

"कहाँ मौसी? इसी में तो बहस चल रही है। राज कहती है कि पहले आप खिलाइये, मैं कहता हूँ कि पहले तुम। अब आप ही फैसला कीजिये मौसी! परीक्षाफल पहले इनका निकला कि मेरा? शोध का विषय पहले इनको मिला कि मुझको?"

तभी रंजना बोल उठी—"और प्रथम श्रेणी किसको मिली मुझे, कि इनको ? नौकरी पहले मुझको मिली कि इनको ? माँ, तुम्हे पता नही, इन्हे नौकरी मिल गयी है लखनऊ में।"

"यह बहुत अच्छा हुआ। कब से काम शुरू करना है ?"

"अभी मिली नही मौसी। मिलनेवाली है।"

"कितना मिलेगा ?"

"अभी तो करीब साढ़े तीन सौ देगे। फिर जो मिले।"

"ये लो माँ ! फिर भी कहते हैं कि तुम खिलाओ।"

"अच्छा, अच्छा।" माँ हँस पडी बोली—"अपनी बात तुम दोनो जानो। लेकिन मुझे तो खिलाना ही चाहिये। जाओ, वो जो परसो लड्डू बनाये हैं, निकाल तो लाओ।" अब तक खडी राज की माँ तब कुर्सी पर बैठ गयी।

"वाह ! वो तो मैंने सिर्फ़ अपने लिये बनाये है। मुँह धो रखें ये !"

"चल भाग ! पागल कही की !"

राज दौडकर गुनगुनाती हुई चली गयी। थोडी देर मे वह लौटी तो आनन्द और अम्मा में पता नही क्या बातें हो रही थी। पर शीघ्र ही उसकी समझ में आया कि वही बातें है, जो वह आनन्द से कर रही थी।

"अब तुम्ही बताओ आनन्द, सारी जिन्दगी तो मैंने यहाँ काटी, अब अपना निजी घर छोडकर कहाँ मरने जाऊँ ! और तुम नौकरी पेशावाले आदमी ठहरे। आज यहाँ, कल वहाँ बदली हो गयी, तो भाई चलो वहाँ के लिये बोरिया-बिस्तर बाँधो। फिर अब तुम बच्चे नही हो। तुम्हें चाहिये कि विवाह करो, घर बसाओ। मुझे कुछ छुट्टी तो मिले। कहते हैं, पहले राज के हाथ पीले हो जायँ, तब सोचूँगा। लो तब सोचेगे ? यह भी तय नही कि जल्दी कर लेंगे। एक-से-एक अच्छे रिश्ते आते हैं, लेकिन उसके तो कान पर जूँ नही रेंगती। इधर राज का हाल यह है कि उससे कुछ कहो तो आँसू भर लेती है। ज्यादा पढा-लिखा देने का यही तो असर होता है।

आज वे जीवित होते, तो इन सबकी इतनी हिम्मत होती! अरे यही उमर होती है शादी ब्याह की। फिर उमर बढी तो परेशानी ऊपर से। लोग नाक-भौं सिकोडते हैं कि आखिर क्या बात थी, जो अब तक शादी नही हुई।" कहकर माँ ने यह देखने के लिये कि राज अभी तक लौटी क्यो नही, सिर घुमाया तो राज एक हाथ में गिलास और दूसरे में तश्तरी सम्भाले खडी थी। उसे देखते ही बोली—"तू गुप-चुप बनी क्या सुन रही है! तेरी ही बड़ाई कर रही हूँ।"

राज ने चुपचाप तश्तरी और गिलास रख दिया। फिर वह कमरे के बाहर हो गयी।

"दोनो भाई-बहन एक ही से है। मुझे तो कुछ समझते ही नही। अरे वह गई थोड़े ही होगी; यही दीवार के सहारे कान लगाये खडी होगी।"

आनन्द हँस पडा।

"मैने तय कर लिया है आनन्द, अबकी बार जैसे भी बन पडे, एक का बिवाह तो निपटाऊँगी ही। चाहे अनशन ही क्यो न करना पडे! ये सब ऐसे नही मानेंगे।"

आनन्द फिर हँसा—"वाह मौसी! आप भी ख़ूब हैं। रोग का इलाज अच्छा सोचा है आपने।"

तब हँसती हुई राज की माँ बोली—"तुम्ही बताओ क्या करूँ? ये सब इसी तरह ठिकाने लगेंगे। ऐसे ये दोनो माननेवाले नही हैं। वकील साहब से मैंने कह ही दिया है। तुम भी देखना, अगर राज के लायक कोई लडका मिले ···।"

"अच्छी बात है।"

उठती हुई राज की माँ बोली—"शाम हो गयी। चलूँ कुछ खाना बनाने का भी ढंग करूँ। तब तक तुम राज से बात करो। खाना आज खाकर जाना, समझे।"

"नही मौसी, अभी एक जगह काम है। फिर इधर कई दिनो से घर पर भी नागा हो रहा है।"

"अच्छा तो आ जाया करो। चार-छै दिन मे तुम्ही से तो कुछ सलाह-मशविरा कर लेती हूँ। ये लोग तो इस कान से सुनते है और उस कान से छूमन्तर कर डालते है। अच्छा आनन्द। जियो जागो बेटा।"

और माँ अन्दर चली गयी। आनन्द भी कथन के साथ उठकर घूमा ही था कि पीछे से राज आ गयी—"खिसक चले न, मतलबी यार। लड्डू खाये हैं? कुछ तो ख्याल करना चाहिये।"

"वही सोच रहा हूँ। सुना, मौसी ने अच्छा लडका ढूँढ़ने को कहा है?"

"सुना! कुछ मौसी ने ढूँढ़ लिया, कुछ तुम ढूँढ लेना।"

राज खिलखिलाकर हँसी। फिर बोली—"ख्याल रखना, यहाँ कुछ कमीशन नही मिलने का।"

"अब कमीशन की इच्छा नही है। जो कुछ मिल चुका है वही बहुत है और उसे ही सुरक्षित बनाये रखना चाहता हूँ। अच्छा तो मै चल रहा हूँ राज।"

"तो फिर अगले महीने उम्मीद करूँ?" कमरे के बाहर आकर राज ने पूछा।

"नही-नही। मैं दो तीन दिन में आऊँगा, अच्छा।" और उसने हाथ उठा दिया।

"रुकिये, मगल से रिक्शा मँगवा देती हूँ।"

"नही ठीक है। सडक पर ही कर लूँगा।"

राज आनन्द को जाता हुआ देखती रही। जब वह फाटक से निकल-कर सडक पर मुड गया, तो वह भी घूमकर झूमती हुई चल दी। आज कई दिनो बाद उसके मन में गुदगुदी उठी थी। कुछ गाने को उसका मन हुआ था। कुछ शरारत करने की इच्छा हुई थी। अतः माँ को चिढ़ाने चौंकाने और जानबूझकर कुछ लडकपन दिखाने के विचार से वह तुरन्त अन्दर चली गयी।

६

आनन्द सिनेमा-भवन के बाहर निकला तो सिविललाइन्स में बडी रौनक थी । पर उसका ध्यान उस ओर नही गया । चित्र उसे कुछ जँच नही रहा था । वह सोच रहा था कि आखिर बात क्या है, जब केन्द्रीय सरकार की ओर से इतनी योजनाएॅ चल रही है, इतने पुरस्कार दिये जा रहे है, पत्र-पत्रिकाओ मे भारतीय चल-चित्र-जगत के स्तर को ऊपर उठाने के लिये इतने आन्दोलन चल रहे हैं । सेन्सर बोर्ड अलग काम कर रहा है; फिर भी इतने लचर और बेहूदा किस्म के चित्र बनते जाते है ! बाजारू दृश्य, हलका-फुलका प्रेम, नग्न प्रदर्शन और बेहूदा हास्य ! उसके ऊपर तुर्रा यह कि ऐसे ही चित्र सफल हो जाते है ।

लोग अगल-बगल से आ-जा रहे थे । कुछ लोग चित्र-सगीत की कोई कडी गुनगुना रहे थे । कुछ भद्दे मज़ाक भी चल रहे थे और कुछ आलोचना-प्रत्यालोचना भी हो रही थी ।

—मै कहता था न, कि मन बहल जायगा प्यारे ! आधे दाम तो केवल पहले ही डान्स पर सूल हो गये । मौका लगा तो मैं फिर देखूॅगा ।

—कुछ नही, ऐसे ही है ।

—क्या पिक्चर है ! अगर वह डान्स न होता, तो पैसे पानी में थे । हॉ, जानीवाकर का काम मजे का है ।"

—सिगरेट निकालो यार ! तीन घण्टे में मेरा तो दम घुट गया बिना सिगरेट के ।

—अब कहॉ चला जाय ? भई मै तो पहले चाय पियूॅगा ।

—अमाँ ऐसी बेहूदी फिल्म देखने के बजाय तो किसी रेस्ट्राँ में बैठकर गप्प लड़ाते तो अच्छा रहता।

—और तुम अच्छा पकड लाये यार! नीरा को दवा पहुँचानी थी।

—जीजाजी आज जानेवाले थे। उन्हे स्टेशन तक पहुँचाने भी नही जा सका।

तभी साइकिल लिये जीवन आ गया और बोला—"कहो आनन्द, क्या सोच रहे हो?"

"कुछ नही, पिक्चर के विषय में सोच रहा था, च्।" उसके साथ चलते हुए आनन्द ने मुँह बनाया।

"ओफ़ हो, तुमसे मैंने पचास बार कह दिया कि या तो हिन्दुस्तानी पिक्चर देखना छोड दो, या फिर उनके विषय में सोचना। दोनो काम साथ ही नही चल सकते। समझे?

"लगता है, देखना ही छोडना पडेगा।"

"अब कही तुमने समझदारी की बात।"

दोनों 'मधुपुरी काफ़ी हाउस' की ओर बढ़े, जैसे वे दोनों जानते हो कि उन्हे वही जाना है।

आनन्द के बगल से एक सूटेड-बूटेड टाई लगाये हुए सज्जन निकले। जीवन ने हाथ उठाते हुये 'गुड ईवनिंग' कहा। जाते हुए सज्जन पहले कुछ ठिठके और फिर हाथ उठाकर मुस्कराते हुए आगे बढ़ गये।

"कौन था, जीवन?"

" मैं क्या जानूँ!"

आनन्द हँस पड़ा।

सामने स्कर्ट पहने दो-तीन लडकियाँ चली आ रही थी। जीवन

उनकी ओर झुका तो आनन्द एक बगल हट गया। वह जान गया कि जीवन कुछ शरारत करेगा।

जीवन बगल से निकला। हाथ हिलाते हुए उसने रूमाल को हाथ से कुछ इस तरह छोड दिया, मानो अपने आप सरक गया हो। इधर रूमाल जमीन पर गिरा और उधर एक लडकी का पैर सँभलते-सँभलते उस पर आ पडा।

"ओफ़ हो। क्या मुसीबत है!" जीवन साइकिल पकडकर खड़ा हो गया।

लडकियाँ ठिठक गयी। जिसके पैर के नीचे रूमाल दबा था, उसने रूमाल उठाते हुए कह दिया—'आई एम वेरी सारी' और उसको ओर बढाते हुए बोली—"माफ कीजियेगा।"

जीवन ने रूमाल ले लिया। फिर वह बोला—"खैर जाइये। आज माफ किया, लेकिन आइन्दा इस तरह नही चलेगा।"

लडकियाँ हँसकर आगे बढ़ गयी।

हँसते-हँसते आनन्द के पेट में बल पड गये। लेकिन जीवन एकबार मुस्कराकर रह गया। जैसे कुछ हुआ ही न हो। पास आते हुए आनन्द ने कहा— 'कभी फँस गये बच्चू तो? ऐसे तो अखबार में नाम निकलता नही, फिर कायदे से तारीफ़ होगी!"

"अरे नही आनन्द! यही तुम नही जानते। 'दे आलसो एन्टरटेन योर रिमार्क्स इफ़, दे आर नाट वलगर।' मैं कोई गाली बकता हूँ, या उन्हें छेड़ता हूँ?"

"नही, आपतो पूजा करते हैं!"

जीवन हँसता रहा। पहले भी उनमें कई बार इस तरह की बातें हो चुकी थी। मधुपुरी तक पहुँचने में उन्हे क़रीब पन्द्रह मिनट लगे थे, यद्यपि रास्ता पाँच मिनट का भी नही था। लेकिन जीवन के इतने परिचित और

मित्र मिलते गये कि हल्लो करते-करते ''और कल वैराइटी शो में नही आये, परसो आफीसर्स स्कूल मे नाटक है, आओगे ? अरे बुधवार को अपने हॉस्टेल में उत्सव है। वीरेन्द्र ने तुम्हे आमन्त्रित किया है। आना ज़रूर। कहो, इधर दिखाई नही पडे। कही बाहर गये थे क्या ? अभी आ रहे हो क्या ? अच्छा ! एक सिगरेट तो पिलाओ। अमाँ, उस लडकी को मैने परसो देखा, जिसके पीछे जमुना का निष्कासन हुआ था ? बिल्कुल साधारण लडकी है यार !—आदि बातो में पन्द्रह मिनट से ज्यादा हो गये।

आनन्द सोचने लगा कि कितना मस्त है जीवन ! कभी कोई चिन्ता नही, कभी कोई उदासी नही। दिनभर पान खाना, जब कभी सिगरेट ऊपर से। निश्चिन्त घूमा करता है। बेहिसाब खर्चा करेगा। फिर खर्चे को झीकेगा भी। लेकिन खर्चे कम नही होगे। कितने दोस्त हैं इसके ? कितना मज़ेदार है यह ? इलाहाबाद छोडा, तो इसका अभाव बहुत अखरेगा। सिविल लाइन्स का तो जैसे कीडा है। वैसे 'खाओ-पीओ मस्त रहो' के सिद्धान्त से ज्यादा दूरी नही रहता, मगर दिल का कितना साफ है ! उस बार जब इसके दोस्त की पत्नी को हैज़ा हो गया था, वह भागे-भागे फिरते थे। लेकिन इसने रातो जाग कर सेवा की थी। उस बार जब वह भ्रमणार्थ दक्षिण भारत गया था, तो जीवन का कैमरा अपने साथ ले गया था। ग़लती से वह वही कही खो गया। लौटने पर बडा चिन्तित था कि जीवन क्या कहेगा। लौटकर जब जीवन मिला, तो उसने कहा—अरे जीवन, एक बडा नुकसान हो गया मुझसे। तुम्हारा कैमरा खो गया तब उसने केवल इतना पूछा था—कैसे ? इस पर उसने कहा था—क्या बताऊँ यार मेरी ही गलती समझो। एक जगह देखने गये थे। वही खाना-पीना हुआ। फिर चल दिये और कैमरा वही छूट गया।

जीवन ने उत्तर दिया—"तो मुँह लटकाने की इसमें क्या बात है, आनन्द ? अरे खो गया तो खो जाने दो। तुमने जानबूझकर तो नही खो दिया ! जितने दिन किस्मत में था, रहा; नही रहना था साले को तो चला

गया। और भई मेरा तो विचार है कि एक चीज़ खोने के बाद दूसरी चीज़ आयेगी, तो अच्छी ही आयेगी।"

इस पर उसने फिर कहा—"नही जीवन, मैंने एक दूकान पर वैसा हीं कैमरा देखा है। चाहो, तो उसे चलकर खरीद लिया जाय।"

इस पर जीवन हतप्रभ हो गया था। बहुत ही गम्भीर होकर धीरे से बोला था—"ठीक है। चाहते ही हो, तो चलो खरीद लिया जाय। लेकिन इतना याद रखना, कल से फिर मिलेंगे, तो केवल नमस्कार के लिये हाथ उठाकर ही निकला करेंगे।"

सुनकर वह जड हो गया था।—'नाटक करने और कराने का कितना शौक है उसे! और लडकियो से दोस्ती? भगवान जाने कहाँ-कहाँ से परिचय करता रहता है।'

साइकिल रखकर जब वे अन्दर घुसे तो काफ़ी भीड थी। एक मिनट तक दोनो खडे रहे। फिर जीवन एक कोने की ओर बढता हुआ बोला—"इधर आओ आनन्द।" बैठने के बाद, बैरा को आदेश देकर जीवन हाथ के कफ़ चढाता हुआ इधर-उधर देखता रहा।

एक बैरा आकर पानी रख गया। जीवन ने गिलास उठाकर पानी पिया और बोला—"अब लगता है कि इलाहाबाद के दिन पूरे हो गये।"

"क्यो, क्या बात है?" आनन्द ने भरे गिलास को मेज़ पर धीरे-धीरे घुमाते हुए कहा।

"कुछ नही यार, किस्मत जो कुछ न कराये, थोडा है।"

जीवन की अँगुली मेज़ पर गिरे पानी की लकीरें खीच रही थी।

"तुम तो भाग्यवादी नही हो जीवन! मैंने इस तरह कभी तुम्हें उदास नही देखा। मैं तो यही समझता हूँ कि मौज, मस्ती और जीवन एक ही वस्तु के विविध नाम हैं।"

"तुम जानते नही आनन्द !" जीवन गम्भीर होता जा रहा था।

आनन्द चकित था कि अभी पाँच मिनट पहले जीवन क्या था, और अब क्या होता जा रहा है !

"अच्छा एक बात बताओ आनन्द ! अगर तुम एक साधारण स्थिति के आदमी हो और तुम्हारा दुलारा लडका कही कालेज में पढता हो और उसकी कल्पनायें स्थिति की अपेक्षा कही ऊँची हो जायँ, तो तुम क्या करोगे ?"

जीवन आनन्द का मुँह देख रहा था। बैरे ने आकर काफ़ी रख दी थी।

"मैं तुम्हारी बात नही समझा।"

"नही समझे ? मेरे कहने का मतलब यह कि अगर पुत्र के मन मे यह हो कि उसके बाप के पास काफ़ी पैसा है—इतना कि अगर यहाँ पढ चुकने के बाद कुछ घूमने और कुछ पढने के विचार से वह विदेश भी जाना चाहे, तो उसके मनस्वी पिता आनाकानी नही करेंगे; कम-से-कम आर्थिक दृष्टि से। और यही सोचकर लडका अपने को उसी स्तर पर स्थिर बनाये रखे, अपने खर्चे बढाये, तो क्या उसके पिता को यह उचित है कि वह लडके के सामने प्रारम्भ से ही अपनी स्थिति स्पष्ट कर दे ? या यह सोचकर अपनी स्थिति छिपाये रहे कि इससे लडके को चिन्ता बढ़ेगी। उसके पढने में बाधा पडेगी ? सम्भव है उसे मानसिक आघात भी पहुँचे।"

"तुम्हारा मतलब क्या है ? किस मनोवेग मे हो तुम आज ?" सदा हँसने-हँसाने, खाने-खिलाने और लापरवाह, अल्हड़ की तरह मस्त-मौला, दिन भर सीटी बजाने, गुनगुनाने और चाभियो का गुच्छा अँगुली में घुमानेवाले जीवन से आज की इस बात का क्या सम्बन्ध हो सकता है ? उसकी समझ मे नही आया। एकबार शक ज़रूर हुआ कि कही जीवन अपने विषय में तो नही कह रहा है ? लेकिन जिस व्यक्ति को वह अत्यन्त निकट से जानता है, उसके विषय मे ऐसा सोचते हुए उसका मन हिचक गया।

"पहले मेरी बात का जवाब दो।" जीवन ने एक घूँट काफ़ी पीकर कहा।

आनन्द ने उत्तर दे ही देना उचित समझा। अतः वह बोला—"स्थिति स्पष्ट करने की बात तो तभी उठती है, जब पहले पिता की स्थिति अच्छी हो और बीच में आकर एकाएक खराब हो जाय, जिसका लडके को पता न हो। अन्यथा अगर प्रारम्भ से ही एक सी है, तब तो बताने का कोई प्रश्न ही नही उठता। क्योकि लडका खुद ही उसी के अनुरूप पाला जायगा।"

"हॉ जब यह बात हो तब ···।"

"दोनो बाते हैं। कुछ लोग इसे उचित समझेंगे कि लडके को घर के पचडे में पडने की क्या जरूरत है ? उसे खाना मिलता ही है, कपडा मिलता ही है, पढने की सुविधाएँ मिलती ही हैं। थोडा-बहुत हाथ-खर्च भी मिलता है। जैसे-जैसे बडा होगा, खुद ही समझता जायगा। कुछ लोग यह भी सोचेंगे और ठीक सोचेंगे कि बाद में लडका जब दूसरे ही रंग में रंग जायगा, वह अपने विषय में कुछ दूसरा ही सोचेगा। उसके सपनो के रंग गाढे हो चलेंगे। तब सम्भव है कि अचानक घर की स्थिति बताने से वह भौचक्का रह जाय ! उसकी योजनाएँ भहरा पडें, कल्पनाएँ चौपट हो जायँ और हृदय पर कोई ऐसा धक्का भी लगे जिसे सहसा वह सँभाल न सके।"

सहसा हाल में कुछ और लोगो का वृन्द आ पहुँचा। जीवन को देखकर किसी ने हाथ उठाया, कोई मुसकराने लगा। किसी ने आँख के इशारे से पास आने को कहा। जीवन ने उसी ढंग से सबका उत्तर दिया और मुख आनन्द की ओर कर लिया। एक मेज़ से एक लडके ने ताली बजायी और आनन्द को जीवन के लिए संकेतकर अपनी ओर इशारा किया।

आनन्द ने जीवन से ऐसा कुछ कह दिया कि जीवन घूम गया, हथेली हिलाकर कि आया अभी, और फिर आनन्द की बात सुनने लगा। तब तक वह लडका स्वयं उठकर आ गया और धीरे से उसके कान मे बोला—"वे आयी हैं।"

"कौन ?"

"अरे तुम्हारी वही मिस कौर ! अन्दर हैं परिवार कक्ष में ।"

"अच्छा देखूँगा ।" और उसने आनन्द से कहा—"दूसरो की बात मत करो । अपनी कहो कि तुम क्या करते ?" उसने फिर बैरे को इशारे से सिगरेट लाने का आर्डर दिया ।

"मै ? पहली बात तो यह है कि यह कोई ऐसी बात नही कि बाप के पास कोई हीरो की माला रखी है और लडका सोचे कि हॉ मेरे बाप के पास तो हीरो की माला है । और एक दिन पिता उसे तिजोरी खोलकर दिखा दे कि देखो, कहॉ है मेरे पास हीरे ? मेरे पास हीरा कभी रहा ही नही । दूसरी बात यह कि—घर में क्या होता है, कौन आता है और कौन जाता है, क्या बाते होती है, क्या खाया और क्या पहना जाता है । मॉ-बाप का स्वभाव क्या है, उनके कार्य क्या बताते है । घर मे रहनेवाला लडका अगर बिलकुल नही, तो थोडा-बहुत जानता ही रहता है । यह और बात है कि वह उधर ध्यान ही न दे या ऑख कान बन्द किये रहे । इसके बाद की बात तो लडके की बुद्धि और समझदारी का मुँह जोहती है । रह गयी मेरी बात ? मैं तो इस पक्ष में हूँ कि लडके को बहुत ही समझदारी के साथ धीरे-धीरे घर की स्थिति से अवगत करा दिया जाय, जिससे वह अपनी सीमाओ से अपनी सामर्थ्य और अपनी स्थिति से परिचित हो जाय ।"

"लेकिन मेरे साथ ऐसा कुछ नही हुआ आनन्द । इसी का तो फल भोग रहा हूँ मैं ।" कथन के साथ जीवन ने कप खाली कर दिया था ।

"किसका फल ?"

आनन्द बहुत उत्कण्ठित हो गया था ।

"बताता हूँ, क्या हर्ज है ।" जीवन चुप रहा । बैरा आकर सिगरेट रख गया और नया आर्डर ले गया । जीवन ने उसे जलाया । दो कश मारे । जैसे कहने के लिये अपने को तैयार कर रहा हो । फिर उसने कहना शुरू किया ।

"आनन्द, मैं इसी का शिकार हूँ । तुम तो मेरे घर जाते हो । भैया का स्वभाव भी जानते हो । रहन-सहन और खर्चा भी तुमसे छिपा नही है ।

इसपर अगर मैं यह सोचूँ कि भैया का व्यापार चलता है, उनके पास काफ़ी पैसा है, तो मेरी कोई गलती है ? फिर भैया ने मुझसे कभी कुछ नही कहा है। मैने जो माँगा, दे दिया। रहा-सहा अम्माँ से माँग लिया। यह तो बाद मे पता लगा कि उनका व्यापार सालो से ठण्डा है और तेजी पर तो कभी चला ही नही। पिताजी जो कुछ छोडकर मरे थे, उसी के बल पर गाडी चल रही थी। फिर कानपुर का मकान बेच दिया गया। उसमें पैसे की ही बात थी। वैसे कहने के लिये कहा गया कि जब वहाँ किसी को रहना ही नही है और पुराने किरायेदार हैं; अतः कोई फायदा भी नही है, तो रखकर क्या होगा ? खैर, मकान बेच दिया गया। भैया हर दूसरे-तीसरे महीने बम्बई जाते रहे और महीने-डेढ़ महीने रहकर लौट आते रहे; लेकिन कोई विशेष लाभ तो होता नही रहा। खर्चे सब ज्यो के त्यो चलते रहे। भैया ने कभी किसी की माँग पर ना नही की। कही लोग यह न कहे कि देखो, सौतेले भाई-बहिन हैं, इसी से कुछ स्नेह-ममत्व नही रखते। नहीं तो बाप क्या कम छोडकर मरा था! अतः अपने खर्चे भले ही कम कर दिये। लेकिन मुझसे हमेशा सब कुछ छिपाया गया। वो तो कहो, उस दिन मैं रात में आवश्यकतावश जो उठा, तो क्या सुनता हूँ, भाभी के कमरे में खुस फुस हो रही है।

फिर ध्यान दिया, तो पता लगा कि भैया बडे दुःखी स्वरो में कह रहे हैं—"अब तुम्ही बताओ, मैं क्या करूँ ? गुलजारीलाल के छै हजार हो गये हैं। सन्नो और आशा भी तो अब विवाह के योग्य हैं। प्रसन्न अगले वर्ष मेडिकल कालेज में जाने को सोचता है। कल बडे ताऊ जी कहने लगे–"लाल जी, अरे कुछ सोच रहे हो कि नही ?" मैंने पूछा–'क्या ? तो कहने लगे कि भाई-बहनो का विवाह करोगे कि नही ? अजीब हाल है तुम लोगो का! बहू से कहो तो वह कहे कि लाल जाने और तुम्हे तो जैसे कोई होश ही नही।' सच मानो, मुझे बडी शरम लगी, लेकिन क्या करूँ ? जीवन का खर्चा अलग एक सिर-दर्द बन गया है। अगर वही अपना खर्चा सँभाल ले, तो भी काफ़ी आराम हो जाय।"

भाभी कहने लगी—"हाँ और क्या ? अब तो वह भी समझदार हैं, पढ़े लिखे है। उन्हे भी घर की ओर ध्यान देना चाहिये। तुम कहते क्यो नही कि कही नौकरी या काम-धन्धे की तलाश करो। मुझसे सब नहीं सँभाला जाता।"

भैया बोले-"इसी से तो कानून की शिक्षा दिलाई कि अगर कर लेगा तो यही वकालत का इन्तज़ाम हो जायगा। आख़िर इतना बड़ा धनिक और जान-पहचान का व्यापारी वर्ग है, वह कब काम आयेगा ! अगर मेहनत करेंगे तो काम की कमी नही रहेगी, लेकिन मुझको तो लगता है कि इसबार वह शायद ही पास हो। देखती नही, परीक्षाएँ सिर पर हैं और कब जाते हैं, कब लौटते है !"

बैरा आकर प्याले रख गया, लेकिन जीवन ने उसकी ओर ध्यान नही दिया। हाथ की सिगरेट काफ़ी सुलग गयी थी। अतः ऐशट्रे में उसकी गुल झाडकर बोला—"तुम समझ नही सकते आनन्द कि मेरी क्या हालत हो गयी थी। मुझे काटो तो खून नही। जैसे किसी ने सीने में भाला भोक दिया हो। इसके बाद तो मैं साफ़साफ़ कुछ सुन ही नही सका। बीच-बीच में भले ही कानो में दो-चार बातें पड जाती थी। —वाह तुम भी क्या बात करती हो ! रुपयों के लिये मैं तुम्हारे भाई से कहूंगा ? वह क्या सोचेंगे ? या फिर भाभी के शब्द—'पहले जीवन की शादी क्यो नही कर लेते ? जीवन भी ठिकाने लग जाय और सन्नो के विवाह में भी सुविधा अलग हो जाय।"

"आनन्द, मैं रात भर सो नही सका था। मुझे भैया पर बडी दया आयी और गुस्सा भी आया कि उन्होने मुझे पहले से ही यह सब क्यो नही बताया ? आख़िर मैं भी तो घर का ही आदमी था। भैया मुझे लाख बच्चा समझें; लेकिन मैं तो नहीं था।'

जीवन का मुँह झुक गया था। हाथ की सिगरेट उसने एशट्रे में न डालकर फर्श पर ही कुचल दी। फिर वह काफ़ी पीने में लग गया। आनन्द

भी कुछ नही बोला । काफी पीकर जीवन ने दूसरी सिगरेट जलायी और बैरे को बिल लाने का इशारा किया ।

बैरा बिल लाया तो आनन्द ने उठा लिया और वह जब जेब से पैसे निकालने लगा तो जीवन ने कहा—"तुम रहने दो । मै देता हूँ ।" और उसने ज़ेब में हाथ डाला ।

आनन्द ने कहा—"ठीक है ।" और उसने बिल के पैसे दे दिये ।

जीवन ने फिर कुछ नही कहा । वह उठकर खड़ा हो गया ।

बाहर निकलकर आनन्द ने कहा—"आओ, पान खायें ।"

पान खाये गये और दोनो फिर साथ-ही-साथ आगे बढ़े । आनन्द सोच रहा था—वह क्या कहे ? उसे क्या कहना चाहिये ?

तभी जीवन ने फिर कहा—"भैया का कहना ही सच हुआ । मैं फेल हो गया । आनन्द, मैं तुमसे क्या बताऊँ ! इस बार मुझे फेल हो जाना बहुत अखरा है । जिन्दगी में मैने कभी पढने में मन नही लगाया; लेकिन इस बार मुझसे जैसे भी हो सका, मैने पढने की पूरी कोशिश की थी । मेरा मन मर गया आनन्द । तुम्हे यह सुनकर शायद आश्चर्य हो कि मैं एक-एक हफ्ते तक सिविललाइन्स नही आता हूँ । क्या करूँ ? रोज़ आने के माने हैं, डेढ-दो का खर्चा और अगर यार लोग मिल गये तो फिर क्या पूछना ! और मुँह-हाथ बन्द करके मुझसे नही घूमा जाता ।"

"कही कुछ काम क्यो नही देखते ? विश्वविद्यालय भी तो आजकल नही जाते । खाली बैठे हो, क्या बुरा है ?" इतनी देर बाद आनन्द ने कही यह वाक्य कहा ।

"यही तो मै भी सोच रहा हूँ, लेकिन काम की क्या हालत है, यह तो तुम जानते हो । दो-चार जगह द्वार खटखटाया भी है । देखो कहाँ खुलता है ? मैं तो सोचता हूँ कि कोई दुकान मिल जाती, तो कुछ व्यवसाय ही करता । मगर कोई मौके की जगह ही दिखाई नही पडती ।"

आनन्द सचमुच बडा दुखी हो गया। एक ऐसा आदमी, जिसने जिन्दगी भर हँसना सीखा है, उसकी आँखो में अचानक विषाद की घनीभूत छाया देखकर मन पसीज हो उठता है। और फिर जीवन जैसा आदमी! जो खुद अपना न होकर सबका है; जिसके कपडे, जिसकी घडी, जिसका कैमरा, जिसकी साइकिल और यहाँ तक कि मोटर-साइकिल या हर एक अपनी चीज़, जैसे सबकी हो, पचायती हो; जो दिन भर कुछ-न-कुछ खाने और गाने में मस्त रहता है; लेकिन दूसरो के लिये खाना भूल जाता है, गीत बिसरा देता है।

कई ऐसी घटनाएँ याद हो आयी, जब जीवन उसे साधारण आदमी से ऊपर लगा था। उसे वह घटना याद हो आयी, जब जीवन का एक मित्र, जो शायद किसी कार्यालय में साधारण लिपिक मात्र था, बीमार पड गया और महीनो बीमार रहा। दवाइयो के बावजूद, तमाम खर्चा करने पर भी, अन्त में जिसका रोग हाथ से निकल ही गया। और डाक्टरो ने राय दी कि अगर अमुक तरह का इलाज किया जाय तो सम्भव है कि बच जाये, लेकिन तय नही, उम्मीद भर है।

लेकिन दवा काफ़ी मँहगी थी। इलाज करना सामर्थ्य से परे था। अतः जल्दी उसका प्रबन्ध नही हो सका और रोगी ने अपने पीछे एक पत्नी और एक पुत्र छोडकर सदा के लिये आँखें बन्द कर ली।

उस समय जीवन कितना रोया था। खाट की पाटी पर उसने अपना सर पटक दिया था, मत्था फट गया था और वह खून से नहाकर बेहोश हो गया था! कई दिन खाट पर पडा रहा था, रह-रह कर बेहोश हो जाता और चिल्लाता—'रुको जीत, रुको, मैं रुपये ले आया हूँ, दवा भी ले आया हूँ। मैं कहता हूँ रुको, तुम ऐसे नहीं जा सकते! भैया, रोक लो न जीत को। देखो, जल्दी करो भैया! वह जा रहा है।" और खामोश हाथ उठाता हुआ बिस्तरे पर उठ बैठता।

"आनन्द, मैंने आजतक यह सब किसी से नही कहा। और शायद कहूँ भी, नही, लेकिन चीज़ छिपेगी नही। मैं कही सौ-सवा-सौ की नौकरी करूँगा, तो लोग खुद ही समझ जायँगे। तुम ज़रा वकील साहब से कहना। शायद उनकी नजर मे कुछ काम हो ठिकाने का।"

कुछ दूर तक दोनो चुपचाप चलते चले गये। आनन्द सोच रहा था कैसे बात बदली जाय, कैसे जीवन को घुटन के इस जहरीले धुएँ से बाहर किया जाय।

तभी जीवन ने फिर कहा—"तुम भी क्या सोचते होगे आनन्द, सोचा होगा—चलें, शायद कुछ मौज में कटे। कुछ घूम ही आयेंगे, कुछ तबियत ही बहलेगी। लेकिन मैं भी क्या रोना ले बैठा! क्यो?"

आनन्द ने कुछ जवाब नही दिया।

"लगता है, काफी ऊब गये। क्यो?"

"क्या बात करते हो?" आनन्द ने तीखे स्वरो में कहा—"मुझ पर दुख पडेगा, तब तुमसे नही कहूँगा, तो क्या दीवार से कहकर सर फोड़ूँगा? तुम भी अच्छे निकले! लेकिन एक बात जरूर कहूँगा कि जिस तरह का मनोयोग आजकल बना रहे हो न, वह ठीक नही है। स्थिति तो धीरे-धीरे ही सुधरेगी। तुम्हारे मुँह लटकाने और कमरा बन्द कर पडे रहने से तो समस्या हल नही हो जायगी।"

"तो तुम्ही बताओ, मैं क्या करूँ? मेरा तो दिमाग़ ही नही काम करता। उधर भैया का दुख देखता हूँ, तो बस प्राण ही नही निकलते, बाकी सब दुर्दशा हो जाती है। अभी तीन-चार दिन हुए, कहने लगे—क्या बात है जीवन? आजकल कही घूमने नही जाते? क्या तबियत नही ठीक रहती?"

मैंने कहा—"नही ठीक हूँ, यूँ ही इच्छा नही होती। घूम-घूमकर जी भर गया है।"

फिर वे बोले—"नही, कुछ है। बताओ न, क्या बात है? खर्चा नही है क्या?"

मैने कहा—"नही, ऐसी तो कोई बात नही।"

तब, 'नही नही ... ये लो।' और बीस रुपये निकालकर दे दिये। अब तुम्ही देखो, मुझसे आजतक कुछ नही बताया। वे मुझे अपने सामने बिठाये, घर की हालत बतायें और कहे कि तुम अब ऐसा करो, तुम्हे अब यह करना चाहिये। आनन्द मैं सच कहता हूँ कि मै पचीस प्रतिशत तो तुरन्त हल्का हो जाऊँ। आखिर मैं भी तो घर का सदस्य हूँ। मुझ पर भी तो कुछ उत्तरदायित्व होना चाहिये। मुझे भी तो कुछ समझा जाय ताकि मैं घर की बातो में कुछ कह-सुन सकूँ। लेकिन पता नही वे क्या सोचते हैं! जब परीक्षा-फल निकला और मै दो दिन किसी से नही बोला तो कमरे में आकर केवल इतना कहा कि अरे तुम इतना दुःख क्यो करते हो पागल? उठो, अरे मै किस लिये हूँ? अभी तो मै जिन्दा हूँ न। तुमने पढा और फेल हो गये तो इसमें तुम्हारा क्या दोष? प्रयत्न करना ही तो केवल मनुष्य के हाथ में होता है। बन्द करो यह पागलपंथी। जाओ, खाना खाओ। फिर धीरे से बोले थे—'वैसे कोई बात नही। लेकिन अगर पास हो जाते, तो जरा अच्छा रहता। तुम पर भी कुछ काम सौपकर आराम की साँस लेता।"

"ठीक तो है। यही ज़िन्दगी है, जीवन! फिर तुम्हारा तो नाम ही यार जीवन है! तुम्हे तो चाहिये कि मजबूती से सामना करो जीवन का। जो है उसे तो काटना ही है। हँसकर काटोगे तो दुनियाँ कहेगी कि हाँ यह इन्सान था। जब हँसता था तब गम का ख्याल नही रखता था और जब कन्धे पर परेशानियो का पहाड है तो भी चेहरे पर शिकन नही। नही तो हँसेंगे नही सब कि अभी तक खिलखिलाते घूमते थे। अब मालूम हुआ है आटा-दाल का भाव। कैसा सिर पीटते है! समझे? अच्छा पहले हँसो तो तम! हाँ-हाँ हँसो। क्या मुँह बना रखा है! छोडो सब। आओ, जरा

कोई हसीन बात करें।—आजकल रोज़ से नही मिलते? क्या नाम है उसका? रोज़ रोमेला? वैसे लोग कहते क्या हैं रोजलीन, यही न? अच्छा नाम है।"

"जाने दो आनन्द! असल में बीते हुए दिन ही तो उन छालो के समान हैं, जो जब-तब मन के भीतर फूट जाया करते हैं। रोज, जयन्ती, मर्सी और सुधा और यही सब तो सोचता हूँ कि मेरी ज़िन्दगी पर एक दाग हैं दाग, जिन्हे मैं चाहकर भी नही मिटा सकता। यूँ मै कितना अन्धा था आनन्द! कभी मैंने नही सोचा कि अन्जाम क्या होगा? किसी तरह मेरी स्मृति से ये पिछले थोड़े से वर्ष काटकर निकाल दिये जाँय, तो शायद मेरा बहुत-सा गम कम होजाय। लेकिन ऐसा कैसे हो सकता है? जो बोया है, वह तो काटना ही पडेगा!"

तभी बगल से दो लडकियाँ आ निकली। जीवन को देखा, तो ठिठक कर खडी हो गयी।

"नमस्ते" लम्बी और छरहरी युवती ने कहा।

"नमस्ते, – नमस्ते। कहो वैजयन्ती, यहाँ कैसे?" और हाथो के पैकटो की ओर संकेत करता हुआ बोला—"बडी खरीददारी की है आज।"

"दुकान की दुकान खाली कर दी है। आप समझते क्या हैं?" साथ की लडकी ने कहा।

"सो तो है ही। मेरा ख्याल है दुकानदार को शायद अब याद आया होगा कि अरे, दिल के दाम तो चार्ज ही नही किये!"

सब एक साथ हँस पड़े। आनन्द को बडा अच्छा लगा। वह जीवन के इसी रूप को सबसे अधिक चाहता है।

वैजयन्ती ने हँसते हुए रुककर कहा—"हाँ, कुछ कपडे खरीदने और दो-एक पुस्तकें लेनी थी। यह एक चाकलेट का डिब्बा भी ले लिया। अच्छा, आप शायद इन्हे नही जानते होंगे?" उसने साथ की लडकी की ओर आँख घुमाकर कहा।

जीवन ने सिर हिलाकर इनकार किया, फिर दृष्टि उठाकर वह उसकी ओर देखने लगा।

लडकी ने मुसकराकर देखा और फिर जयन्ती की ओर आँखे घुमा कर बोली—"तो बताओ न जल्दी से ?"

"ये है बन्दना बोस, पाँचवें वर्ष में मेरी दोस्त और साथ ही ।"

बन्दना ने कहा—"दुश्मन।" और हाथ जोड लिये।

फिर एक बार हँसी का फौव्वारा छूट गया।

"तो यही समझ लीजिये, हाँ नही तो। खैर, और आप हैं श्री जीवन कुमार।"

"जीवनकुमार! आगे, मेरे, डाट डाट, यही न ?"

बन्दना खिली जा रही थी।

"शट अप।" कथन के साथ वैजयन्ती मुसकरा उठी।

आनन्द बगल में खडा रहा, हँसता हुआ। बन्दना और वैजयन्ती ने कुछ प्रश्न भरी आँखो से देखा, तो जीवन बोला—"हाँ जयन्ती !"

जीवन ने वैजयन्ती को जयन्ती ही कहा। —"तुम अपनी मित्र का परिचय करा चुकी। अब मेरे मित्र से भी परिचित हो लो। ये हैं श्री आनन्दकुमार, रिसर्च स्कालर, मेरे अभिन्न मित्र। और आप है कुमारी वैजयन्ती कौर एम०ए० प्रीवियस। और आपका परिचय तो सुना ही ··· ।"

आनन्द, वैजयन्ती और बन्दना ने परस्पर हाथ उठा दिये। वैजयन्ती बोली—"भाई साहब ! आप किस विषय में रिसर्च कर रहे हैं ?"

"इतिहास में।" आनन्द ने उत्तर दिया।

"लेकिन साहित्य से बडी रुचि है। परसाल हम लोगो ने इन्ही का लिखा ड्रामा खेला था। बहुत अच्छा लिखते हैं।" जीवन ने बीच में कहा।

"अच्छा, कभी मौका लगा तो जरूर आपकी रचनाएँ सुनूँगी।"

आनन्द ने जवाब नही दिया। अब वैजयन्ती जोवन की ओर झुकी—"हॉ, अच्छा, आप पहिले यह बताइये कि जब आपने शुक्रवार को आने का वादा किया था, तो आये क्यो नही? यही आपकी समय और वचन की पाबन्दी है? मैं कितना इन्तजार कर रही थी, एक जगह पार्टी में भी जाना था। मॉ के जिद करने पर भी मै नही गयी।" वैजयन्ती ने आँखे नचाकर कृत्रिम रोष का अभिनय करते हुए कहा—"अच्छा, अब आप ठीक-ठीक बताइये, कब आ रहे हैं?"

"कुछ काम ही ऐसे पड गये, जयन्ती कि बहुत चाहने पर भी मौका नही मिला।"

"और यहॉ घूमने को रोज मौका मिल जाता है?"

"यहॉ की बात छोडो। असल में कुछ अतिथि आ गये थे।"

"जाने दीजिये। अच्छा, तो अब कब आप आइयेगा? अगले महीने नाटक खेलने की बात करते हैं और तय कुछ हुआ नही। पता नही आप क्यो कोई रुचि नही ले रहे हैं?"

"खाली हो गया हूँ, अब लूँगा रुचि। रही आने की बात, शायद इस रविवार को आऊँ।"

"वह भी शायद! विश्वविद्यालय जाते हैं आप?"

"अगर मौका लगा तो चला आऊँगा, वहॉ भी।"

"हर चीज में शायद, हर बात में अगर, हर काम में अगर मौका लगा। मैं तो परेशान हो गयी!" वैजयन्ती ने अपना सिर पकडते हुए कहा।

बगल से कुछ नवयुवको का समूह निकला। जीवन बात में संलग्न था आनन्द उनकी ओर देखने लगा। आँखो ही आँखो में इशारे हुए, मुँह भी बने, भौहे भी उठी-गिरी। और 'क्या जगह चुनी है। अरे, सरे आम सडक पर लल्लो-चप्पो और कही जगह नही मिली?' का फतवा देता हुआ आगे बढ गया।

"नही अबकी आऊँगा। आइये, हम लोग चाय तो पीलें।"

"नही आज नही। अभी तो हम लोग पीकर आ रहे हैं।"

"आपको कौन पूछता है जी! बन्दना जी, आप तो पियेगी न?" जीवन ने हँसते हुए पूछा।

"नही जीवन जी! सच, अभी तो हम लोग खा-पीकर आ रहे हैं।" बन्दना ने हाथ जोडते हुए कहा।

"फिर भी एक कप।"

"नही, आज क्षमा कीजिये! अच्छा चलूँ। नमस्ते। नमस्ते आनन्दजी।"

जीवन ने एक हाथ उठा दिया, आनन्द ने दोनो हाथ जोड लिये।

वैजयन्ती ने चलते-चलते घूम कर कहा—"तो रविवार को आप आ रहे हैं न?"

"निश्चय।"

"निश्चय।"

बन्दना और वैजयन्ती आगे बढ गयी। दस कदम गयी होगी कि जीवन ने पुकारा—"अरे एक बात तो सुनो।"

लडकियाँ लौट पड़ी। "भई, चाय नही पी, तो क्यो न चाकलेट के पैकेट का ही उद्‌घाटन कर लिया जाय?"

"जरूर-जरूर। मैं पहले ही सोच रही थी। मगर फिर भूल गयी।" बन्दना ने पैकेट खोलते हुए कहा।

"हॉं साहब! मतलब की बात कौन याद रखता है!" जीवन ने कहा।

"अपने विषय में अच्छी जानकारी रखते हैं आप।" बन्दना ने कुछ चाकलेट निकाल कर, अन्दाज़ से कुछ जीवन की हथेली में डाल दी और आनन्द की ओर हाथ बढाया।

आनन्द ने—"अरे ठीक है। जीवन को ही चाकलेटें पसन्द आती हैं।" कहते हुए हाथ बढा दिया।

"नही यार, एक काम है, नही तो ज़रूर चलता। तुम्हारी बात मैं टालता नही हूँ। अच्छा।" वह साइकिल पर बैठ गया आनन्द उसे जाता हुआ देखता रहा। फिर उसने भी एक जाते हुए रिक्शे को रोक लिया।

आनन्द जब रिक्शे में चला, तो रास्ते भर वह केवल जीवन के विषय में सोचता आया था। हाँ, कभी-कभी बन्दना भी अपने आप सामने आ जाती थी। कितनी चंचल और बाचाल है। चुप रहने से तो जैसे दुश्मनी हो। बड़ी-बड़ी आँखें, कितना नशा, कितनी गहराई ! लेकिन जीवन। वकील साहब से कहूँगा देखो—एम० ए० प्रथम वर्ष है बन्दना का। ऊँह छोडो !

अचानक रिक्शा एक गढ़े में पड कर उछला और आनन्द भी चौंककर पूरी तरह डोल उठा, तो उसने जाना कि यह तो बँगले के पासवाला ही गड्ढा है।

आनन्द जब बँगले पर पहुँचा, तो वकील साहब के कमरे में बातचीत ओर हँसी-मज़ाक का बाजार अपने पूरे जोर पर था। कमरे के दरवाज़े के ऊपर झरोखे से ताली उठाकर उसने ताला खोला और खुला ही छोडकर वकील साहब के कमरे की ओर बढ गया।—'देखूँ तो, आखिर कौन-कौन हैं।' अन्दर दो-तीन लोग बैठे थे। वह उन्हे पहचान नही सका। तब तक रानी बाहर आयी और इधर-उधर देखते हुए उसने आवाज़ दी—"भरोस ! भरोस !"

भरोस फाटक पर किसी आदमी से बात कर रहा था। आवाज़ पर उसने घूमकर देखा और कहा—"हो ! आइत है।" फिर साथ के व्यक्ति को विदा कर लपकता हुआ आ पहुँचा। रानी ने पैसे देते हुए धीरे से कहा—"लो, चार आने के पान तो ले आओ, जल्दी से। फिर बोली—"जानते हो, मास्टर साहब कहाँ गये हैं ?"

कमरे के दरवाजे पर दीवार के पास खड़े आनन्द ने कहा—"क्या बात है रानी ?"

"अरे ! आप आ गये ! कहाँ गये थे दोपहर से ?"

"क्यो, क्या हुआ ?" आनन्द ने पास आकर कहा।

"हुआ क्या, राज दीदी आयी थी। दो घन्टे रही। फिर चली गयी। जब किसी को परवाह हो, तब न ?"

राज के सम्बन्ध को लेकर रानी जब भी कोई बात करती, तो आनन्द को बडा संकोच लगता। उसके मन में रानी से डॉट के स्वरो में कुछ कहने की भी इच्छा होती है, लेकिन वह जानता है, राज से इसकी कितनी खुली बातें होती हैं। अतः चुप ही रहता है।

"लेकिन उन्होने तो कल आने के लिये कहा था ?"

"ये लो, अगर आज आ गयी, तो कोई गुनाह कर दिया क्या ? अरे मैंने तो पहले ही कहा था कि दीदी, मास्टर साहब तो बस ऐसे ही है। तुम्हारे आज के आने का उन पर कोई असर नही होगा। क्योकि तुमने कौन आज आने के लिए कहा था। अब कल न आना तो फिर व्यग सुनना। ठीक-ठीक कहा न मैंने ?" रानी ने पंजों के ऊपर उचकते हुए कहा।

"रानी !"

"वाह ! मेरे ऊपर क्यो बिगडते हैं ? अरे बिगडिये उन पर, जो आप के लिये अन्दर बैठे हैं।"

"कौन है ये लोग ? मेरे लिये अन्दर ·?"

आनन्द को कुछ आभास-सा हो गया।

"हॉ हॉ, आप के लिये। पापा के परिचित हैं। अपनी लडकी के लिए आये हैं ?"

"लडकी के लिये ?"

"नही अपने लिये !"

रानी खिलखिलाकर हँस पडी। फिर बोली—"हॉ, एक बात तो भूल ही गयी। दो पत्र आये हैं आपके; और 'ज्योति' का अक भी। आपकी कहानी छप गयी उसमे।"

"कहॉ है ? ले आओ।"

"वह तो राज दीदी ले गयी और साथ में आपकी वह पुस्तक भी, जो कृष्णप्रकाश के नाम से छपी है। पत्र मेरे कमरे में हैं। अभी लायी।" कहकर रानी चली गयी।

आनन्द सोचने लगा—'राज क्यो आयी थी ? आयी होगी यहॉ कही, सोचा होगा होती चलूँ। ये लोग' "कही वकील साहब स्वीकृति न दे बैठें। क्योकि बापू ने एक पत्र जो वकील साहब को लिख दिया था कि हम लोगो का समय और था और अब और है। आनन्द के विचार हम लोगो से मेल नही खाते हैं। अत. उसकी शादी ब्याह का भार आप ही सँभालें तो अच्छा है; क्योकि उसके लिये कैसी लडकी ठीक होगी, यह आप मुझसे ज्यादा समझ सकते हैं। लेकिन वकील साहब बिना मुझसे पूछे कुछ नही करेंगे।'

तभी भरोस पान लेकर आ गया। आनन्द पान लेकर अन्दर चला गया। बीच में ही रानी पत्र और तश्तरी लिये मिल गयी। पत्र हाथ में देती हुई बोली—"यह तो घर का लगता है। देखिये, किसका है ?"

"बेटी ?" यह वकील साहब की आवाज़ थी।

"आयी पापा !" रानी आनन्द से पान लेकर तश्तरी में रखती हुई अन्दर चली। कमरे की आवाज़ बाहर आ रही थी।

"बेटी, आनन्द आया ?"

"—ा गये—पापा !"

"कहाँ है ?"

"कमरे में"

"ज़रा भेज तो दो ।"

आनन्द सोचने लगा—'किसलिये बुला रहे हैं ? क्या बात करेंगे ? यह अच्छी मुसीबत है । रानी आ पहुँची । उसने दोनो हाथो से झुककर कमरे की ओर इशारा किया—तशरीफ ले जाइये ।

आनन्द ने कमरे के द्वार पर पैर रखा ही था कि रानी उसकी बाँह पकडकर अपनी ओर खीचती हुई बोली—"एक बात ·· ।"

"क्या है ?"

"कहना, लडकी मैं देखूँगी । अच्छा !"

"भाग !" कहकर आनन्द हाथ जोडता हुआ कमरे में घुस आया ।

"आओ आनन्द ! कहाँ थे अब तक ?"

"जी ! कही नही यूँही आज जरा पिक्चर देखने चला गया था ।"

"अच्छा ! क्या अकेले गये थे ? बैठ जाओ ।"

"नही, एक मित्र भी था । आप शायद जानते हो, जीवन को ?"

आनन्द बैठ गया ।

"कौन ? लालजी का भाई न ?"

"जी ।"

"जानता क्यो नही । यहाँ भी तो आता है तुम्हारे पास । क्या कर रहा है ? एल्-एल्० बी० तो पास हो गया ?"

"जी नही, इस वर्ष फेल हो गये । अब एक्स होकर देंगे ।"

"अच्छा, आज नरेन्द्र का पत्र आया है । उसने लिखा है कि

आनन्द से कह दीजिये कि एक आवेदन-पत्र लिखकर, सारे प्रमाण-पत्रो के साथ मेरे पास भेज दें। समझे ?"

"जी, कल-परसो तक भेज दूँगा।"

"ठीक है। मैने यूँही बुलाया था कि दिखाई नही पडे। आपको जानते हो ?"

वकील साहब ने सामने बैठे एक खद्दरधारी सज्जन की ओर हाथ उठाते हुए कहा—"लेकिन तुम कैसे जानते होगे ! मैं बताता हूँ। ये हैं श्री कमलेश्वर मिश्र। चौक में आपकी कपडे की एक बडी दूकान है। यहाँ के बहुत ही प्रतिष्ठित और सम्माननीय नागरिको में से है। सार्वजनिक कामो में आप हमेशा आगे रहते हैं। और ये लोग आप के मित्र हैं।"

आनन्द ने सबको नमस्कार किया। उसने कुछ कहना भी चाहा; लेकिन फिर वकील साहब और शालीनता का ख्याल करके चुप रह गया।

अब वकील साहब ने आनन्द की ओर हाथ उठाया—"और इनका परिचय क्या देना ! हम लोग बात ही आध घण्टे से इनके विषय में कर रहे हैं।"

तब तक मिश्र जी ने पूछा—"आजकल क्या कर रहे हैं आप ? आगे क्या विचार है ?"

"आजकल तो खाली बैठा हूँ। वैसे नौकरी की तलाश में हूँ।"

आनन्द ने सीधा उत्तर दिया।

"उत्तम है। कुछ काम-काज करना ही चाहिये, जिसमें माता-पिता को आराम मिले; उनका भी बोझ कुछ हल्का हो। क्यो ठीक है न ?"

आनन्द ने सिर हिलाया—"ठीक कहते हैं आप।" फिर मन-ही-मन कहा—मैं तो माता-पिता का बोझ हल्का करूँ और आप अपना बोझ मेरे सिर पटककर हल्के हो लें। यही न ?"

इसी बीच मिश्र जी उठ खड़े हुए—"अच्छा तो आज्ञा दीजिये वकील साहब ! फिर मिलूँगा आप से। इधर आप कही बाहर तो नही जा रहे हैं ? मतलब यह कि शुभस्य शीघ्रम्।"

"नही-नही। मेरा ख्याल है, अगले महीने तक कुछ-न-कुछ तय हो जायगा।"

"बडी कृपा होगी आपकी।"

"नमस्कार।"

"नमस्कार। चलिये बाहर तक तो छोड़ आऊँ आपको।"

वे लोग चले गये। आनन्द कमरे में अकेला रह गया। अब उसने जेब से लिफ़ाफ़ा निकाला, खोला और पढना आरम्भ किया। माया का लिखा पत्र था। उसमें माँ की बीमारी की चर्चा थी। लिखा था—घबराने की जरूरत नही है। इधर कई दिन से काफ़ी फ़ायदा है। शिवा पेड पर से गिर गये थे। कलाई उखड गयी थी। वह बैठवा दी गयी है; लेकिन सूजन बाकी है। आप क्या कर रहे हैं ? अवकाश हो तो दो-चार दिन के लिये हो जाइये आकर। रामू भैया ने परीक्षा के बाद आने को लिखा था, लेकिन आये नही।

इसके बाद दो-तीन फुटकर वाक्य थे !

वकील साहब ने आकर कहा—"किसका पत्र है आनन्द ?"

"घर से आया है, माया का।"

"कोई खास बात है ?"

"अम्माँ को बुखार आ रहा था। अब ठीक हैं और मुझे बुलाया है।"

"हो आओ न जाकर ! थोडा मन ही बहल जायगा। अबकी बार तुम रहे भी तो नही ठीक से घर में। कितने दिन रहे थे ?"

"दो दिन। फिर लखनऊ रामू के पास चला आया।"

"इसी से कहता हूँ, जाओ हो आओ।"

"यही सोच रहा हूँ।"

"हाँ-हाँ चले जाओ। और देखो, अपने पिता जी से कह देना कि त्रिवेणी स्नान कर जाँय एक बार और। अच्छा, भोजन करने चल रहे हो ?"

"नही पापाजी, आप कीजिये। मुझे अभी भूख नही है। लगेगी तो बाद में कर लूँगा।" और वह पत्र हाथ में लिये अपने कमरे में आ गया।

७

रग-रग में असह्य पीडा, नस-नस चटका देनेवाला दर्द, मन पर भारी पत्थर उठाये, लाल—पर दुखती—ऑखो में सावन-भादो की घटायें साधे, आनन्द जब चौतरे पर पडी, नंगी खाट पर लुढका, तो लगा कि हाड-हाड चटक जायगा। आँखे बन्द की, तो लगा कि किसी ने उनमे पल भर को सुई चुभा दी हो। अत्यन्त बेबसी से उसने बन्द ऑखें खोली और सामने नॉद पर बँधी भैंस पर टिका दी। खाते-खाते भैंस ने नॉद से मुँह निकाला और वह तेज़ी से मुँह चलाने लगी। सानी का भुस भरा दाना-पानी पहले एक पतली सी धार में नीचे ज़मीन पर गिरा, फिर उसने लप् से जीभ फेरकर मुँह के आस-पास लगी सानी अन्दर ले ली और पूँछ को दो-तीन बार जोर से पीठ पर डुलाया, फिर नॉद में मुँह घुसेडकर खाने में जुट गयी।

आनन्द कुछ देर तक उसके विशाल चिकने काले शरीर को देखता हुआ फिर सोचने लगा—क्या से क्या हो गया!

अभी परसो वह रजना के साथ घूमकर लौट रहा था। सयोग से वह उसे कटरे में मिल गयी थी। उसके पास साइकिल नही थी। जब रिक्शा करने की बात उठी थी, तब उसने एक ही रिक्शा करने का विरोध करते हुए दो रिक्शा करने की बात की थी, जो आनन्द को बुरी लगी थी और उसने इसे उसका अपने प्रति अविश्वास और अपने समय के प्रति शकित होना समझकर ही अपमान मानते हुए एक ही रिक्शे की जिद की थी, जिसके सामने रंजना को झुकना पडा था। रिक्शे पर बैठे-बैठे रास्ते भर जीवन,

रानी और महेश के बारे में बातचीत होती रही थी। उसने यह भी कहा था—"छोड़ो भी, आओ जरा अपने विषय में भी बातें करे।"

तभी रंजना ने रिक्शे से जरा-सा झुककर एक साइनबोर्ड पढ़ने का प्रयत्न करते हुए कहा—"अपने लोगो के विषय मे दूसरे लोग ही बातें करें तभी ठीक रहता है। खुद अपने विषय में क्या बात करें हम लोग! क्यो ठीक है न ?"

वह मुसकरा रही थी। तब उसने रंजना की बाह में चुटकी काट ली—"क्यो, शरम लगती है ?"

"उई।" कहकर वह बांह सहलाने लगी थी, फिर उसकी बाँह का बटन चुट-पुट खोलते, बन्द करते बोली—"शरम और मै ? अरे शरमानेवाले कोई दूसरे होगे। शरमाये वह जो चोरी करे, मै क्यो शरमाऊँ ?"

"मै जानता हूँ, कितना साहस तुम मे है।"

रजना ने धीरे से उसकी अँगुली चटकाते हुए कहा—"यह मै नही जानती कि मुझमें कितना साहस है, लेकिन शायद अवसर पडा तो तुमसे तो पीछे रहूँगी नही। अच्छा यह बताओ, तुम घर कब जा रहे हो ?"

अब रजना का हाथ उसके हाथ में था। उसकी अँगूठी वह अँगुली से निकालता हुआ बोला—"परसो सोच रहा हूँ। आज ही जाता, लेकिन वकील साहब का एक काम आ गया है, कल दोपहर तक समाप्त हो जायगा। वैसे वह कह रहे थे कि लौटकर कर देना। मैने कहा—ठीक है, करके ही जाऊँगा।"

फिर वह अँगूठी उसी में पहनाते हुए बोला—"सोचते-सोचते एक हफ्ता बीतगया।"

"अबकी बार अम्माँ को यही लेते आना। हवा बदल जायगी।"

"अरे, कुछ घर-द्वार रुपया-पैसा भी तो हो। वकील साहब के यहाँ मैं जो हूँ, यही क्या कम है ?"

"उँह, घर-द्वार, रुपया-पैसा—यही सब भरा रहता है तुम्हारे दिमाग मे। अरे, घर-द्वार बसाने से बसता है, रुपया कमाने से आता है कि ऐसे ही ? फिर अम्माँ को लाने में कौन रोकड खर्च होती है ?"

"तुम तो ऐसे पूछ रही हो, जैसे वह रोकड तुम्ही दोगी, क्यो ?" उसने अपना सिर रंजना के सिर से धीरे से लडा दिया।

"अरे आनन्द, यह सिर है मेरा, पत्थर नही। अब ठहरो, रोको रिक्शे वाले। रोको, रोको।"

रिक्शा रुक गया। रजना का घर आ गया था। उतरकर उसने कहा—"बैंक हूँ न मैं ?" और हँस पडी बोली—"शरम नही लगती, एक औरत से भीख ऐसी माँगते ? देखते हो, यह एक अठन्नी भर है। कहो तो दे दूँ ?"

हँसती-हँसती रजना बोली।

"दे दो। इसी से संतोष करलूँगा" आनन्द ने हाथ बढाया।

"मैं लोगो की आदत नही बिगाडती। अच्छा कल।" रजना फाटक की ओर बढी।

"एक बात सुनो।"

"क्या है ?"

"यहाँ आओ।"

"तुम्ही न रिक्शे से उतरकर आ जाओ।"

"चलो रिक्शेवाले।"

रिक्शे वाले ने पैडिल पर जोर लगाया। रिक्शा खिसका।

"ओफ़ ! अच्छा बताओ, क्या बात है ?"

रंजना रिक्शे की ओर बढी। रिक्शा रुक गया। पास आयी, तो आनन्द ने हाथ बढाकर रंजना के हाथ से रूमाल झटक दिया। बोला—"चलो रिक्शेवाले, तुम्हारा और मेरा दोनो का प्रबन्ध हो गया।"

"ओफ, यह डाका !" रंजना हँस पडी—"ले जाओ, चार रुपये हैं रूमाल में, आठ वसूल न किये तो कुछ न किया।"

"बहुत देखे हैं। 'रहिमन चाक कुम्हार का' समझी ?" कहकर वह भी हँस पडा, बोला—"चलो भाई।"

"तो कल रानी के साथ आओगे न ?"

"कोशिश करूँगा।"

"कहाँ का रिक्शा है तुम्हारा ?" फिर वह रिक्शेवाले से बात करता हुआ बंगले पर जा पहुँचा था।

—"क्या करोगे भैया, भगवान का लिखा कौन मेंट सकता है ? बताओ, जब सुख के दिन आये तो बेचारी · · !"

पटवारी का स्वर सुनकर आनन्द ने दृष्टि घुमाई, तो बगल के चौतरे पर कम्बल पर बैठे सूखे-से, मुरझाये-से, महीनो बाद चारपायी से उठे-से एक लोटे पर हाथ रखे पिता के पास दो-तीन लोग आ गये थे।

—"हम तो आज सबेरे बिटिया की विदा कराय के लौटे, तो उसकी अम्माँ ने बताया कि अनू की अम्माँ नाही रही। हम तो सनाका खाय गये। बताओ सुधरती हालत में छोड के गये थे और· ·· ·! क्या कहा जाय ! सब हनूमान बाबा की लीला है।" भगत ने कहा।

—"बड़ी साध थी, बेचारी के मन में कि अन्नू की बहू देख लेती। लेकिन · । अभी रामू नही आया ?" पटवारीजी ने कहा।

—"पता नही, क्या बात है ? तार मिला नही या कही उसकी भी तबियत तो खराब नही है ! यही डर लगता है।" एक दीर्घ निःश्वास के साथ पिता बोले।

—"आता होगा। लेकिन आवे तो जरा सँभाल के बताना उसे। माँ का प्यार कोई छोटी-मोटी चीज़ होती है?" —भगत ने कहा और पिच्च से तम्बाकू चबूतरे से नीचे थूक दी।

तभी दो औरतें आकर बातें करती हुई घर में घुस गयी। श्याम बुआ की अवाज़ की भनक आनन्द के कानो में पड ही गयी—"बड़ी साध हती भौजी की कि नाती खिलाती।"

आनन्द ने सुना और एक झटके से माँ की आकृति उसके सामने स्पष्ट हो उठी। लाल किनारी की सफ़ेद धोती। मत्थे तक घूँघट, झाँकती हुई माँग की लालिमा। इकहरा गोरा शरीर ......। हरदम खिले-खिले मुस्कराते होठ ..। हाथो में मोटी-मोटी दो एक चूडियाँ ....। एक हाथ की तर्जनी उठी हुई ......।

—"पागल कही का! इतना बडा हो गया, अभी बच्चा ही बना है! जाओ, चौके में खाना है, परसकर खा लो। मैं नही बैठती, घण्टे भर तुम्हारे पास। हाँ, नही तो। इतना तो चार साल का लडका भी नही परेशान करता!"

—हाथ में आनन्द की कमीज़ और सुई-तागा। अचानक दाँतो में दबी हुई सुई और—"आनन्द, अब यह सब मुझ से नही होता। ब्याह करो और महरानी जी से बटन-सटन टँकाया करो। वो जो नयागाँववाले आये थे . वह! तुम तो ऐसे मुँह मटकाते हो, जैसे कभी करोगे ही नही। अरे आनन्द, मैं कहती हूँ, तुम उसका मुँह देख-देख रहा करोगे और वह चप्पलें तक तुमसे साफ़ करवाया करेगी। मै मरूँगी थोडे ही आनन्द, सब देखूँगी! अच्छा-अच्छा। गद्दे से हट तो; अरे, मैं दबी जा रही हूँ बेटा। बूढा हो गया, एम० ए० में पढ़ता है, लेकिन दुलार नही जाता। जाकर बाप को यह सब क्यो नही दिखाते?"

एक तुलसी का घरुवा और माँ। माथे पर पानी टपकाती दो-एक लटें .। हाथों में सबे-चमकते लोटे से जल की धार और बन्द आँखें। मुँह

में प्रार्थना के निर्मल स्वर । एकाएक घूमकर—"आनन्द ! तेरी नौकरी लग जायेगी, तो मुझे सब तीरथ घुमा देगा न ?"

आँखो से आँसू ढुलककर गालो पर फिसल गये। डबडबायी आँखो में सामने के नीम के पेड की हरी टहनियाँ झिलमिला उठी।

—अरे ठीक है बेटा ! सिये लेती हूँ। अभी महीने-सवा- महीने चल ही जायगी। मैं तो घर में रहती हूँ। कौन बाहर घूमना पडता है ! अब तुम लोग नौकरी करो तो जो पहनाना, पहनूँगी ...। हाँ, आनन्द, मुझे एक सीतारामी बनवा देना, अच्छी-सी, मैं दो दिन पहनकर बहू को पहना दूँगी। बहू कुछ तो मानेगी।"

—क्यो आनन्द ? अगर बहू कहे कि ये बुढिया-बुढ़वा तो और आफत किये हैं। घूँघट निकलवाते हैं। अम्माँ पैर अलग दबवाती हैं। कभी साथ साथ घूमने निकले तो नाक-भौं सिकोडती हैं। तुम अलग क्यो नही हो जाते ? तब क्या करोगे ...? उहँ, निकाल देना मुझे। मै रामू के साथ रह लूँगी !"

आँखो मे आँसू भरे आनन्द की इच्छा हुई—वह खूब जोर से गला फाड कर चिल्ला उठे। लेकिन पिता जी, रामू ... माया .....शिवा। वही तो सबको चुप कराता आया है। अगर वही दिल कमज़ोर कर बैठा, तो कैसे काम चलेगा !"

आनन्द को तार रात में ही मिला होगा, तभी तो दोपहर तक आ गये; लेकिन क्या बतायें, भगवान को ही नही स्वीकार था कि बेचारा देख तो लेता।"

अनोखे मास्टर का स्वर था। तार की बात सुनकर आनन्द को सचमुच वह रात याद हो आयी।

रात में करीब एक बजे जब तारवाले की साइकिल फाटक पर आकर घण्टी की ध्वनि के साथ रुकी और उसने ज़ोर से पुकारा—"अरे कोई है ?" तब सपनो की दुनियाँ में डूबता-उतराता वह क्षण भर के लिये सजग हुआ और पुनः सपनो का ऑचल सँभाले उड़ चला ।

भरोसे ने बाहर बरामदे मे लेटे-लेटे—"हुँ" करके करवट बदली और फिर अचानक—"कौन है ?" जोर से कहता हुआ वह उठ बैठा ।

"मै हूँ तारवाला ।"

"तारवाला ? किसका तार है भाई ?" भरोस उठकर फाटक की ओर बढ़ा ।

"आनन्दकुमार जी का ।"

सपनो के सागर की हलचल में कुछ फेन उठा, कुछ शोर हुआ, कुछ शब्द उभरे, मरे-मरे से । तारवाला आनन्दकुमार । फेन की चोटियाँ दबने लगी । शोर खोता गया । और आनन्द की तन्द्रा टूट गयी—'मेरा तार ! कहाँ से आया है ? क्या अम्माँ ?'

आशका के सर्प ने फुफकार मारी । आनन्द सिहरकर रह गया ।

"आनन्द भइया केर ? लाओ । अच्छा, चले आओ ।"

भरोस ने फाटक खोलकर कहा ।

आनन्द ने पलँग छोडकर बिजली जलाई ही थी कि भरोस आ गया—"आप जाग गये भैया ? आपका तार आया है ।"

आनन्द ने तार लिया, खोला, पढा । "भरोस अम्माँ की तबियत बहुत खराब है । मुझे जल्दी से बुलाया है ।"

सुनते ही तारवाले ने साइकिल उठायी और वह झट फाटक बाहर हो गया । उसने दो मिनट सोचा होगा, फिर कमरे में आकर घडी देखते हुए भरोस

से बोला—"भरोस कही से कोई सवारी ले आओ दौड़ कर। अभी मुझे गाड़ी मिल जायेगी।"

"अभी जायँगे आप ?" भरोस ने पूछा।

"हाँ भरोस, तुम जाओ। मैं जरा किवाड खुलवाकर वकील साहब से मिल लूँ।"

भरोस चला गया। उसने जल्दी से कपड़े बदले। सूटकेस में चार-छै कपड़े रखे। एक-दो किताबें और शेविंग सेट आदि ज़रूरी चीजें। बड़े ट्रंक से रुपये निकाले, गिने। कुछ जेब में डाले बाकी उसी में छोड दिये। और फिर सुराही से पानी लेकर मुँह धोया और सूटकेस लेकर कमरे से बाहर आ गया। ताला लगाया।

ताला लगाने के बाद वह असमंजस में पड़ गया 'जगाऊँ कि न जगाऊँ ? क्या करूँगा जगाकर ! सुबह भरोस तो सब बता ही देगा।... नही, स्वयं दो बातें कर लेनी चाहिये।'

वह इसी उधेड-बुन में था कि भरोस एक ताँगा लेकर आ गया।

"यह सूटकेस रखो भरोस। और देखो, सुबह होते ही बता देना कि ऐसा तार आया था और मैं चला गया। अच्छा ?" कहता हुआ वह ताँगे की ओर बढ गया।

अचानक अन्दर से आवाज़ आयी—"भरोस ! भरोस !! क्या बात है?"

शायद ताँगे की आवाज से वकीलसाहब की नीद खुल गयी थी।

"मैं हूँ, आनन्द। घर से तार आया है, पापा जी। अम्माँ की हालत नाजुक है। मैं जा रहा हूँ।"

"आया।" वकीलसाहब ने आकर दरवाज़ा खोला—"तो तुम अभी जा रहे हो ?"

"जी, अभी गाडी मिल जायगी।"

"ओफ़, क्या बताया जाय ! मेरे ख्याल से जाना ही चाहिये। जाओ; देखो जाकर, मगर फ़ौरन सूचित करना, समझे ? और कोई बात हो, तो वह भी लिखना। अच्छा !"

"जी।"

"तो ठीक है, जाओ।"

आनन्द ने नमस्कार किया।

"सुखी रहो। ताँगे की आवाज़ हुई, तो मेरी नींद खुल गयी। मैंने कहा, क्या बात है। फिर तुम लोगो की खुस-फुस सुनायी पडी। मैं समझा, कोई आया है। खैर, भरोस फाटक बन्द कर लेना।" कथन के साथ वकील साहब अन्दर चले गये।

बाहर निकलकर उसने तॉगेवाले से कहा—"ज़रा रोको तो।" फिर—"ए भरोस, जरा सुनो।"

भरोस दौडकर उनके पास आ गया।

"ये लो कमरे की ताली रानी को दे देना। उसका टेबिललैम्प मेरे कमरे में है, ज़रूरत पडे, तो निकाल ले। 'चलो तॉगेवाले।"

रात से लेकर करीब दस बजे दिन तक अपने में ही उमडता-घुमडता कसमसाता और रह-रहकर अत्यन्त अधीर एवं उद्विग्न होता हुआ, जब वह अपने स्टेशन पर उतरा, तो उसकी आँखें किसी आदमी को खोज रही थी, जो उसके गॉव का हो, उसके घर के निकट का हो; जिससे वह कुछ पूछ सके, कुछ जान सके। लेकिन कोई नही दिखाई पडा। उसने एक हाथ में सूटकेस सँभाला और रेलवे की पटरी के अगल-बगल ही वह आगे बढ़ा। क्योंकि उसका गॉव लाइन के बिल्कुल किनारे था। लाइन के एक ओर आम, नीम और पलाश के पेड थे। जिनसे सट कर ही नीचे बैलगाड़ियो लीक थी। उसके बाहरी किनारो पर, ऊपर हटकर खेतो के मेड के रूप में

पगडण्डी थी। दूसरे किनारे पर पगडण्डियो के बाद ही खेत की सीमाएँ प्रारम्भ हो जाती थी। बाज़ार का दिन था और बाज़ार स्टेशन से सटकर ही लगता था। इक्के-दुक्के लोग आ-जा भी रहे थे। गावो में रेलवेलाइन की पटरियो से सटी हुई सँकरी पगडण्डीनुमा राह होती है, जिस पर अक्सर लोग पैदल ही चला करते हैं। उन पर पथरियाँ भी बिखरी रहती हैं, लेकिन साइकिलें भी चली जाती है।

आनन्द उसी पर धीरे-धीरे बढ़ रहा था। चारो ओर मकाई और ज्वार-बाजरे के खेत थे।

रास्ते में उसे दो भैंसा-गाडी मिली, जिन पर ईंटें लदी थी। एक बैल-गाडी भी मिली, जिस पर कोई वधू विदा होकर मैंके या ससुराल जा रही थी। कहाँ जा रही थी, कहना कठिन था; क्योकि वह पीछे की ओर मुँह किये बैठी थी और कोई खास घूँघट नही था। एक-दो बैलगाडियाँ और मिली थी, जो अनाज से भरी थी और बाज़ार से जा रही थी।

आनन्द ने उन सबको ध्यान से देखा, लेकिन कोई परिचित नही दिखाई पडा। पटरी पर आनेवाले लोगो को देखकर वह अन्दाज लगाता कि शायद यह मेरे गाँव का हो, लेकिन वह उसका अन्दाज भर रह जाता। बीच की पुलिया पर जब वह पहुँचा, तो पुल पर दो-तीन मिनट के लिये सूटकेस रखकर रुका था। पुल 'ठेठ गर्मी में जब नीचे का पानी सूख जाता है, तो लोगो और बैलगाडियो के आर-पार जाने का रास्ता बन जाता है। लेकिन आजकल उसमें पानी भरा था।

रास्ते भर वह न जाने क्या-क्या सोचता आया था। कभी लगता कि दिल बैठा जा रहा है और वह किसी अमंगल भावना से काँप जाता। वृद्ध हो रहे पिता, जवान बहिन, छोटा भाई, खुद बेकार, न जाने कितनी बातें उसके दिमाग़ में उड-उडकर रह जाती थी। अव्यवस्थित, क्रमहीन, उलझी हुई कितनी ही बातें-विचार जल-बुझ रहे थे। अपनी शादी,

बहिन का ब्याह, शिवा, क्रिया-कर्म, उनका भविष्य। कुछ भी स्पष्ट नही था। उसे खुद नही याद पडता था, अभी दो मिनट पहले वह क्या सोच रहा था। कभी सोचता—अगर माँ के दर्शन हुए, उन्होने कुछ कहा, वैसे क्या कहेगी ? अगर वह कुछ भी ठीक हुईं, तो वह उनको प्रयाग अवश्य ले जायेगा।

पुल से जब वह आगे बढा तभी, उसने अधार-चाचा को आते देखा। उसने लक्ष्य किया कि वह उसे देखकर कटे जा रहे थे। पटरी से नीचे लीक की ओर वह उतर ही रहे थे कि उसने पुकार कर प्रणाम किया। अधार-चाचा ठिठक गये।

"अरे आनन्द, तुम ? इसी गाडी से आ रहे हो क्या ?"

"हाँ चाचा। अम्मा कैसी हैं ?" कथन के साथ वह पास आ गया।

"अम्माँ ? बेटा मैं क्या कहूँ अपने मुँह से ! भगवान को यही स्वीकार था।"

उसे लगा था कि उसके हाथ से सूटकेस छूट जायगा। उसे लगा था कि कोई चीज़, जिसकी शक्ति पर वह खड़ा था, अभी चल रहा था, अब बात कर रहा है, उसके शरीर से उसी तरह निकली जा रही है, जैसे टपकते हुए बर्तन में पानी की सतह नीचे खिसकती चली जाती है। उसे लगा था कि अन्दर-ही-अन्दर कुछ विस्फोट हो गया है, ठण्डा-सा, सर्द, धीरे-धीरे घुलनेवाला, जो उसके कण-कण को बर्फ कर देगा।

सूटकेस उसने ज़मीन पर रख दिया। अचानक ऑखो में धुन्ध छा गयी। उस धुन्ध में ही उसने अधार-चाचा का सहारा ले लिया।

"कब चाचा, कब ? तो क्या मै बिना माँ का हो गया ? चाचा ! चाचा !"

"हॉ बेटा, आज सुबह को ही। अभी तो लाश भी रखी है। मै तो बाज़ार जा रहा था, सामान लाने।"

"चाचा ! अम्माँ चली गयी। अब मैं घर जाकर क्या करूँगा ?"

क्रन्दन के साथ वह फफक उठा था।

"धीरज धरो बेटा, इसी का तो नाम दुनियाँ है। फिर तुम तो पढे-लिखे हो। अब तो धीरज से ही काम चलेगा, भैया। अगर तुम्ही रोये, तो माया और शिवा का करेंगे ? और रामू तो तुमसे छोटा है। चुप, चुप, यह क्या पागलपन कर रहे हो ? सब्र से काम लो, सब्र से। तुम चलो, मै अभी आता हूँ। देर नहीं करना चाहिये।" भरे गले से चाचा ने कहा, और धीरे से अपने को छुडाकर वे चले गये।

वह कुछ देर वैसे ही खडा रहा। फिर निष्प्राण हाथो से उसने सूटकेस उठाया और छै महीने के रोगी के कदमो से वह गाँव की ओर बढा। गाँव के सामने आकर उसने पटरी छोड दी और पगडण्डी पकडकर खेतो के बीच आ गया। गाँव और पटरी में दो-तीन खेतो का फ़ासला था। और उसका घर तो बिल्कुल सामने ही था।

उसका घर पहुँचना, फिर खामोशी के साथ लोगो का आना-जाना। बाहर कुछ लोगो का खडे होकर, चौतरे पर बैठकर या चौतरे पर एक पैर रखकर खडे, धीरे-धीरे बातें करना। चौतरे पर सूटकेस रखकर सीधे उसका घर के अन्दर जाना। पैरो में जैसे किसी ने सौ-सौ मन की बेडियाँ डाल दी हो ''।

क्रन्दन के क्षीण स्वर बाहर आ रहे थे।

बरोठा पारकर वह आँगन में पहुँचा' '। चार-छै स्त्रियो का हिचकियो के बीच बात करना। श्यामा बुआ, जया और मन्नो की माँ बैठी थी। उसे देखकर उनकी आँखे उठी''''। कमजोर होती सिसकियाँ जैसे शक्ति पा गयी। माया ने देखा, वह उठी और उसके गले से लिपटकर बिलख पडी !

"हाय भैया, अम्माँ तो चली गयी ई'''''' '' !"

यहाँ आकर उसे लगा, जैसे सचमुच उसके आँसू नही निकल सकेंगे। वह चाहकर भी नही चिल्ला सकेगा। भरे गले से, उससे जो हो सका, माया

को समझाया और वह मॉ के पास जाकर बैठ गया। शिवा को उसने पास बुला लिया और उसकी पीठ पर हाथ रखकर वह मॉ को देखता रहा।

बीमारी से चेहरा पीला और कृश जरूर पड गया था। नाक के बगल में गालो की रेखाएँ भी गहरी पड गयी थी, पर वह तो उम्र ही ऐसी थी। खिचडी बाल, लेकिन छवि कितनी थी उनमें! कुछ ऐसे, जैसे कोई ऑखें बन्दकर बहाना किये लेटा हो, या सोने का अभिनय कर रहा हो—जैसे अभी-अभी ऑखें खोलकर उठ बैठेगा।

वह बैठा रहा, ऑसू बहते रहे। उसे रोते देखकर सभी रो-रोकर थके हुए अन्य लोग पुनः रो पडे।

इसी बीच श्यामा बुआ ने उठकर मुँह ढक दिया। बोली—"पागल न बनो आनन्द। उठो तो, बाहर जाकर देखो, क्या देर है?"

वह बाहर आ गया, पीछे-पीछे शिवा भी।

कल माया को भी हल्का-हल्का बुखार था, अतः तेज बुखार के रहते हुए भी अम्मॉ ने खाना बनाया। सारी देह तप रही थी, लेकिन बहुत मना करने पर भी माया की धोती और शिवा के कपडो में साबुन लगाया था और करीब सेर भर अनाज भी पीसा था। बापू खेत के मामले में तहसील गये थे, अतः मना कौन करता, जिसकी बात वे मान जाती? फल यह हुआ कि शाम होते ही—हलहला कर बुखार चढ़ आया।

बातचीत में उसे इतना भर पता लगा था कि जब तबियत खराब हुई, तो उसे और रामू को तार दिया गया। फिर जब कल रात तबियत एकाएक ज्यादा बिगड गयी तो बापू ने चाहा कि बगल के गॉव से वैद्य जी या अभी-अभी बाजार में जो नयी डाक्टरी दुकान खुली है, परमेसरी के लडके को, जो झाँसी से पढकर आया है, उसको ही बुला लिया जाय। एक आदमी भी भेज दिया गया। वैसे अम्माँ ने मना किया था। बापू को रात भर चारपायी के पास बैठाये रखा। तीसरे पहर दो-तीन बार आनन्द को याद

किया। रामू को बुलाया और गालो पर ऑसू बह आये। फिर कुछ बुदबुदाने लगी—"नही नही, मैं नही जाऊँगी' शान्ती' माया 'शिवा''' शिवा को बुलाओ ।" सिसकता हुआ शिवा आ गया। उसके गाल-मुँह-सिर पर हाथ फेरा। हाथ के इशारे से माया को बुलाया, उसके सिर पर हाथ फेरा। और "चलती हूँ चलती हूँ इतनी जल्दी तो न करो' ' ।" फिर नीचे ऑखो में ऑसू भरे बैठे बापू के कन्धे पर अपना हाथ रखा और बडी मुश्किल से उनके आँसू पोछ दिये। हल्के से सिर हिलाकर रोने को मना किया और जैसा माया बताती है—फिर अम्मा ने मुसकराने की कोशिश भी की थी। और थोडा मुसकरायी भी थी। अचानक बापू के कन्धे पर रखे हाथ से उन्होने उनका कन्धा कस कर मुट्ठी में पकडना चाहा और "चलो मै चलती हूँ''' मुझे खटिया से उतार दो '' ।" कन्धे का हाथ ढीला हो गया। जल्दी-जल्दी ज़मीन पर लिटाया गया, लेकिन शायद प्राण तो उठाते-उठाते ही निकल गये।

आनन्द बाहर आ गया था। फिर एक-एक तैयारी, क्योकि दूर गंगा जी ले जाना था। तीसरे पहर विपुल क्रन्दन के बीच गाडी हँकी और रात में पहुँची।

हल्का-हल्का पानी बरस गया था। हवा में तो जैसे बर्फ घुल गयी थी। लोग गाडी में शव लिये बैठे थे। गॉव-पर गॉव, कोस-पर-कोस पीछे छूटते जा रहे थे। पलाश के उस सघन कान्तार के बीच, लीक पर बैलो की घंटियो की गूँज के साथ, गाडी आगे बढ़ रही थी। बीच में बटहा मिले थे, उजाड और परती का मैदान मिला था, जिसे लीक ने बीच से विभक्त कर दिया था, और खुद टेढ़ी-मेढी होती, रेंगती हुई जाने कहाँ चली गयी थी। रास्ते में नहर के पुल के पास दो-तीन आदमी बैठे नज़र आये थे। गाडी में कुछ खुस-फुस हुई थी। लोग ज़रा सँभले थे, लेकिन वे लोग बोले नही और गाडी आगे बढ गयी थी। जुए के नीचे लालटेन लटकाये, तमाम छोटी-बडी सायाएँ बनाते-बिगाडते गाडी काफ़ी रात गये गंगातट पहुँची थी।

शव-विसर्जन का प्रबन्ध किया गया। पण्डे और अन्य लोगों ने कहा—"बेकार है। लकड़ियाँ गीली हो गयी हैं, फिर ठण्डी हवा, शव जलेगा नही। अभी-अभी दो-तीन लाशो की दुर्गति हो चुकी है। प्रवाहित क्यो नही कर देते?"

बापू ने उसकी ओर देखा। आनन्द बुदबुदाया—"नही, पहले जला कर देखो।"

खैर, लकड़ियॉ ली गयो, तैयारी की गयी। स्नान कराकर शव चिता पर रखा गया और अग्नि दी गयी। एक कोने से आग की लौ उठी, पहले कमज़ोर जैसे वह भी सिसक रही हो, फिर उसने खुद जैसे लकड़ियो पर ही सिर पटकना शुरू कर दिया। लौ उठी, बढी और फैल गयी। वह दूर बैठा हुआ देखता रहा, फिर उसने घुटनो में मुँह छिपाकर ऑखे बन्द कर ली। वह केवल मॉ के विषय मे सोच रहा था, लेकिन घूम-फिरकर और तमाम बातें क्यो आ रही थी उसके मन से? और अब भी तो आ रही है।

लकड़ियो ने जब आग अपनायी, तो वहाँवालो की ऑखें खुल गयी थी। लोग चकित थे। कई लोगो ने कहा भी—"वाह क्या लाश जल रही है! जैसे सूखा फूस जल रहा हो! ज़रूर कोई पुण्यात्मा थी। नही तो आज शाम से कोई लाश जली भी है ठीक से!"

आग की लपटें उठ-उठकर ऊपर की ओर खो-खो जाती रही। आस-पास कॉपता, सिहरता सा पीला उजाला फैलता रहा।

अन्धेरी रात नदी का किनारा··· श्मशान और जलती लाश और उसी की रोशनी में आसपास बैठे हुए तीन-चार आदमी। न जाने कैसा लग रहा था!

वह सोच रहा था—अम्माँ सचमुच पुण्यात्मा थी। अगल-बगल के लोगों को शक था कि उन्हें क्रोध करना आता है कि नही। कोई भिखारी कभी

देहरी से छूँछा नही गया, चाहे आधी मूठी चना ही क्यो न पाये। कौन व्रत और उपवास अम्माँ नही करती थी ! लोग कहते हैं कि औरतो के व्रत-पर्व में बडा खर्चा पडता है; लेकिन अम्माँ तो जैसे खर्च कम करने के लिये ही व्रत करती थी। अम्माँ सचमुच पुण्यात्मा थी, जो मरते समय चारपायी पर नही रगडी। अम्माँ सचमुच पुण्यात्मा थी, जो उन्होने वैधव्य नही देखा और पति के सामने ही चल दी। अम्माँ सचमुच पुण्यात्मा थी, घर को वह जैसा चाहती थी, वैसा बना हुआ देख नही सकी, लेकिन बनने के रास्ते पर तो कर ही दिया। अम्माँ सचमुच पुण्यात्मा थी ·· · ।

अचानक बिजली कडकी, गड-गड-गडाम्। बादलो की उमड-घुमड। लाश जल चुकी थी, मध्यम लपटें खेल कर रही थी। पानी की दो-एक छुटपुट बूँदें ·· फिर बडी बूँदें। लोग छप्पर के नीचे दौडे। बूँदें तेज़ हुईं, गडगडाहट, चमक और झमाझम। पानी मूसलाधार बरसने लगा।

'जलती हुई आत्मा शीतल जल की बौछारो में शान्ति पा गयी होगी।' वह उस समय कुछ ऐसा ही सोच रहा था। फिर सबने स्नान किया और हम लौट चले।

दूसरे दिन दोपहर होते-होते वे लोग लौटकर आये थे। रास्ते भर बैलगाडी पर वह जागता, ऊँघता, सोचता और हज़ारो प्रकार से अपने मन को धैर्य देता, भविष्य में डूबता, उतराता पडा रहा था। दो लोग और भी गाडी पर थे। उनकी बातें उसको याद नही। बापू जरूर नंगे पैर कभी गाडी के आगे कभी पीछे चल रहे थे। वह सोच रहा था—शायद रामू आ गया हो।

गाडी जब गाँव पहुँची, तो धूप तेज़ हो आयी थी। अधारचाचा का गमछा सिर पर ओढ़े वह ऊँघ गया था। दरवाज़े पर जब गाडी रुकी, बैल खुले और जुआँ जमीन पर रख दिया गया तो वह उठ बैठा। सूना दरवाजा चुपचाप बँधे हुये बैठे जानवर। गोबर की चोथ के ऊपर बैठी भैंस, जो कभी-कभी सर हिला देती है या थोडी थोडी देर में जिसकी पूछ में किंचित हरकत हो जाती है। मुँह के आस पास फेन लगाये और थोडा चुआये ऊँघ सी रही थी।

उसने देखा था कि सारी-की-सारी लेडौरियाँ खाली पडी हैं। शायद आज भैंस दुही भी नही गयी है और चरने जाने के लिये खोली तो खैर गई ही नही है। वह गाडी पर बॉस पकड़े बैठा रहा था। जब सब उतर गये तो अधार चाचा ने कहा—"उतरो आनन्द।" तब वह उतर आया।

चौतरे पर पडी खाट पर शिवा पडा-पड़ा सो गया था। गाडी से उतर कर वह घर में गया। अन्दर आँगन से लगे नहाँ पर माया सिर ढाँके लेटी थी। उसने पुकारा—"माया!"

आवाज़ बहुत धीमी थी, लेकिन माया ने सुन ली और चौककर उठ बैठी—"भैया आ गये?"

उसकी ऑखे भर आयी। गला भर आया।

"रो नही माया। रामू आया?"

"नही तो। पता नही क्या बात है, क्यो नही आये।"

"तुम रात में अकेली सोई थी?"

"नही श्यामा बुआ भी थी। सुबह चली गई। मन्नो की अम्माँ भी आयी थी, थोडी देर हुई चली गयी हैं। शिवा के लिये खिचडी बना दी है, लेकिन उसने खायी नही।"

"आखिर रामू आया क्यो नही? मुनुवॉ को भेजूँ क्या?" वह सोचते हुए बाहर चला आया।

बखारी से उसने झबई में भुस भरा और जानवरो को डाल दिया। बैठे हुये जानवर दूर से ही भरी हुयी झबई देखकर उत्साह के साथ खड़े हो गये। उसकी आवाज से चबूतरे पर दीवार से सिर टेके, ऑखें बन्द किये हुये बैठे, बापू ने ऑखें खोली और—"भैंस को अरहर का भुस मत देना" कह कर आँखें बन्द करली।

अचानक उसे ख्याल आया कि अभी तो जानवरो ने पानी भी नही पिया होगा। घर जाकर वह बाल्टी लाया और चबूतरे पर चारा काटने की

मशीन के पास रखा तसला उठाता हुआ बाहरी कुयें की जगत पर जा पहुँचा। पानी खीचकर रख दिया, फिर जगत से उतरकर भैंस खोल ले गया। पानी खीच-खीच कर पिलाता रहा। जब सब जानवर पानी पी चुके तो बापू ने कहा—"माया से कुछ बनवा लो आनन्द। शिवा को खिला दो। वह भी खा लेगी। तुमने भी तो कल से कुछ नही खाया।"

"आपने तो कई दिनो से कुछ नही खाया है।" चाहकर भी वह कह नही सका।

"थोडा-बहुत अगर तुम भी खा लोगे, तो वह भी खा लेंगे।"

शिवा को जगाकर वह अन्दर ले गया।

तीसरे पहर उसने तीन-चार पत्र लिखे। वकील साहब को, रंजना को, और एक अपने मामा को।

शाम को चिंतित होकर, मुनुवाँ को, उसने लखनऊ भेज दिया। "आखिर देखो तो जाकर, क्या बात है!"

८

आनन्द के आने के तीसरे दिन ही शान्ति आ गयी थी और दो दिन से रुके हुए आँसू फिर पिघल गये थे। रोने की आवाजें गूँज उठी थी और दिवंगता के गुणों का वर्णन ज़ोर पकड़ गया था।

सात-आठ दिन बाद तेरही आदि की बातें चर्चा का विषय बन गयी। ....मनुआँ लखनऊ से लौट आये थे। रामू का पता नही लगा। जिस मकान में वह रहता था, उसके अन्य लोगो से ज्ञात हुआ कि वह कई दिन पहले विश्व-विद्यालय के लडके लडकियो के साथ में भ्रमणार्थ कही बाहर जाने को कह रहा था। अचानक एक दिन चला गया और जिस दिन तक आने को कह गया था, उसे व्यतीत हुए आज छै दिन हो गये।

इधर आनन्द लगातार घर के विषय में सोच रहा था और खासकर कल शाम को जब वह मैदान जा रहा था, उस समय उसने जो कुछ सुना था, सुनकर उसे काठ मार गया था। उसके मन में पहली बार गाँव में बढ़ती हुई शिक्षा के प्रति एक सन्देह हो उठा था। साथ में रजन था। बिहारी मिसिर के कुएँ से लोटे भरकर जब वे गाँव के विषय में बातें करते हुए आगे बढ़े, तो छोटे ताल के पास पहुँचने पर चार-पाँच औरतें लौटकर आ रही थी। आगे सोमा थी, अधार-चाचा की लडकी। सोमा के साथ श्यामा बुआ की नातिन—बिट्टी, पीछे तीन औरतें चदरा ओढ़े, घूँघट काढ़े, एक पंक्ति में थी। एक को, जिसका घूँघट आँख तक था, वह पहचान गया, वह बलराम-चाचा की स्त्री थी। बाकी को वह नहीं पहचान पाया। बग़ल से जब वे गुज़रे, तो आनन्द ने लक्ष्य किया कि सोमा ने कनखी से रजन को देखा और मुस्कराकर ठिठककर, पीछे के लोगो को

देखने लगी—जैसे उनके पास आने की प्रतीक्षा करने लगी हो; फिर आगे बढ गयी। औरतो मे कुछ बातें हो रही थी। चाची ने आनन्द को देखा, तो चुप हो गयी और कुछ कहा भी। आनन्द को केवल इतना सुनायी दिया कि उसका नाम लिया गया है। लेकिन बीच की औरत अपनी बात कहती ही गयी।

"अब देखो कैसे निभती है। जिया चली ही गयी, अब तो खाली घर रहेगा। माया और सुरेन्द्र क बारे में ऐसे ही क्या कुछ कम बातें फैली हैं।... ई अंग्रेजी के पढौवा सब गुन भरे होत हैं। उस दिन शकुन तिवारिन-टोला गयी, तो मास्टर के चौतरा पर सब छँटे-छँटे बैठे थे। उसको देखा तो न जाने कौन सा गीत गाने लगे। आग लागै इनकी जवानी में!"

लगता है बात की धुन में न तो उसने आनन्द को देखा और न चाची की ही बात सुनी। जब वह सब निकल गयी, तो भी आनन्द उन जाती हुई औरतो की ओर देख रहा था। उसे करेण्ट मार गया था। सोभा ने पीछे घूमकर कुछ कहा और उस घूँघट ने भी पीछे मुँह कर आनन्द को देखा, फिर बातचीत बन्द हो गयी और औरतो की चाल तेज हो गयी थी।

आनन्द के दिमाग में माया और सुरेन्द्र एक साथ घूम गये—'वह रोज ही तो आता है; घण्टो बैठा रहता है। अम्माँ की कितनी बातें बताया करता है। उसे बडा अच्छा लडका लगता है; आज्ञाकारी, सुशील, नम्र। लेकिन माया?....'खैर, रजन क्या सोचता होगा? अब मैं इतना चुप क्यों हो गया?

"हाँ रजन, तुम क्या बता रहे थे कि रामलाल ने कामताप्रसाद के घर पिस्तौल रखवा दिया और फिर दारोगा बुलवा कर पकडवा भी दिया!"

"हॉ आनन्द! भई इन लोगों की बातें न पूछो, निराली होती हैं, निराली। तुम तो खुद जानते हो, इनके घर क्या था? सन् बयालिस की बात है। कहो खेत रखा रहे थे, धोखे में पकड लिये गये। पुलिस को इस बात से कोई मतलब न था कि असली अपराधी है या नही। उसको तो

अपनी खानापूरी करनी थी। यह कह देने में क्या लगता है कि इन्होने ही तार काटे हैं। पच्चीस दिन बन्द रहे, फिर मॉफ़ी मॉगकर चले आये। और जब चले आये, तब कुछ दिन बाद नेतागिरी सूझी। पुलिस का दलाल तो पुश्तैनी है। इधर सैंतालीस के बाद से ऐसा रग बदला है कि सॉप भी ऐसी केंचुल न छोडता होगा। अब तो नेता जी, नेता जी ही हैं, पिस्तौल लटकाये सडको, बाज़ारो और मेलो मे शान से घूमा करता है।"

"अच्छा रजन, एक बात बताओ। इनका इतना खर्च कैसे चलता है? पक्का मकान बना लिया है। रेडियो, ग्रामोफ़ोन, बढिया फर्नीचर, सब शहर जैसा ठाट है इनके यहॉ। परसो मुझे पकड ले गये थे। घण्टे भर बैठा रहा उनके कमरे में।"

बस्ती पीछे छूट गयी थी। और ये लोग उजाड परती मैदान मे निकल आये थे। सध्या की कालिमा आसमान से उतरने लगी थी और काफ़ी उतर चुकी थी। बीच में एक साफ़ जगह देखकर रजन ने कहा—"यही बैठा जाय, थोडी देर।" और दोनो बैठ गये।

एक मालगाडी निकली। दोनो उसकी ओर देखने लगे। जब वह चली गयी, तो रजन ने कहना शुरू किया—

"पच्चीस बीघा खेत कर लिये हैं, पच्चीस बीघा। बाप बटाई पर खेत जोतते-जोतते मर गया। तुम्हे मालूम नही? सुना है छै हज़ार रुपये सरकार से ले लिये कि बयालिस में पुलिस ने मकान जला दिया था, जब कि ससुरे का एक तिनका भी नहीं जला था। और जलता भी कैसे? धरे तो गये थे खेत में भुट्टा रखाते हुए।"

"अरे!"

आनन्द को सचमुच आश्चर्य हो रहा था। गॉव से उसका सम्बन्ध बहुत कम हो चला था। अतः गॉव-विषयक गतिविधि की जानकारी भी उसे बहुत ही कम थी। वर्ष में चार-छै दिन के लिये जाता भी

था तो वे दिन योही घर में कट जाते थे। इतना जरूर जानता था कि रामलाल आजकल गॉव के नेता हैं; बडा पैसा कमा लिया है, डिस्ट्रिक्ट-बोर्ड के मेम्बर हैं, बस।

"मैंने तो सुना है कि कानपुर में कोई साझे की दुकान भी है; उससे काफी पैसा मिलता है।"

"कैसी दुकान!" रजन ने लोटे से एक घूँट पानी पीकर कुल्ला करते हुए कहा—"ये सब चालें हैं छिपाने की। लोग कहे न, कि आखिर पैसा कहाँ से आता है। अरे बडी पोल है इसमें। इसके जैसा आदमी ...।"

"हमे इससे सावधान रहना चाहिए। बडा रहस्यमय आदमी है!"

"ऐसा-वैसा! एक नम्बर का पाजी, एक नम्बर का बतफ़रोश। जानते हो क्या करता है? लोगो में झगडा करा देगा, रपट लिखवा देगा। दरोगा आयेगा, दोनो ओर से घूस दिलवा देगा। जैसे पचास दिलवाये तो बीस अपने पास रख लेगा। या फिर तहसीली मे काम हुआ तो दो इससे लिये चार उससे लिये। उनका पेशा है टुकडखोरी। आजकल श्यामलाल और ननकू भी तो वही ठग अपना रहे हैं।"

"जो हो, कुआँ तो बडा अच्छा खुदवाया है। घेरा बहुत बडा है। एक चक जमीन और बीच में पक्का कुआँ। बाल्टियाँ भी अच्छी लगायी हैं।"

"पहले पूरी बात सुन लो, राय बाद में कायम करना। कुएँ का रुपया सरकार से वसूल किया है और साथ ही सौ-सौ चार-पाँच और लोगो से भी ऐंठ लिये हैं कि तुम भी सिंचाई करना। इसे भी जाने दो। सुनने में यह भी आया है कि एक प्रौढ पाठशाला और एक पुस्तकालय के लिये भी कुछ ग्राण्ट लेता है, लेकिन वास्तविकता यह है कि एक भी समाचार-पत्र का पता नही लगता। एक-दो जो आते भी हैं, वह उन्ही के घर पढ़े जाते हैं। ऐसा अन्धेर मचा रखा है कि स्मरण आते ही मन में आग लग जाती है। अच्छा तुम्ही बताओ, गॉव में दिनदहाड़े क़तल हुए; वह भी एक नही,

दो-दो और एक जगह नही, अलग-अलग भागो में और कचहरी का फैसला यह हुआ कि डाकुओ ने मारा, जब कि पचीसो चश्मदीद गवाह थे। इससे बडा अन्धेर और क्या हो सकता है ? सुलतानसिंह के साथ हज़ारो से ऊपर खाया है उस केस में और न जाने किसको-किसको खिलाया है। खैर चलो, पहले निबट लिया जाय।"

बात समाप्त करते-करते रजन उठ खडा हुआ। आनन्द भी उठा। दोनो दो विभिन्न दिशाओ में झाडियो को देखते हुए आगे बढ़ गये।

थोडी देर बाद जब दोनो साथ-साथ गॉव की ओर लौटे, तो अँधेरा जवान हो चला था। दूर से गॉव का कुछ पता नही चलता था। हॉ, दो-एक चिराग जरूर टिमटिमा रहे थे। इसके अतिरिक्त उत्तरटोले में कही लडाई हो रही थी। अतः किसी के ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाने की आवाज़ गूँजती थी, फिर धीमी आवाज़ें भी आ रही थी।

"छाती पर लात रख के ज़बान खीच लूँगा! किसी का दिया नही खाता हूँ! साला, बूढा हो गया लेकिन हौस नही जाती।"

आनन्द ने कहा—"किसकी आवाज़ है रजन ? मुझे तो धनीराम की लग रही है।"

"और किसके गले में लाउडस्पीकर फिट है। भई, गजब का चिल्लाता है। अरे, कभी पास से देखो तो जानो, कैसे अभिनय के ढंग से बोलता है! केवल मुँह ही नही हिलाता, अंग-प्रत्यग अभिनय और कवायद सी करते हैं।"

"लेकिन लडाई किससे हो रही है ?"

"शायद सन्तू महाजन से, बडा बदमाश जो है। धनीराम की बहन पर कभी से निगाह रखता था। बेचारी बेवा लडकी, निहायत सीधी। मगर यह पापी कब मानता है। कुछ शरारत कर भर बैठा होगा।"

अचानक बैलगाडी के आने की ध्वनि सुनायी दी। हाँकने की आवाज़ से कुछ पहिचान कर रजन ने कहा—"कौन, रमज़ान ?"

"हाँ ! पालागन रजन भैया ।" गाडी हाँकनेवाले रमजान बेहना ने जवाब दिया ।

"खुश रहो ! कहाँ गये थे ?"

"स्टेशन लाला, नन्हें को छोडने । आज बीबी को भी ले गये हैं न !"

"अच्छा-अच्छा, ठीक है ।"

गाडी आगे चली गयी ।

चुपचाप चलते-चलते आनन्द को लगा-'मौन ठीक नही है । अतः बोला—"रजन, अब तो गाँव में काफी शिक्षा है । मेरा ख्याल है कि पन्द्रह-बीस से कम क्या कालेज जाते होंगे ।" आनन्द को गाँव की शैक्षिक प्रगति के विषय में पर्याप्त जानकारी थी फिर भी उसने पूछा ।

"जरूर जाते होंगे । एक दिन हिसाब लगा रहा था—तुमको लेकर एक एम० ए०, एक बी० ए० हैं, दो इन्टर और छै हाई स्कूल हैं । चार इन्टर और सात हाई स्कूल में बैठ रहे हैं । लेकिन एक बात है, कोई भी भले लक्षण नजर नही आते । सिनेमा के गीत गायेंगे, सिगरेट का शौक करेंगे और छैला बनें घूमेंगे । सभी ढग बस चौपट होने के हैं ।"

गाँव प्रारम्भ हो गया था । चौतरो पर छप्पर के नीचे खाटें बिछ गयीं थी । दरवाजे के आलो पर डिब्बियाँ या लालटेनें जल चुकी थी । कही-कही लालटेनें छप्परो में भी लटक रही थी । जानवर अपनी नादो और लेडौरियो में मुँह हिलाकर खाने में लीन थे । जब कभी वे चारे के बीच में तेजी से मुँह हिलाते, डालते या उठाते और कान फडफडाते, तो गले की घण्टियाँ घनघना उटती थी । दो-एक जगह लोग सानी कर रहे या दूध दुह रहे थे । कुछ जगह लोग चारपाइयो पर बैठे, लेटे, बात करते, कुछ भजन गुनगुनाते, सुर्त्ती मलते इस बात की प्रतीक्षा मे थे कि कब कोई घर से आकर कहे कि रोटी बन गयी, चलो । और वे उठकर चल दें ।

नगर के जगर-मगर करते मुहल्लो और अँधेरे के आँचल में मुँह छिपाये, जीवित-जागृत इस गाँव में क्या अन्तर है ? आनन्द को लग रहा था जैसे

हजारो, लाखो मीलो के उजाड, बजर प्रान्त में यह एक अकेला गॉव है, विशाल मरुभूमि में एक शाद्वल की भाँति।

सर्दी पडने लगी थी। आनन्द के मन में विचार उठा—महीने भर की और बात है, फिर अलाव आबाद हो उठेगे। और उनके चतुर्दिक किस्से-कहानियो का, बुधुवा की जवान लडकी से लेकर छिद्दू की लडाकू सास तक, मातादीन की ग्राम-पंचायत के चुनाव के मामले मे धोखेबाजी से लेकर मसुरिया के यहाँ रण्डी के नाच तक, नोखे की बहू को बडाई से लेकर अलबेले के लडके की शैतानियो तक और काग्रेसी राज्य की धाँधली से लेकर बच्चा कम पैदा करने की योजना तक तथा गॉव की नयी पौध की बुराइयो से लेकर अपने समय में, अपने गुणो तक की चर्चा का बाजार गरम होने लगेगा। चिलम, बीडी और सुर्ती के दौर तेज हो उठेगे। फिर धीरे-धीरे अलाव की आग ठण्ढी होने लगेगी और लोग बैठे-बेठे ऊँघने लगेंगे। फिर एक-एक उठकर चलने भी लगेंगे। लकडी का कुन्दा सुलगता रह जायगा। अकेला, एकाकी ठण्ढी और ओस में नहायी हवा में बेसुध पडा हुआ वह कुन्दा खुद ठिठुरने लगेगा और जब लोग रजाइयो, फटे कम्बलों और तार तार हो रही दुलाइयो में घुटने पेट से सटाया पैर फैला या गरम मासल साँसो में अस्तित्व समेटे, समर्पण लिये-दिये दूसरी दुनियाँ में खो जायँगे, या मुँह ढाँके, लगान, कर्ज़ और बैल की गोई भरने से लेकर बिटिया के ब्याह तक की चिन्ता में डूबे, तन्द्रा में जा पहुँचेंगे—तब अलाव की आग भी राख की रजायी ओढकर अलसा सी जायगी।

आनन्द कुछ और भी सोचता; तभी रास्ते को घेरकर खडी गाडी के बगल से दबकर निकलता हुआ रजन बोला। "ये लोग जरा भी तो ख्याल नही रखते कि रास्ता है। अभी कुछ कहो तो छाती पर चढने को तैयार हो जायंगे। मैं कहता हूँ, इनका बस चले तो यही रास्ते में शौच भी करें और चूल्हा भी जलायें।" आनन्द को हँसी आ गयी।

रजन को उसके घर छोडकर, जब आनन्द अपने घर की तरफ़ घूमा, तो जिस चीज़ को वह चाहकर भी सही ढंग से नही सोच पा रहा था और

जिस विषय पर सोचने में वह सचमुच अपने को समर्थ नही पा रहा था, वह था—माया-सुरेन्द्र, माया-सुरेन्द्र। उसकी आँखो में सत्रह वर्ष की माया का भरा पूरा गोल गोरा चेहरा घूम जाता था। उसकी बाढ़ घूम जाती थी उसकी बातें और बातो की शालीनता घूम जाती थी, उसकी मुस्कराहट और हँसी घूम जाती थी।

—सचमुच इसे अकेले यहाँ कैसे छोडा जा सकता है। माना कि माया एक हद तक अबोध, अनजान और साथ ही समझदार है। लेकिन लोगो की निगाहें, उनकी बातें और छोडो इसे—माया भी तो अब छोटी नही हैं।

वह घर पहुँचा तो शिवा भुस के ढेर में पानी डाल रहा था। लगभग आधा घडा डालने के बाद वह घडा रख, दोनो हाथो से भुस मिलाने लगा।

"अब सानी कर रहे हो शिवा ?"

"हाँ भैया। बैल भोलाबाबा ले गये थे, बाजार अनाज भरने; अभी तो लौटे हैं। बाकी सब की सानी कर चुका हूँ।" झबई में भुस भरते हुए शिवा ने उत्तर दिया।

"पानी पिला दिया है ?"

कम्बल लपेटे, लालटेन की रोशनी में किसी किताब के पन्ने उलटते बापू ने कहा—"हॉ, तलैया से पिला लाया है।"

चौतरे पर लोटा रखकर, बैठते हुए आनन्द बोला—"तुम्हें, कितनी बार समझाया है शिवा कि ताल-तलैया का पानी मत पिलाया करो जानवरो को ?"

झबई में भुस भर कर उठाते हुये, शिवा के कुछ उत्तर देने के पहले ही बापू बोल उठे—"देर हो गयी थी। इसलिये मैने ही कह दिया था।"

शिवा के पास जाते ही बैठे हुए बैल हडबडाकर खडे हो गये। जैसे वे इसी की प्रतीक्षा में थे। और शिवा के झबई उलटते-पलटते दोनो बुरी तरह सानी के ढेर में मुँह घुसेड कर खाने में जुट गये।

आनन्द ने देखा और कहा—"लगता है, दोपहर को भोलाबाबा ने कुछ दिया नहीं।"

"पता नही, टैसे भूमा तो पाखरी मे ले गये थे।" बापू ने कहा—"तुम क्यो बैठे हो? कुल्ला करो न! शिवा बेटा, ज़रा अन्दर से चोकर भी लाकर थोडा-थोडा बैलो को डाल दो, भूखे बहुत हैं।"

"करता हूँ। शिवा, कलसिया में पानी है कि अन्दर जाऊँ?"

"है।"

शिवा ने झबई चौतरे पर फेंक, कलसिया उठाकर आनन्द के बगल में लाकर रख दी और भूसी लाने अन्दर चला गया।

आनन्द ने लोटा माँजकर हाथ-मुँह धोया, फिर वह एक हाथ में लोटा और एक हाथ में कलसिया उठाये अन्दर चला गया। शिवा चूनी-भूसी लाकर बैलो के भूसे मे मिला रहा था।

"यहाँ बरोठे में एक डब्बी जलाकर रखा करो शिवा। बडा अँधेरा रहता है।"

अन्दर घनौची की जगत पर कलसिया रखकर आनन्द चौके की ओर गया। वहाँ के एक कोने पर सीने भर की, मिट्टी की पतली दीवार के घेरे में, चौके के अन्दर माया रोटी सेंक रही थी और बाहर शान्ति रोटी बेल रही थी।

"खाना बन गया?"

"हाँ भैया। परसूँ?"

"ज़रा रुको। शिवा को आ जाने दो।"

तभी शिवा आ गया।

"आ गया मैं। परसो जीजी।" और कपडे उतारकर, पैर धोता हुआ बोला—"भैया, बापू का हाथ जल गया आज!"

"अरे, कैसे ? ज्यादा जल गया क्या ?"

"ज्यादा नही। वो भौरियाँ सेक रहे थे और नाउनदाई पवा रही थी बातचीत में ख्याल नही रहा।"

"कुछ लगाया ?"

"हाँ, स्याही लगाई है।" और शिवा हँस पडा। चौके के अन्दर माया भी हँस पडी। वे समझे कि अब शायद आनन्द भैया का प्रवचन प्रारम्भ हो जायगा। वे जानते थे कि आनन्द भैया इन सब विषयो में कैसी बातें करते है। जब तक अम्मा थी, तब तक कितनी हँसी होती थी उन बातो की।

"अजीब बात है। वह जो शीशी भर मलहम लाया था, उस बार अम्मा के जलने पर, क्या हुआ माया ? अम्मा ने तो लगाया भी नही था।"

आनन्द को याद हो आया, जब अम्मा जली थी भरी दोपहर में बाजार जाकर वह मलहम लाया था। और जब वह लौटा था उसके सर में दर्द होने लगा था। और तब अम्मा अपने हाथ की जलन से ज्यादा उसके सरदर्द को लेकर परेशान हो गयी थी।

"वाह भैया ! तुम भी क्या बात करते हो ! कै महीने हुये ? अरे वह तो माँगे ही माँगे चटपट हो गया। धरा है अब !"

"शिवा, कल बाजार जाकर ले आना। नही, मैं ही जाऊँगा। नरसिंह से भेंट भी कर आऊँगा। परसो न माया ? देखो, शिवा तो आकर डट भी गया।" और आनन्द खुद कपडे उतारने लगा।

"परसती हूँ भैया। अरे शिवा, जरा चितकबरी बिल्ली को तो एक दिन ठीक करो, दुष्टा आज भी दूध पी गई !"

खाना खाते समय आनन्द ने चाहा कि वह सुरेन्द्र की कुछ बात कर ले। फिर जाने क्या सोचकर चुप रहा और इधर-उधर की बातें करता रहा।

खाना खाकर जब वह बाहर आया तो बापू कम्बल में लिपटकर, चटाई पर लुढक गये थे। आनन्द को आया जान बोले—"आनन्द, अभी दातादीन आये थे। कल जाकर कुछ रुपये ले आना। अच्छा!"

"रुपये! कैसे रुपये?"

"अरे मैंने मॉगे हैं। तेरही वगैरह में काफी खर्चा जो पड़ेगा। पिछली फसल में, कुछ दम तो था नही। मैंने सोचा है कि लाइन पारवाले खेत बेच दूँगा। अकेले दम सभाले नही सँभलेगा। वह सब तो मलकिन के बूते पर चलता था।"

भारी आवाज़ में बापू ने कहा। पत्नी को वे मलकिन कहते थे। प्रारम्भ के दिनो में वह मजाक और स्नेह में कहते थे; फिर यही कहने का अभ्यास पड गया था।

आनन्द ने समझ लिया कि अम्मॉ की याद मन में उतर गयी है। अतः उसने कुछ और कहना उचित नही समझा। केवल—"अच्छा" कहकर वह अपनी चारपायी पर लेट रहा।

थोडी देर बाद जब शिवा दरवाजा बन्द कर गया तो लेटे-लेटे करवट बदलकर उसने कहा—"बापू।"

"हाँ! क्या बात है?"

"क्या ज़रूरी है कि खेत बेच दिये जॉय?"

"क्यो, क्या हुआ?"

"कुछ नहीं, यो ही पूछा। क्या अम्माँ की तेरही के खर्चे मात्र के लिये ही आप खेत बेच रहे हैं?"

"हॉ, तेरही के लिये ही। पहले सोचा था, यो ही रुपया ले लूँगा। फिर सोचा—अभी पहले का ही कर्ज कौन कम है। फिर अभी तो तुम लोग भी कुछ नही कर रहे हो। बेच दूँगा, तो नकद रुपये मिल जायगें। हो सका तो पुराना कर्ज़ा भी पाई-पाई अदा हो जायगा। नही तो जानते हो, मूल

से सूद की रफ्तार तेज़ होती है। यह तो शीतलप्रसाद की भलमनसाहत है कि सब्र किये बैठे हैं।"

"लेकिन उनको बेचने के बाद आपके पास बच ही क्या जायगा ? कुल पॉच बीघे ही तो बचेगे !"

"अब ज्यादा करूँगा भी क्या ! इतने काफी है। रामू से कह दूँगा कि जितना पढना था, पढ चुके। अब नौकरी करो। तुम लोगो से बन पड़े तो शिवा को पढाना, नही तो उसे भी साठ सत्तर रुपये पर कही नौकरी में जोत देना। माया को अपने साथ ले लो। उसका विवाह अभी साल भर रोका जा सकता है। फिर जैसा सोचना, करना। जिसको सुख के दिन देखना चाहिये था, वह बेचारी तो ज़िन्दगी भर पिसते-पिसते चल ही बसी। अब मै क्या ज्यादा दिन टिकूँगा आनन्द ! लगता है कि अब मेरे दिन भी पूरे हो गये। मुझसे यह सब होगा नही, समझे न ! नसीब में सुख लिखा नही तो मिलता कहाँ से ? तुम लोगो को लिखा-पढा दिया। अब तुम जानो तुम्हारा काम जाने।"

आनन्द के लिये यह स्वर नया था। यह शब्द नये थे और शब्दो की आवाज़ भी नयी थी। उसने चाहा कि वह एक बार चिल्लाकर कहे कि अच्छा-अच्छा, सुन लिया। चुप रहो अब। लेकिन वह कुछ कह नही सका।

—सचमुच बापू अब तक सभी कुछ झेलते आये हैं। उन्हे आराम मिलना ही चाहिये, इसलिये उसे नौकरी करनी चाहिये। उसे नौकरी करनी ही चाहिये थी। उसने बेकार ही एम० ए० किया। अगर नौकरी कर लेता तो वह अपने भविष्य का खतरा उठाकर कम-से-कम दूसरो का भविष्य तो बना देता। अम्माँ को ही कुछ आराम मिल जाता। बापू को कुछ तो संतोष हो जाता। यह ठीक है कि उसने इस बीच, घर से कुछ लिया नहीं; लेकिन घरवाले तो सोचते थे कि लडका अब कमायेगा, अब कुछ आराम मिलेगा। अब कुछ कमायेगा, अब कुछ चैन मिलेगी। लेकिन वह तो कुछ हुआ नही।

भी इच्छा अगर पूरी कर पाता तो कुछ तो शान्ति मिल जाती। तुम सचमुच धैर्य और साहस की अवतार थी माँ। एक महान शक्ति! तुम चली गयी तो बापू के कदम डगमगा उठे हैं, उनका धैर्य छूट गया है—साहस जवाब दे गया हो तो आश्चर्य क्या?

—सदा मुख पर लटकनेवाली लट को बार-बार उठाकर बालो के बीच खोसती हुई, तुम शुभ्र हास्य के मोती बिखेर देती थी और उसी हास्य के वातावरण में मनोहारी विनोद-वार्ताओ की मिश्री घोल देती थी। बापू हँस पडते थे। जाता हुआ साहस ठिठककर लौट आता था। साथ छोडती हुई शक्ति उत्साह का सहारा पाकर फूल उठती थी। बापू ठीक ही तो कहते हैं ···।

—लेकिन मैं मैं ·· क्या करूँ? रामू को तो पढना ही चाहिये। कहाँ गया होगा वह?· नौकरी ·· नरेन्द्र · · ·उसमें अगर देर लगी तो! उसे नौकरी करनी ही है। माया को ले जाना · ब्याह · दहेज खर्चा! फिर शिवा? · ·तो अब उसे नौकरी करनी ही है, कही क्लर्की ही क्यो न मिले!

—आनन्द ·रन्जना···· को भूल जाओ। भूल जाओ रिसर्च को भी। आनन्द, भूल जाओ कम्पटीशन की बात। आनन्द, भूल जाओ अपनी महत्वाकाक्षाओ को। जीवन से संलग्न ये जो दायित्व हैं, अपने निर्माताओ की पवित्र साधो के जो भूखे, प्रत्याशित आह्वान और प्रतिदान-गर्भित ऋण हैं—उन्हे चुकाना ही पडेगा।

—हाँ रंजना, तुम्हे भूलना ही होगा। मेरा तुम्हारा कोई साथ नही। मैं तुम्हारा साथ नही दे सकूँगा। मैं घर बसाने के पहले घरवाला हूँ, गृहस्थी-वाला हूँ। एक भरा पूरा परिवार है मेरे साथ। रंजना, तुम मुझे जो चाहे, समझ लेना। मैं तुम्हारे सपनो का समभागी नही बन सकूँग। मुझे क्षमा कर देना रंजना। जो कुछ हो जायगा, उसमें मैं विवश रहूँगा रंजना।····
मनुष्य विवश है; क्योकि वह परिस्थितियो से बँधा हुआ है। वह कायर है; क्योंकि वह कर्त्तव्य से संबद्ध है। वह भीरु है; क्योकि आदर्श से संपृक्त है।

वह प्यार नही कर सकता, क्योकि प्रेम अन्धा होता है। वह उस भावना का निर्वाह नही कर सकता, जिसका सम्बन्ध उसके शरीर की भूख प्यास के साथ पहले है। क्योकि जन्म से ही उपकृत होने के कारण वह अपने निर्माता के प्रति उत्तरदायी है। वह एक सामाजिक प्राणी है, सामञ्जस्य और सायुज्य जिसकी प्राथमिकता है।

रात्रि की निस्तब्धता साँय-साँयकर कराह रही थी और बेहनाटोले में रह-रहकर कुत्ते भूँक रहे थे। कभी वे भूँकते तो भूँकते ही चले जाते; प्लुत स्वर में कूँ-कूँ करते और फिर बिगड उठते, जैसे ताव खा गये हों। उधर चमारनटोले में ढोलक की थाप और दो-तीन कण्ठो के स्वरो की सम्मिलित पर क्षीण ध्वनि भी हवा पर मचलती हुई चली आ रही थी।

आनन्द ने मुँह पर की शाल हटायी और आँखें खोल दी। नीम के पेडो के नीचे जानवर बैठ चुके थे। केवल एक पडिया खडी होकर कर्र-कर्र पागुर कर रही थी। उसके दाँतो के रगड की ध्वनि जिन्दा थी। इन जानवरो और घर के दरवाजे के बीच लम्बा-चौडा, छोटा सा मैदान था, जो पडुआ से कुटा, काफी चिकना सा था, आकाश-दीपो के मन्द प्रकाश में बिना किसी सिळवट के उस सफ़ेद हल्की मैली चादर की तरह चमक रहा था, जिसमें दो-एक जगह दाग़ पडे हो।

इसी बीच एक गाडी निकली और अँधेरे में मणिधर सर्प की भाँति निकल गयी। उसकी सीटी की तेज़ आवाज़ बडी देर तक हवा पर झूलती और आनन्द के कानो में गूँजती रही।

६

दूसरे दिन दोपहर को आनन्द ने रंजना को एक पत्र लिखा।

राज,

महत्वाकाक्षाओ की कुतुबमीनार इतनी जल्दी भहरा पडेगी, मैने कभी नही सोचा था। तुम्हे याद होगा, मैने एक बार कहा था—राज, सम्भव है, मैं कभी कमज़ोर पड जाऊँ, दूर कुहासे में मेरा धैर्य खो जाय, मेरी दृढता क्षीण हो जाय और शायद मैं अकथनीय विवशता का शिकार हो जाऊँ। और यही नही, मैं स्वयं अपनी नज़रो में कुछ-का-कुछ हो जाऊँ, तब तुम्ही मेरी आशा की एक मात्र ध्रुवतारा रहोगी जो अपने स्नेह का सम्बल देकर मेरे लडखडाते कदमो को सँभाल सकोगी, धुँधली पड गयी दिशाओ में एक आलोक नक्षत्र बनकर चमक सकोगी। वह दिन अब आ गया है।

अम्मा की मृत्यु के बाद बापू का स्वभाव न जाने कैसा होता जा रहा है। कल आधे से ज्यादा खेत बेच देने की बात करने लगे। यह भी कहने लगे कि तुम लोगो से जो कुछ उम्मीद थी, फिलहाल तो उसके भी आसार नज़र नही आते और अकेले अब मेरे किये कुछ होगा नही। मै अब अधिक दिन जिऊँगा भी नही। माया को वे यहाँ अकेली नही रखना चाहते। मैं भी कुछ कारणो से उसे यहाँ अकेली नही छोड सकता। वयस्क हो रही बहन को ऐसे छोड़ा भी कैसे जा सकता है!

यो गाँव अच्छा है। छोटा-सा गाँव, पुरानी रूढ़ियो, जर्जर विश्वासो और खण्ड-खण्ड होती धारणाओ को अपने इर्द-गिर्द लपेटे, नयी रोशनी का सहर्ष स्वागत करने को प्रस्तुत इस गाँव का भविष्य निश्चय ही उज्ज्वल

है। लेकिन बढ़ती हुई नयी शिक्षा, जिस किसी भी कारण हो, उच्छृंखलता को ही अधिक प्रोत्साहन दे रही है।

तुम्हे एक बात और लिखनी है राज, यो द्विविधा भी मन में जरूर। है लेकिन सोचता हूँ कि जो मेरे बाहर-भीतर का अन्तर्यामी है, उससे मन की बात छिपाकर गुनाह नही करूँगा। मुझे डेढ़-सौ रुपयो की अविलम्ब आवश्यकता है। वैसे मैं तुम्हे नही लिखता, वकील साहब को ही लिखता; लेकिन कुछ बातें हैं, जिन्हे मिलने पर ही बता सकूँगा। अगर मजबूरन उन्हें भी लिखना पडा, तब तो लिखूँगा ही; क्योकि अब अम्मा की तेरहीं सिर पर आ गयी है। अविलम्ब उत्तर की प्रतीक्षा में। सदा तुम्हारा—आनन्द।

"कबतक चिट्ठी-पत्री लिखोगे आनन्द ? दातादीन के यहाँ हो आते। फिर वह कही चल देंगे तो मुसीबत सिर पर नाचने लगेगी।"

आनन्द ने लिफ़ाफे पर पता लिखते हुए कहा—"मैं वहाँ नही जाऊँगा बापू। आखिर आपको रुपये ही चाहिये न ? मैने एक जगह लिख दिया है। रुपये आ जायगे, नही तो मैं खुद जाकर रातोरात ले आऊँगा। खेत नहीं बेचने हैं मुझे।"

"लेकिन करेगा कौन ?"

"मैं करूँगा।"

"तुम करोगे ?"

"हाँ।" लिफाफ़े को चपकाकर, शिवा से भेज देने के लिए, वह इधर-उधर देखने लगा।

बापू उसे देखते रहे और वह उठकर अन्दर चला गया।

आनन्द जब अन्दर पहुँचा तो उसने देखा कि शान्ति तो नहां के नीचे बाल खोले बैठी चावल बीन रही है और माया नहा के ऊपर बैठी उसके बालो में कघी कर रही है।

"शान्ति, शिवा कहाँ गया ?"

"पता नही, यही कही होगा। मगर ए अन्नू ! तुम जिन्दगी भर मेरा नाम लेते रहोगे। तुम्हारे ही कारण वहाँ घर भर के लोग मुझे चिढाते हैं। यह लिफ़ाफ़ा किसको लिखा है ? तेरही की सब चिट्ठियाँ लिख गयी ?"

"यह तो ऐसी ही है; जाता हूँ उसको भी लिख डालता हूँ। एक बैठक में सब समाप्त कर दूँगा। अच्छा शान्ति, जरा पानी तो पिलाओ।"

आनन्द जाकर शान्ति के पास बैठ गया।

"पहले दीदी कहो।"

"अच्छा दीदी, दीदी, दीदी, पानी पिलाओ, बस।" आनन्द शान्ति की पीठ में एक हल्का घूँसा मारता हुआ बोला।

"अरे-अरे ! तुम माया को क्यो नही मारते ?" उठते हुए शान्ति बोली।

"हमें क्यो मारेंगे ? तुम्ही को तो ठसक लगी है दीदी बनने की; हमको थोडे ही है।" माया बोली।"

पानी पीकर आनन्द जब बाहर आया, तो रजन का भाई काली साइकिल लिये कही जा रहा था।

"कहाँ जा रहे हो काली ?"

"स्टेशन, भैया।"

"ये लो, पत्र डाल देना। रजन है न घर पर ?"

"हाँ, है।" कहकर काली ने पत्र ले लिया और वह चला गया।

आनन्द ने बैठकर तीन-चार पत्र लिखे, फिर उठकर वह रजन के यहाँ चल दिया; लेकिन जा पहुँचा महीपाल की बैठक में।

महीपाल गाँव के पुराने ज़मीदार थे। कभी उनकी हवेली देखते ही बनती थी। अब तो बहुत ही खस्ता हालत में थी, लेकिन दरवाज़ा अब भी पुराना वैभव बताने में काफी अंशो तक सफल था। तरुणावस्था में काफ़ी विलास किया और अपव्यय तो उससे भी बढकर। इसका परिणाम यह हुआ कि ज़मीदारी का काफ़ी बडा भाग तभी बिक गया था। फिर ज़मीदारी टूटी तो ढकी-मुदी भी जाती रही। अब करीब सौ बीघा सीर मात्र बची थी। खर्चे भी पहले से कम हो गये थे। लडकियो का ब्याह कर दिया था। बड़ा लडका खेती देखता था। मझला कानपुर में वकालत करता था और छोटा लड़का ग्यारहवें मे पढ रहा था। घर मे ठकुराइन और एक बूढ़ी चाची भर थी।

महीपाल की उम्र ढल रही थी; लेकिन दिलफेंकपन बढ़ रहा था। इस-लिये उनकी बैठक हमेशा जमी रहती थी। इन दिनो तो कम, लेकिन मई-जून के महीनो में बैठक का रंग ही कुछ दूसरा रहता था। दोपहर में गाँव के छुटे-छुटे लोगो की, ताश की, दो-तीन फडें जमती थी और आये दिन शाम को एक बडी सिलौटी पर भाँग पिसा करती थी। कानपुर निषिद्ध क्षेत्र था, लेकिन महीपाल तो कभी-कभी अफ़ीम और बोतल का भी शौक करते थे। जाने कहाँ से उसका भी प्रबन्ध होता ही रहता था।

महीपाल दिलफेंक ज़रूर थे, लेकिन उनका प्रत्येक पदक्षेप बौद्धिक होता था। जल्दी किसी को कहने का अवसर न देते थे। अन्दर-ही-अन्दर बड़े दूर की कौडी मारते रहते।—सोनी चमारिन जब इस गाँव में आयी तो हफ्तों तक उसकी चर्चा चलती रही। श्याम-सलोने रंग की, रसभरे जोबन की, आम के फाँक जैसी आँखो की, पैने कटाक्षो की और भादो की जमुना जैसी चाल की बातें जब उठतीं, तो जल्दी खत्म नही होती थी। पाँच साल शहर

में रहकर, शौकीनी सीखकर आया हुआ मनका नाऊ तो बिल्कुल पीछे पड़ गया था। वह ज-जो बातें सुनाता था, उससे तो यही लगता था जैसे सोनी उसके हाथ अब चढी, तब चढी। लेकिन महीपाल ने अन्दर-ही-अन्दर मोती को चार बीघे बटायी पर देकर जाने कैसा तीर मारा कि एक दिन सुनाई पडा—खेत में चार आदमियों के बीच में सोनी ने मनका को मारते-मारते छोडा और बहन-बेटी से लेकर माँ-बाप तक ही नही, बल्कि सात पुरखो तक को तार दिया।

अचानक सोनी हवेली में अन्दर ठकुराइन के पास आने-जाने लगी। डेढ साल बाद जब सोनी के लडका हुआ तो गाँव भर में दबीदबी कानाफूसी होने लगी।

"अरे अस्पताल की दायी लाया था भाई। घर के पीछे की दीवार पक्की बनवा ली है। महीपाल एक नम्बर का पाजी है। इसके पहले रधिया कहारिन को रखे हुए था और उसके पहले चम्पिया भुरजिन को।"

"और रसूले की बेटी को क्यो भूलते हो? जरा इधर कान तो करो.... मैंने सुना है जगजीवन पण्डित की बहन पर भी डोरे डाल रहा है।"

"देखना, बुढ़ापे में क्या दुर्गति होती है इसकी! बैठक क्या होती है, इसकी बहन, उसकी बेटी, फलाने की बहू। इसके बाप जवानी में ऐसे थे, उसकी माँ जब गाँव में आयी थी तब भी ऐसी थी।—इन्ही सब की खिचडी चुरा करती है। साल में दो बार भागवत बैठाता है, लेकिन कर्म चाण्डाल के हैं!"

खैर, महीपाल की कभी कोई दुर्गति नही हुई। उनकी चैन की बंशी सदा बजती रही। साँवले, नाटे शरीर पर मास फटा पड रहा था। झुर्रिया बढ चली थी उनके चेहरे की एक-एक रेखा जैसे उनके अपराधो और कुकृत्यों की साक्षी हो।

आनन्द जब उधर से गुज़र रहा था तो ठाकुर ने बुला लिया—"आओ आनन्द, कहाँ जा रहे हो?"

वे अपने फाटक के बीच कुर्सी पर बैठे मोहन से सिर मे मालिश करा रहे थे।

"ग्जन के यहाँ जा रहा हूँ, ठाकुर साहब।"

"अच्छा तो जरा यहाँ भी बैठ लो। मोहन, जरा कमरे से एक कुर्सी तो निकाल लेना।"

"नही, ठीक है।" आनन्द खाट पर ही बैठ गया।

"अच्छा रहने दे। नही लेता आ। अभी और लोग भी तो आते होगे। पता नहीं, आज सर में क्यो दर्द हो रहा है! सोचा, जरा मोहन का भी हाथ देखूँ। बडी बडाई सुनी थी, लेकिन देखा नही था। आज सचमुच वैसा ही पाया। बाहर ले आये कुर्सी? अच्छा वही रख दो। और मोहन, जरा अन्दर से कुछ माँग भी लाना, पानी पीने को। कह देना—आनन्द आया है।"

"अरे ठीक है ठाकुर साहब। मैं कोई मेहमान थोडे ही हूं?"

"फिर भी क्या हुआ? हमारे लिये मेहमान ही हो। छठे-छमाहे गाँव आये, उस पर भी तो इधर नही आते। हाँ आनन्द, कही नौकरी कर रहे हो या वो क्या सुना था, रिसर्च? और हाँ, डिप्टी-कलेक्टरी में नही बैठे?"

"अभी तो रिसर्च ही करूँगा, फिर उसमें भी बैठूँगा।"

"और नौकरी?"

"अभी नौकरी का विचार नही है।"

"अच्छा, विचार ही नही है!"

"नहीं।" आनन्द जानबूझकर बनकर बोल रहा था।

"यहाँ का क्या सोचा? बहिन यही रहेगी कि ले जाओगे? क्योकि अकेली न पड जायगी। फिर अभी बच्ची है, अकेले तो यहाँ बहुत जी ऊबेगा।"

"नही, ले जाऊँगा, या फिर शान्ति के यहाँ कर दूँगा।"

मोहन एक कटोरे में कुछ बताशे और पेडे लेकर आ गया। चारपायी पर उसने कटोरा रख दिया और उसकी पाटी से लगाकर लोटा।

"ले जाओगे ? चलो यह भी ठीक है। वैसे गाँव की लडकी है; अडोस-पडोस अच्छा है। कोई तकलीफ़ नही होगी। रामआसरे की घरवाली मरी, तो उसकी बिटिया थी या नही ! माया के साथ तो शिवा भी है। वह बेचारी तो निपट अकेली थी।"

आनन्द ने बात उडाकर मिठाई खाते हुए पूछा—"मुन्नू भैया तो कानपुर में हैं न ?"

"हाँ, अभी तक तो डिप्टी-कलेक्टरी के चक्कर में थे। लेकिन हुआ हुवाया कुछ नही। रुपये फूँकने थे, सो फूँक चुके, टाइम भी बहुत बरबाद किया। अब इधर कुछ वकालत की ओर ध्यान दिया है। साल भर से तो आये भी नही।"

"क्यो ?"

"लो, पूछते हो क्यो ! अरे शहर के सामने देहात कोई चीज़ होता है ? बहू तो और भी बरपा है। यहाँ उसके दीदा ही नही लगते। और लगें भी क्यो ! यहाँ रोज़ शाम को मिस्टर के साथ घूमने को कैसे मिलता ! आये दिन सिनेमा देखने को कैसे मिलता ! लेकिन बाप का दिल ठहरा, सो मुझे ही झख-मारकर कभी-कभी जाना पडता है। उसकी अम्मा भी जब तब बेटा-बहू को देखने के बहाने गंगा-स्नान कर आती हैं।"

तम्बाकू की पीक लील जाने के कारण महीपाल को हिचकी आने लगी थी।

पानी पीकर आनन्द जब उठा तो दो व्यक्ति और आ गये थे। एक को आनन्द पहचानता था। वह गाँव का ही था, दूसरा अपरिचित था। बातचीत में सुना कि कोई पचायत का मामला है। चलने लगा तो महीपाल बोले—"जाते हो ? अच्छा। हो सके तो शाम को भी चले आना।"

"क्या बात है ठाकुर साहब ?"

"बात कुछ नही। यो ही एक पंचायत है। दो मामले हैं, एक खेतो की बाबत और एक सहदेव की रखैल का। अच्छा, अब तुम्ही बताओ आनन्द,

मान लो, कोई औरत किसी के साथ रहना चाहती है, तो दूसरों को चूना क्यो लगता है ? जर, जोरू और जमीन तो जाँगर पर रहते हैं, दुनियाँ जानती है। लेकिन यहाँ कमर में बूता नही और आसमान सर पर उठाये घूमते है।"

"अच्छा, देखिये।" कहकर हाथ जोडता हुआ आनन्द चल दिया।

आगे एक गली से निकलकर आनन्द रजन के घर की ओर बढा था कि चन्दर मिल गया। वह एक सिगरेट पी रहा था। जल्दी से उसे फेंककर बोला—"रजन भैया तो आपके यहाँ गये।"

"कब ?"

"अभी इधर से। आप इधर से आ रहे हैं, वे उधर से गये हैं।"

"खैर, तुम क्या कर रहे हो आजकल ?"

"कुछ नही।"

"अच्छा तो आओ, तुम्हे घुमा लायें।"

चन्दर बडे असमजस में पडा। —'आनन्द भैया हाल-चाल पूछने के सिवाय कभी भी और कुछ बात नही करते। हो सकता है, किसी ने कुछ शिकायत की हो। अब ये घण्टा भर भागवत बाचेंगे, उपदेश पिलायेगे; और क्या ?'

"जरा कक्का का एक काम था।"

"क्या काम था ?"

"काम ऐसा कोई खास नही। लोहार के यहाँ से मशीन के गड़ासे लाने थे।"

"तो उधर से लौटकर ले लेना। आओ चलें।"

मजबूरन चन्दर को साथ चलना पडा।

रास्ते में भीखू अहीर की दूकान थी। पैरो से वह लँगडा था, अतः घर वालों ने घर के बाहरी कमरे में दूकान करा दी थी। अच्छी खासी बिसात-

खाने की दूकान—खूब चलती थी। पत्तो के ढंग पर पान भी रखता था। सिगरेट के नाम पर ज्यादातर चार मीनार, स्टार और मेल के लिये एक-आध पैकेट कैंची भी रखता था। वह कथा की कलायी और जनेऊ से लेकर मोटी धोती और सस्ते कमीज़-कुर्ते के कपडो तक का व्यापारी था। गेरू मिट्टी, दो कुल्हियो की दावात, पाटी घोटने का घुट्टा, कलम, निब, छोटी मोटी दवाइयाँ—जैसे एस्प्रो, अनासीन, चाय की पुडिया, साबुन, तेल, कंघा, बनियाइन, मेवा-मसाले, जुशाँदा, तरकारियों के बीज और भगवान जाने क्या-क्या भरा था उसके यहाँ। दूकान पर बैठे भीखू ने आनन्द को देखा तो सँभल जैसा गया।

"आओ लाला।"

"भीखू ज़रा पान तो लगा दो चार"

"हाँ-हाँ भैया, पान ही अकेले क्यों, जलपान भी करो। आओ बैठो। बिटिया, जरा यहाँ तो आना।"

नौ-दस वर्ष की एक लडकी आयी।

"ज़रा यह टाट तो बिछादो भैया को।"

लडकी ने टाट बिछा दिया। आनन्द तिरछा होकर उसपर बैठ गया। चन्दर खडा रहा।

भीखू फिर चिल्लाया। उसकी आवाज़ बडी मोटी और तीखी थी, भद्दी, बेसुरी।

"एक बिलिया तो लाना, एक लोटे में पानी भी।"

बिलिया आयी और भीखू ने उसमें, एक ओर उचककर, हाथ बढ़ाकर कनस्टर से बताशे निकालकर आनन्द की ओर खसका दी।

"अरे-अरे, यह क्या भीखू!"

"कुछ तो नही। कौन रोज़-रोज आप आते हैं। गाहे-बगाहे तो दर्शन मिलते हैं। और अबकी बेर तो भगवान का ही कोप पड गया। भौजी ने

हमसे तो कहा था कि अगर त्रिवेणी नहाने गयी तो तुम्हे जरूर ले चलूँगी भीखू। अब देखो ई जनम में मिलती हैं त्रिवेजी जी कि उस जनम में।"

कथन के साथ भीखू ने ऐसा मुँह बनाया, जैसे आनन्द की माँ के मरने का सबसे ज्यादा दुःख और नुकसान उसे ही हुआ हो।

"तो इससे क्या हुआ ? कभी किसी के साथ चले आना, नहा जाना। लेकिन यह सब ठीक नही। मैं अभी-अभी ठाकुर महीपाल के यहाँ से पानी पीकर आ रहा हूँ। फिर यह तुम्हारी दूकान है, दूकान।"

"लाला, ठाकुर बडे आदमी हैं। वहाँ तो रोज ही दो-चार आदमी खाते-पीते रहते हैं। हम गरीबो को कौन पूछता है !"

आनन्द ने कटोरी चन्दर की ओर खसका दी और बोला—"खाओ चन्दर, खाओ न ? लो, मैं भी खाता हूँ।"

जब तक इन लोगो ने पानी पिया, तब तक भीखू पान लगा कर देता हुआ बोला—"तम्बाकू भी दूँ ?"

"नही, केवल थोडी सुपारी।"

"मुझे दो भीखू उस्ताद।"

चन्दर सोच रहा था—'पान मिला, जलपान मिला। चलो, साथ आना बुरा नही हुआ। लेकिन भीखू है काइयाँ, यह नही बना कि काजू-किशमिश से जलपान कराता।'

भीखू से बिदा लेकर चलने पर आनन्द ने पूछा—"तुम्हारा तो इस साल इण्टर है न चन्दर ?"

"हाँ, और शायद आगे भी रहे।"

आनन्द ने हँसकर पूछा—"क्यो ?"

"लोग-बाग कहते हैं कि तुम कभी पास ही नही हो सकते। और मैं सोचता हूँ—उनकी बातो का कुछ तो ख्याल रखना पडेगा !"

"लोग ऐसा क्यो कहते हैं ?"

"क्योकि मैं दिन भर घूमता-गाता-खेलता और सुबह सात बजे सोकर उठता हूँ, इसलिये।"

"पढते कितने घण्टे हो?"

"कभी दो, कभी ढाई घण्टे। लेकिन रात में आठ से दस-साढ़े-दस तक जरूर।"

"रोज?"

"हॉ भैया, जैसे घूमने-खेलने से नागा नही, वैसे नागा इसमें भी नही। चाहे गर्मी की छुट्टियॉ ही क्यो न हो।"

"मैंने तुम्हारी बडी शिकायत सुनी है।"

चन्दर ने मन में कहा—'अब आये असली बात पर।' फिर प्रकट रूप में बोला—अरे भैया, शिकायत तो लोग महात्मा गाधी की भी करते है, जो बेचारे देश के लिये मर गये। उस भगवान की करते है, जो हमें यह चोला देता है, मनचाहा सुख लूटने के लिये।

"अच्छा चन्दर, जब तुम्हारे इतने सारे खेत है, तब दूसरो के खेत से भुट्टा और फूट चूराकर खाने मे तुम्हे क्या मजा आता है?"

"ये लो! भुट्टो की चोरी भी साली कोई चोरी है? अच्छा बताइये, श्रीकान्त उपन्यास में इन्दर को मछली चुराने में क्या मजा आता था?"

आनन्द को इन बातो में मजा आने लगा था।

"अच्छा तो पहले यह बतलाओ, तुम्हारी क्या महत्वाकाक्षा है? बडे होकर तुम क्या बनना चाहते हो?"

"मैं? मैं कुछ बनना नही चाहता। फिर भी अगर बनना ही पड़े, तो घुमक्कड बनूँगा। किसी अच्छे पत्र का सम्पादक, कोई ऊंचा पत्रकार बनूँगा और एक बार विश्व-भ्रमण करूँगा। और अगर डौल गठ गया, तो दस-पाँच वर्ष विदेश में बिताऊँगा। फिर किसी दिन उस पंछी की तरह टें बोल जाऊँगा, जिसे लोग शिकार के लिए मारते हैं!"

"क्यो ?"

"वाह ! आप भी पूछते हैं क्यो ? जितने साले मुझसे अभी अकड़ते है तब तीन-पॉच किया करेगे, तो उन्हे घर बैठे सुँघनी सुँघाया करूँगा। बडा मजा रहता है, सम्पादक हो जाने में। अच्छो-अच्छो को खबर लेने का अवसर तो मिलता है। —बेटा, तुम्हारी पोल-पट्टी प्रेस में है। दो हजार रुपये चाहिये।"

आनन्द हँस रहा था और सोच रहा था कि कौन कहेगा, यह इण्टर में पढता है।

"तो इसीलिये तुम पत्रकार या सम्पादक होना चाहते हो ?"

"मैं तो मजाक कर रहा था भैया! एक सफल पत्रकार के लिये बहुत ही विशाल अध्ययन और अमित ज्ञान की अपेक्षा होती है। युग-युगान्तर की नयी-पुरानी हलचलो का सम्यक् ज्ञान रखना कोई सरल बात है !"

चन्दर और कुछ कहता, तभी आनन्द ने दूसरा सवाल कर दिया।—
"इस बार गॉव के कितने लडके इण्टर में बैठ रहे हैं ?"

"चार, जिसमें दो परसाल भी बैठे थे और शायद दो परसाल भी बैठें।

"कौन कौन बैठ रहे हैं, इस वर्ष ?"

"कालका, राजेन्द्र, सुरेन्द्र और मांबदौलत।"

"कालका कैसा है ?"

"पास भी हो सकता है और फ़ेल भी।" चन्दर ने मुँह बनाकर कहा।

"ऐसा क्यो ?"

"हफ्ते में एक बार ससुराल जायँगे। हफ्ते में एक दिन किताब खोलेंगे; क्योंकि बाकी दिन जासूसी उपन्यास चलते है। सिनेमा देखने कानपुर जायेंगे। क्रिकेट का टेस्टमैच देखने लखनऊ जायँगे। वैसे पास भी हो सकता है; क्योकि दिमाग़ का तेज़ है।"

"और राजेन्द्र ?"

"पास हो जायगा।" चन्दर ने भविष्य वाणी की। "मगर आँख जरूर चश्मे के लायक कर लेगा। और भैया, मुझे तो शत-प्रतिशत इस बात का ही खतरा लगता है कि कही फर्स्ट डिवीजन न धमक बैठे!"

"अच्छा, सुरेन्द्र पढ़ने में कैसा है ?"

"पेट्रोल खतम, गाडी ठप्प! बोर्ड को घाटा नही होना चाहिये।"

"आखिर क्यो? वह तो बडा तेज और होनहार लगता है।"

"है, मगर तीन मरतबे साबुन से मुँह धोयेगा, स्नो लगायेगा। आठ बार शीशा देखेगा और सोलह बार बालो में कघी करेगा। कपडे झकाझक। वह नही होनहार लगेगा तो और कौन लगेगा ? अरे! आप हँसते है। पर मैं ठीक कह रहा हूँ। साघू की बानी कभी झूठ नही होती। इतनी बातो पर कहिए हाँ।" जब आनन्द ने कह दिया—"हाँ" तो चन्दर बोला—"अब आगे कै सुनो हवाल।" चन्दर बड़े लहजे में बोल रहा था।

"अपने को बडा सुन्दर समझता है; सोचता है कि हर लडकी उस पर मरती है। उपन्यासो से ढूँढ़-ढूँढकर प्रेम-पत्रो की रचना करते हैं। भैया, मैंने सुना है कि हिन्दी में प्रेम-पत्रो की बडी कमी है। इसीलिए साहित्य-सेवा करते हैं। प्रेम-पत्र लिखते हैं, उसमें सिनेमा के संवादो और गीतो की पक्तियाँ डालते हैं। और फिर उसकी तीन-चार कापियाँ करके जाने कहाँ-कहाँ परसाद की तरह बॉट आते हैं। एक-आध पत्र मुझको भी सुनाया था। बडा अच्छा लगा मुझे। मैं खूब हँसा, तो कहने लगा कि तुम सहृदय नही, नीरस व्यक्ति हो। तुम्हें सुनाना अपना, अपने प्रेम का, साथ ही कला का अपमान करना है। खैर, हाथ-पैर जोडकर सुन लिया, फिर बाहर आकर हँसता रहा। और हँसना, जाने कहाँ पढ़ा था कि स्वास्थ्य के लिये बडा लाभकर है। सो जब इच्छा होती है जाकर सुन आता हूँ, फिर बाहर हँस लेता हूँ। एक दिन पूछा कि भाई कैसे लिखते हो ? बताया अपना गुर उसने।

"आप जानना चाहेंगे ?"

"बताओ, बताओ।" हँसते-हँसते आनन्द के पेट में बल पड रहे थे। यद्यपि वह रह-रहकर कुछ सोच भी लेता था।

चन्दर तो जैसे ग्रामोफोन हो। उसने गाडी आगे बढायी।

"तो सुनिये। उसने कहा कि पहले दो सिगरटें लाता हूँ—चार मीनार। बाकी तो लेडीज़ होती हैं, यही अकेली मर्द सिगरेट है। पहली को खूब कश लेकर पिया। फिर दूसरी आराम के साथ सोचते हुए, प्रेम से छल्ले बनाते हुए। भाई साहब, मैं आप से छिपाता नही; कभी-कभी पीता हूँ; मगर मुझसे तो कभी छल्ले बनते ही नही और जब बनते नहीं तो लगता है कि बेकार ही में सिगरेट फूँक दी और कुछ मजा भी नही आया; इसलिये मैंने तो उसकी कोशिश भी छोड दी।—ओः गाडी कहाँ पटरी से उतर गयी। भई, आ जाओ न पटरी पर। ...हाँ ? तो इस तरह दो सिगरेट पीकर, कमरा बन्दकर, खिडकी खोलकर साहब कलम उठाते हैं। फिर सरस्वती मैया उतर आती हैं, कलम की नोक पर।

"एक दिन गुलाम ने ब्लन्डर कर दिया। पूछिये क्या ? मैने कहा कि गुलशेर ! ये भी कोई प्यार मुहब्बत या प्रेम-नेम है कि एक ही पत्र चार लोगो को देते फिरते हो। भई, मुहब्बत तो एक से की जाती है। तो भाई साहब, बिगड उठा मुझ पर, ऐसा भूँका कि अपना हिम्मत ही फ़ेल कर गया। बोला—"शटाप। वो सब लव का पुराना टेकनीक था। यह नया टेकनीक है। आप समझे न यह नया टेकनीक ?"

"समझ गया। समझ गया।"

"ओः बाकी लोगो के बारे में पूछना तो आपने क्लोज़ ही कर दिया। खैर, मैं खुद बताता हूँ। मैं, जाने दीजिये, अब अपने मुँह से अपनी बडाई क्या करूँ ! मैं सोचता हूँ, पास हो जाऊँ; सेकन्ड डिवीज़न में। फ़स्ट डिवीज़न की मेहनत तो मुझे खुराफ़ात लगती है भाई साहब।

चन्दर कुछ और कहता; लेकिन सामने रजन आता दिखाई पडा तो—"अरे बाप रे! रज्जन भैया, बताओ न अब कोई काम ? अच्छा भाई साहब, अपना रास्ता इधर।" कहकर, जल्दी से ठिठुककर, सेलूट मारकर चन्दर भाग गया।

रजन मिला तो बोला—"मैं तुम्हारे यहाँ से आ रहा हूँ।"

"और मैं तुम्हारे यहाँ से, भीखू की दूकान के रास्ते होकर। आओ लौट चलें। हाथ में कपडे हैं क्या ?"

"ये ? सिले हुए कपडे हैं, दर्जी से लेता आया। कई दिनो से पडे हुए थे। चन्दर चला गया, नही तो उसी के हाथ भेज देता। तुम्हारी भौजी इस कदर खफा थी कि अगर उनका वश चलता, तो आज कोर्ट मार्शल बोल ही देती।" लौटकर आनन्द के साथ चलते हुए रजन ने कहा।

दोनो हँसने लगे।

"चन्दर से क्या बात कर रहे थे ?"

"यूँही इधर, उधर की। गाँव के लडकों के विषय में पूछ रहा था। बडा मजेदार लडका है।"

"दिन भर घूमता रहता है। अजीब खोपडी है। इतना बडा हो गया, मगर शऊर रत्ती भर नही। कभी भुट्टे तोडेगा, कभी फूट चुरायेगा। आम के दिनो में दिन भर आम-जामुन के पेडों पर चढता फिरेगा। एक पका आम देखा तो परवाह नही कि कितनी ऊँचाई पर, कितने लचके पर है, चढ-कर या मार ढेला मार ढेला तोडकर ही रहेगा। भला बताओ! कही पैर फिसल जाय, कही डाल टूट जाय तो ? नहर नहाने गया तो तीन घण्टो की फुर्सत हो गयी। घर भर परेशान रहता है। भगवान जाने, कैसे हाईस्कूल पास हो गया!"

"कौन डिवीजन था ?"

"यही तो आश्चर्य है। छैः नम्बर कम थे, फर्स्ट डिवीज़न में। भगवान जाने इसका भाग्य था या इसके बाप का कि पास हो गया; लेकिन इस बार तो लगता है कि गाडी पार नही लगने की।"

"फिर भी फ़ेल नही होगा। बता रहा था कि रात में दो-ढाई घण्टे पढ़ता हूँ और रजन, बारहो महीने ढाई घण्टे की पढाई बहुत होती है।"

"सो तो है भैया। रात में लालटेन जलाये कुछ जोगिनी जैसी सिद्ध करता रहता है। वैसे लिखता और बोलता भी अच्छा है। कई बार इनाम पा चुका है अपने कालेज में। खैर! घोडा दूर न मैदान।"

"उँह, छोडो भी इस बात को। तुम्हे एक मज़ेदार बात बताऊँ?"

"बोलो।"

"अभी मैं जा रहा था तुम्हारे यहाँ। ठाकुर साहब ने बुला लिया।"

"कुछ खिलाया भी कि ऐसे ही?"

"सो तो कसके जलपान कराया, पर आगे की तो सुनो।"

"चलो, यह ठीक रहा। अब सुना सकते हो।"

सुनाते-सुनाते आनन्द का घर आ गया, इसके बाद चारपायी पर बैठ कर करीब आधे घण्टे तक महीपाल की बातें होती रही।

बाद में उठते हुए रजन ने कहा—"पंचायत-वंचायत मे मत जाना, एक नम्बर का काइयाँ है वह। तुम्हें पता नही, इसी के कारनामो से मुन्नू ने गॉव आना छोड दिया है। वह तो साफ़ कहता है कि अगर उसका बस चले, तो ऐसे आदमी को गोली मार दे। तुम घबराते क्यो हो? इनके छोटे सुपुत्र ने इनके नाक कान न काट दिये, तो मेरा नाम बदल देना। वह अभी से चोरी करता है, जुआँ खेलता है। एक बार कानपुर गया तो सुनने में आया, कोठे पर भी धावा मार आया। तुम देखना, महीपाल तो क्या, सात पुरखो तक का नाम उजागर न किया उसने, तो मेरा नाम रजन नही लजन कर देना।

रजन को थोडी दूर तक छोड आने के विचार से वह उठता हुआ बोला—"एक बात मैं अवश्य कहूँगा रजन! उस दिन शाम को भी कहना चाहता था, जब तुम मेवालाल, श्यामलाल, मनकू और सन्तू महाजन की बात बता रहे थे। कल सुलतानसिंह के विषय में बता रहे थे; लेकिन अवसर न समझकर नही कह पाया था। अभी तुम गाव के लडको की बात कर रहे थे। एक बात मैं पूछना चाहता हूँ कि क्या तुमने या तुम्हारी भाँति थोडे-बहुत शिक्षित लोगो ने कभी इन लोगो के कार्यों के प्रति सक्रिय विरोध का स्वर ऊँचा किया? क्या तुमने कभी सामने आकर या मौका पडने पर रामलाल या महीपाल से दो खरी-खरी बातें की? रजन, बुराई, बेइमानी और अन्याय की समाप्ति हाथ-पर-हाथ धरे बैठे रहने से कभी नही होगी; न उस बेईमानी या अन्यायी की पीठ पीछे अलोचना करने से होगी। समझे कि नही? मैं यह स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि अपने सामने घटित होते चले जाने वाले अन्याय और अनुचित कर्म का जो साहस के साथ सक्रिय विरोध नही करता, उसे सार्वजनिक जीवन की आलोचना का कोई अधिकार नही है। जो व्यक्ति अपने जीवन में सक्रिय नही है मैं तो उसे निकम्मा ही समझता हूँ भाई।"

"मुझे बडा आश्चर्य होता है रजन कि और लोगो के साथ साथ सुल्तान सिह ऐसे लोग भी गाँव में हैं और आज से नही, वर्षो से हैं। और उनके जो काम हैं, वे भी किसी से छिपे नही हैं। फिर भी कल तुम्ही बता रहे थे कि आज-कल तो बडा जोर बाँध रखा है उन्होंने। आये दिन अगल-बगल चोरियाँ होती रहती हैं, डाके पडते रहते हैं, और उनके अभियुक्त सुल्तान-सिह की कोठी में शरण पाते हैं, उनके पकड जाने पर सुल्तानसिह उनकी ज़मानत करवाते हैं, उनकी पैरवी करवाते हैं, फिर भी भले आदमी का ढोग भरते हैं। यह सब क्या है? और तुम्हीं लोग पीठ पीछे, बुराइयो का किला खडा करते हो, पचास तरह की बातें करते हो; लेकिन सामने पड़ने पर ठाकुर साहब, ठाकुर साहब, करते हो!"

आनन्द कुछ रुका और साँस लेकर बोला—"मैं पूछता हूँ कि आखिर यह सब क्या है ? जो आदमी अपनी सामर्थ्य, अपनी सम्पत्ति, अपनी शक्ति के आधार पर अपने अनुचित स्वार्थों की पूर्ति में इतना अन्धा हो रहा है कि उसे यह ख्याल नही रहता कि डाके और चोरी के लिये वह जिस घर को अपना इष्ट बना रहा है, उस घर में परसो लगन चढ़नेवाली है, किसी की क्वॉरी साँसो पर इन्द्रधनुषी सपनो के रंग उतर रहे हैं। बेटी के हाथ पीले कर देने की, किसी की बहुप्रतीक्षित आशा कल-परसो तक शहनाई के स्वरो में घुलकर मुस्करा उठेगी। जिसे यह होश नही कि अगर किसी निर्धन बाप के घर से, उसकी ससुराल से आयी धनी लडकी का बक्स उठ गया तो उस गरीब के ऊपर कभी न छूटने वाली कालिख न पुत जायगी। जिसकी आँखें इस कदर बन्द हैं कि उसकी शक्ति के आधार पर, उसके दल का कोई आदमी गाँव की किसी भी भोली लडकी पर बलात्कार करके, उसकी अस्मत का शीशा चकनाचूर कर देता है और उसके घर वाले उसके डर से उफ् तक नही कर पाते ! जरा से विरोध पर, विरोधी के हाथ-पैर तुडवा देना जिसके लिए एक साधारण बात हो गयी है, वह गाँव में रहता कैसे है ? तुम लोग उसके इस प्रकार के कुकृत्यो को देख-सुनकर भी कैसे सहन करते हो ! असल में तुम लोग बुजदिल हो, मुर्दा, नपुंसक, कायर, भीरु। तुममें जरा भी गरम खून होता, तो ऐसे आदमी का अस्तित्व मिनटो में समाप्त न हो जाता !"

"आप कहते क्या हैं ?"

"बस, यही सोचते रहो कि मैं क्या-क्या कहता रहता हूँ। मैं कहता हूँ, ऐसे आदमी का सामाजिक बहिष्कार नही हो सकता ? कोई आदमी जान हथेली पर लेकर उसको मजा नही चख सकता ! जो आदमी दूसरो के खून और हाहाकार पर मूँछों पर हाथ देने का आदी हो चुका है, तुम उसकी मूँछो में आग नही लगा सकते ? जो आदमी केवल वोट माँगने के समय दल-बल सहित पैदल तुम्हारे घर आकर, पचास बार झुककर,

विनम्रता की मूर्ति बनकर, लल्लो-चप्पो कर चला जाता है और तुम भोले-भालो से वोट पाकर एम० एल० ए० होकर दुबारा कभी गाँव वालो के पास झाँकने नही आता, आखिर उस आदमी से क्या मोह है तुम लोगो को ?

"जो इन्सान जनता की शक्ति पर अधिकार पाता है, सम्मान पाता है और फिर जनता पर ही उस की दुर्बलताओ के कारण शासन की हीन मर्यादा के आधार पर, संताप, दुख और तबाही का बादल बनकर छा जाना चाहता है, उस सार्वजनिक कर्यकर्त्ता को, जनता के उस प्रतिनिधि को, चाहे वह विधान-सभा का हो या लोक-सभा का, अगर शासन अपनी कमजोरियों के कारण दण्डित नही कर पाता तो अगले चुनाव में उसे असफल बनाकर उसके मुख पर कालिख क्यो नही पोत दी जाती ? उसे इस योग्य क्यो नहीं बना दिया जाता कि क्षेत्र भर में वह कही मुँह न दिखा सके ? उसके सगे रिश्तेदार तक उसकी सूरत से घृणा करने लगें। भाई-भतीजे तक उससे असहयोग कर दें।"

"लेकिन ये हिंसात्मक कार्य शासन व्यवस्था में शान्ति के स्थान पर ..."।

"यही तुम भूलते हो रजन। तुम अहिंसा और हिंसा के भेदा-भेद कोनही समझते ? जिस इन्सान का काम ही नर-हत्या और लूट-खसोटकर, अपना पेट, अपना घर भरना है, ऐसे नरपशु को पंगु और निर्जीव बना देने में, उस अकेले को शक्तिहीन, जलील और असहाय बना देने में कोई हिंसा नही है। इस प्रकार यदि सैकडो के प्राण सुरक्षित कर दिये जॉय, तो क्या यह हिंसा होगी ? कदापि नही। जो व्यक्ति समाज की शान्ति का हृदय विदीर्ण करने का साहस कर सकता है, वह अपने ही स्वार्थ के लिये अपनी पुत्री और बहिन का कौमार्य भी तो बेच सकता है ! ऐसा आदमी तो समाज का कोढ़ है कोढ ! उसका जड से उन्मूलन ही मानव समाज की सबसे बडी सेवा है। समझे ?"

"लेकिन मैं अकेले क्या कर सकता हूँ ?"

"अकेले ! मैं कहता हूँ कि तुम अपने को अकेला अनुभव ही क्यो करते हो ? तुम तो प्रातःकाल आध घण्टे पूजा करने के अभ्यस्त हो। फिर भी आश्चर्य्य की बात है कि तुम अपने को अकेला समझते हो। अपने सत् कार्य में क्या तुम अपने ऊपर उस परमपिता के कोटि-कोटि वरदहस्त फैले नहीं पाते हो ? रजन, सुकर्म में अपने को अकेला अनुभव करना अपनी उस सामर्थ्य, उस शक्ति का अपमान करना है, जो मनुष्य के लिए एक ईश्वरीय देन है। इतना ही नही, यह तो मानवता का अपमान करना है। अच्छा एक बात बताओ। क्या तुमने कभी मैदान में आकर इन समस्त कुप्रवृत्तियो के दमन का कोई सामूहिक प्रयत्न किया ? और क्या ऐसे प्रयत्न के अवसर पर लोगों ने तुम्हारा साथ नही दिया, जो तुम ऐसा कह रहे हो ?"

"नही, ऐसा तो कभी नही हुआ।"

"फिर तुम ऐसा कैसे कहते हो ? रजन, तुम उस दिन रामलाल की बुराई बता रहे थे। तुमने कहा था कि वह पुस्तकालय और वाचनालय के नाम पर पैसा खाता है। वह कोई मूर्ख आदमी तो है नही, जो अवसर से लाभ न उठाये ? मूर्ख तो हम लोग हैं, जो उसको अनुचित रूप से खाने देते है, अपने हितो को चूसने देते हैं, अपने अधिकारो का अनुचित उपभोग करने देते हैं। कभी तुमने चार आदमियो को बैठाकर इन लोगो की काली करतूतो पर विचार किया ? कभी तुमने इन समस्यायो का कोई समाधान ढूढने का प्रयत्न किया ? नही किया तो तुम अपने को धोखा देते हो ! आज का विद्यार्थी वर्ग लाख बुरा हो, लेकिन यह तो तुमको मानना पड़ेगा कि वह समाज की इन रूढियो, परम्पराओ और बुराइयो से टक्कर अवश्य ले सकता है, उसे एक रास्ता भर मिलना चाहिए।"

"आप तो उस वर्ग की प्रशंसा कर रहे हैं, जो अनुशासन हीन है, उदण्ड है।"

"मैं मानता हूँ कि आज का विद्यार्थी समाज काफी उदण्ड और उच्छृंखल है। लेकिन मैं यह भी मानता हूँ कि उसमें कुछ कर गुज़रने का साहस भी है। भले ही वह जिस काम में जुटा हो, उसकी हानि-लाभ से परिचित न हो; लेकिन इतना तो तुमको मानना ही पड़ेगा कि अन्याय के विपक्ष में यह उदण्डता भी एक क्रान्तिकारी गुण है।"

"ये लड़के ही किसी काम के हो तो क्या कहना!"

"तुम्हारी बात मैं मानता हूँ। पर इसी बात को तुम इस ढँग से क्यो नहीं लेते कि यदि वे काम के नही हैं, तो उन्हें कर्मठ बनाने की जिम्मेदारी भी तो हमारे ही ऊपर है। तुम कल चार आदमियो और लड़को को लेकर बैठो, उनके सामने सारी स्थिति रखो, अपनी योजना बताओ, रामलाल आदि से पुस्तकालय आदि का हिसाब माँगो। हिसाब न दें तो उसका डटकर विरोध करो। देखो, काम बनता है या नहीं ? रही लड़को की बात, सो उन्हें वैसे ही रामलाल, महीपाल आदि का विरोध करने में मज़ा आयेगा; क्योकि वे तो एक-न-एक सनसनीदार प्रसंग की खोज में रहते ही हैं। वैसे उनके सामने, मैं जानता हूँ कि इन बुराइयो के उन्मूलन का और बाद में एक सुव्यवस्था और जागृति का उतना महत्व नही रहेगा, जितना इन लोगो के विरुद्ध हो-हल्लड मचाने का। पर तब तुम लोगो का कर्तव्य होगा कि उस हल्लड-बाज़ी को नियन्त्रित करो। उन्हें समझाओ कि अन्ततोगत्वा इस विरोध का कुछ महत्व तो होना चाहिये। उसका गौरव बतलाओ और उसके प्रति उनमें रुचि पैदा करो। लेकिन अकर्मण रह कर ही इन सबका विनाश चाहते हो तो बैठे रहो चुपचाप! एक-न-एक दिन इस अव्यवस्था, अन्याय और बेइमानी के बढ़ते हुए शिकजे, जब तुम्हें भी कस लेंगे, तब तुम हाथ मलते और पछताते रह जाओगे! दुर्व्यवस्था के उस तुमुल कोलाहल में तुम्हारे कराहने की ध्वनियाँ भी मर जॉयेगी। उस समय तुम्हारे विरोध के कार्य भी असफल हो उठेंगे! तुम्हे यह कभी न भूलना चाहिये। निष्क्रियता और अकर्मणता जीवन के प्रति एक अभिशाप है। अकर्मण व्यक्ति को प्रकृति कभी क्षमा नहीं करती।"

फिर आनन्द अपने ही आप कहने लगा—

"मुझे स्वयं बडी ग्लानि होती है कि मैं इतना बडा आदर्श अपने मन में रखता हूँ, किन्तु अपने गाँव के विषय में ही जानकारी के नाम पर शून्य बना रहता हूँ। तुम उस दिन गाँव का हाल बता रहे थे और मैं लज्जा से गडा जा रहा था कि मैं जिस गाँव में उत्पन्न हुआ, जिसकी धूल में खेलकूद कर इतना बडा हुआ, उसके प्रति अपने किसी भी कर्तव्य को नहीं निभा पाया, उसकी कुछ भी सेवा नही कर सका। तुम्हें मालूम है रजन, मुझे दुनियाँ में माँ से अधिक प्यारा कोई नही था; लेकिन गाँव की हालत सुनकर मुझे अपनी माँ की मृत्यु से कही अधिक दुःख हुआ है। मैं तुम्हें दिखा नही सकता, लेकिन मेरे हृदय में भट्ठी जल रही है, भट्ठी। तुम कुछ करो, चाहे न करो; लेकिन मैं यहाँ एक आग सुलगा कर ही जाऊँगा। सत्तू महाजन और महीपाल ऐसे लोग दूसरो की बहू-बेटियो पर गृद्ध-दृष्टि लगाये रहें, व्यभिचार और बलात्कार को सरे आम प्रोत्साहन देते रहें, रामलाल और मनकू ऐसे लोग सार्वजनिक पैसा हज़म करते रहें, अपने अधिकार और अपनी पहुँचका, अपने हित और दूसरो के अहित के लिये अनुचित उपयोग करते रहे, मैं इसे किसी तरह सह न सकूँगा।"

"यह सब अशिक्षा का कुफल है भैया।"

"अभी तक गॉव में शिक्षा नही बढ रही थी, अब शिक्षा का विकास हो रहा है, तब गाँव के लडको में नैतिकता के प्रति आस्था और श्रद्धा का नव-नव आकर्षण उत्पन्न करना हमारा एक पावन नियोजन बनकर रहेगा।"

रजन गम्भीर हो गया था। जैसे सोच रहा हो कि आनन्द शति-प्रतिशत ठीक कहता है। यकायक वह सिर झटक कर बोला—"ठीक है आनन्द, लेकिन एक बात तो बताओ, आज से पाँच वर्ष पहले भी तो तुम गॉव में थे, तब भी तो इसमें यही बुराइयाँ थी। क्या तब तुमने इन्हें नही जाना था, जो आज ये तुमको बिलकुल नयी लग रही हैं?"

"सचमुच रजन, तब मैं गॉव के इस स्वरूप को नही पहचानता था। उस समय पुस्तकें ही मेरी दुनियाँ थी और तुम भी देखते ही रहते होगे कि मैं घर के बाहर कितना कम निकलता था। कुछ अगर सुनता भी था तो टाल देता था। तब मैं कुछ-कुछ तुम्हारी ही तरह था। तुम देख ही रहे हो, अब मेरा दृष्टिकोण बदल गया है। मानता हूँ, ज्ञान की उपलब्धि के लिये अध्ययन आवश्यक है; लेकिन जीवन का अध्ययन उससे कम आवश्यक नही है। तुम्हें यह कभी न भूलना चाहिये कि जो अनुभव पुस्तको में नही मिलता वह ज़िन्दगी की कशमकश अथवा संघर्ष मे मिलता है। उस अध्ययन का उपयोग और मूल्य ही क्या कि जो किसी प्रकार न होना चाहिये, उसे ही होने दिया जाय।"

चलते-चलते ठीक रास्ते मे पडी ईट को पैर से किनारे करते हुए आनन्द एकाएक फिर बोला—"एक बार पूर्वी ज़िलो में बाढ आयी थी रजन, तभी उधर महामारी का प्रकोप भी हुआ था। सयोग से मुझे वहाँ जाने का अवसर मिला था। मैंने वहाँ ऐसी ज़िन्दगी देखी थी, जो भूखी थी, प्यासी थी, नगी थी! जहाँ बहता हुआ आदमी तडफडाकर प्राण दे देता था, जहाँ एक बूँद पानी के लिये मनुष्य कीडे की तरह बिलबिला कर मर जाता था! रजन मैंने दुखी, असहाय और विपन्न मानवता का हाहाकार देखा है, उसे अपने कानो से सुना है—अपनी ऑखो से देखा और अपने वक्ष पर झेला है। मैंने देखा है, जहाँ मनुष्य पहले अपने परिवार के लिये घर, दौलत, जमीन-जायदाद का मोह छोड देता है वही फिर अपने प्राणो के रक्षार्थ अपने पुत्र, अपनी पुत्री और अपनी पत्नी का भी मोह त्याग देता है। मैंने ऐसे लोग देखे हैं, जो कुरूप-से-कुरूप जिन्दगी में असीम आसक्ति रखते हैं। मैंने ऐसे भी लोग देखे हैं, जिन्होने अपने प्यारो की मृत्यु से दुखित होकर आत्म-हत्या कर ली है, जिन्होंने अपने बच्चो की मृत्यु के पहले जानबूझ कर अपनी ऑखें सदा के लिये बन्द कर ली हैं!"

"तुम्हारी इन बातों को सुनकर मुझे बडा दुख हो रहा है भैया।"

"रजन, तुम कल्पना नही कर सकते, जल में डूबे-अधडूबे, नष्ट देह, नष्ट प्राण प्राणी किस दुर्गति को प्राप्त होते हैं! गाँव के तमाम मृत व्यक्तियो, मृत पशुओ की लाशो की दुगन्धि के बीच भी दया, ममता और कर्तव्य-निष्ठा का निर्वाह कैसे होता है! हर प्रकार की तबाही के बीच जिन्दगी के लिये चीखती चिल्लाती मानवता की भयभीत, आशंकित और असीम करुणा से भरी आँखो की दया की भिखारिणी भाषा मैंने सुनी है। तुम सोच ही नही सकते मृत्यु के उस हृदय विदारण, विभीषिकाजन्य और कारुणिक दृश्य के विषय में, जहाँ भरे-पूरे सम्पन्न घर में चार-चार लाशें सडती रहती हैं और पाँचवी अन्तिम साँसे तोडती रहती है। लेकिन रजन, मैंने उन अवसरो पर यह भी देखा है कि वहाँ तथाकथित नेतागण हवाई दौरा करके, कुछ ही घण्टों में वापस चले जाते थे। पत्रो में जगह-जगह से आ रही सहायताजन्य सुव्यवस्था, रक्षा तथा सयोजनाओ के विवरणो से कालम पर कालम भरे रहते थे। लेकिन स्थानीय नेताओ की चालबाजी से एक हजार आये हुए कम्बलो में पहुँचते वहाँ छै सै ही थे, पाँच हजार मन आये अनाज में तीन हजार मन ही पहुँचता था और पत्रो में उनके पावन कार्यो, अहर्निशि परिश्रम और उनकी सराहनीय सेवाओ के पुल बाँधे जाते थे! उन्हें पढ-पढ़ कर मानवता के प्रति मेरी आस्था के तार-तार झरझराकर फट जाते थे! तथाकथित नेताओ के साथ उनका समर्थन करनेवाले सच्चे नेताओ के प्रति श्रद्धा के चिथडे चिथडे उड जाते थे। उफ़! अब भी जब वे दृश्य याद आते हैं तो मेरे रोयें खडे हो जाते है।"

"तुम तो वहाँ गये हो, तुमने अपनी आँखों से सब देखा-सुना है, तब तुम्हारी यह हालत होती है। मेरी तो सुनकर ही हो गयी!"

"तुम कुछ करो या न करो, लेकिन मैं एक आग सुलगा कर ही जाऊँगा।"

"एक बार तुम आगे भर आ जाओ, हम सब लोग जी जान से तुम्हारा साथ देंगे।"

आनन्द और रजन को पता ही नही था कि कब से एक व्यक्ति उनके पीछे-पीछे आता हुआ ये सारी बाते सुन रहा था।

दोनो ने विस्मय से चौंकते हुए घूमकर देखा। वह जगत था।

"कहने और करने में बड़ा अन्तर होता है जगत। और जो लोग केवल कहने में विश्वास रखते है, करते कुछ नही हैं, वे साँप से भी ज्यादा खतरनाक होते हैं।"

"अरे तुम भी क्या बात करते हो आनन्द! मैं उन लोगो में नही हूँ जो कहने और करने में भेद रखते हैं और अवसर आने पर केवल डीग हाँककर ठण्डे पड जाते हैं।"

जगत आनन्द का लडकपन का घनिष्ट मित्र था। हाईस्कूल तक वह साथ-साथ पढ़ा था। दो महीने पूर्व आनन्द के पिता ने ज़मीन के एक मामले में जगत के पिता के असत्य पक्ष में कचहरी में गवाही नही दी थी। अतः दोनो परिवारो में इधर अन्दर-ही-अन्दर मनमुटाव हो गया था। अतः वह आनन्द की माँ की बीमारी में कभी उन्हें देखने नही गया और जिस दिन वे मरी, उसी रात को वह एक रिश्तेदार के गौने में चला गया था; क्योकि वहाँ उस वेश्या का नाच होने वाला था, जिसके यहाँ वह प्रायः जाया करता था। आज ही वह वहाँ से लौटा था। रजन से उसके पहले से ही अनबन थी, अतः उसने सोच लिया कि रजन ने जरूर उसकी बुराई करके आनन्द को भर दिया होगा।

"सो तो देख ही रहा हूँ।" आनन्द ने कहा।

"क्या देख रहे हो?" जगत सोचता था कि आनन्द से मिलने पर कह दूँगा कि मैं उसी दिन सुबह चला गया था। मुझे पता ही नही लगा कि चाची कब चल बसी। आदि-आदि।

"यही कि तुम मेरे घनिष्ठ मित्र होने का दम भरते थे। कहाँ गयी वह मित्रता? जब करीब महीने भर अम्मा की तबियत खराब रही और तुम एक दिन भी उन्हें देखने नही आये। क्या इसलिये कि बापू ने चाचा के मुकदमे में गवाही नही दी थी; क्योकि चाचा गरीब बालाराम का दो बीघा

खेत जबरदस्ती हड़प कर जाना चाहते थे ? या इसलिये नही आये कि कही चार-छै रुपये उधार न माँग बैठें ! क्यो ? यही नही, तुम गौने में जाने के लिये तैयार थे, जब कि घर में अम्मा की मिट्टी रखी थी। आश्चर्य है कि उसके बाद भी तुम चले कैसे गये ! कह दो कि मुझे पता नही लगा, जब कि सबसे पहले तुम्हारे यहाँ ही खबर गयी थी ! लेकिन वहाँ तो वेश्या का नाच देखना था और वासना की भूखी रात आबाद करनी थी। ऐसी दशा में शव-संस्कार के प्रबन्ध का झझट कौन उठाता ! क्यो ? यही तुम्हारा मन, वचन और कर्म से एक होना है ? तुम तो ज़हरीले नाग हो नाग !"

आनन्द कई दिनो के संचित क्रोध को अन्त में उगल ही बैठा।

"आनन्द तुम मेरा अपमान कर रहे हो। मैं जानता हूँ, तुम्हे रजन ने भर दिया है...।"

"बको मत जगत, कान खोलकर सुन लो। मुझे किसी ने भरा नहीं है। पर अगर भरा भी होता, तो भी गलत न होता। मुझे तुम्हारी शक्ल से घृणा हो गयी है। मित्रता का दम भरनेवाले तुम्हारे ऐसे अविश्वसनीय आदमी से मैं आजीवन सम्बन्ध रखना तो दूर, कभी बात भी नही करना चाहता। जिस व्यक्ति को एक मित्र की माँ के प्राणो की अपेक्षा वेश्या का नाच प्रिय हो, उसे तो वही व्यक्ति पसन्द कर सकता है और उससे सम्बंध रख सकता है, जो स्वयं वेश्या की संतान हो !"

"बस-बस आनन्द, अब अगर आगे कुछ कहा, तो अच्छी बात न होगी। मैं जानता हूँ तुमको अपनी पढाई का घमण्ड है। लेकिन इतना मैं बताये देता हूँ कि मुझसे इगिर तिगिर मत करना।"

"बताऊँ अभी इगिर तिगिर करना ? तुम मुझे अभी जानते नही हो।"

रजन बाहे समेटता हुआ जगत की ओर बढ़ने लगा। उसकी शारीरिक सम्पदा की कीर्ति आस-पास दो-चार गाँवो में भली भाँति फैल चुकी थी।

"अच्छा तो रजन के बल पर फूल रहे हो ! वह भी देखूँगा ! किसी

दूसरे गॉव में थोडे ही रहता हूँ। इस गाँव का मै भी हूँ।" भनभनाता हुआ जगत चल दिया।

आनन्द और रजन हँस पडे।

"बडी देर हो गयी, चलो चला जाय। मुझे तुम्हारी बात जँच रही है आनन्द, तुम जरा शुरू भर कर दो, फिर सँभाल लेने का दायित्व मेरे ऊपर रहेगा, अच्छा!" रजन ने कहा और वह अलग होने जा ही रहा था कि उस का छोटा भाई काली दौडता हुआ आया और बोला—"भैया, भैया, जल्दी चलिये, आधार चाचा को साँप ने काट खाया है, अपने चौतरे पर बेहोश पड़े हैं, जल्दी चलिये।"

सुनते ही आनन्द बोला—"चलो, चलो, कब काट खाया सॉप ने! कितनी देर हुई?"

तीनो तेजी से रजन के घर की ओर दौड चले।

१०

तेरही की तैयारियाँ होते-होते बारहवें दिन रमेश आ गया। वह उदयपुर गया था। लौट कर आया, तो उल्टे पैर भागा। उसके आने के बाद स्थिर होते वातावरण में फिर एक क्षणिक चंचलता आ गयी। थोडी देर के लिये ऑसुओ की पुनरावृत्ति भी हो उठी थी, दबती हुई यादें और बुझती हुई बातें फिर उभर पडी थी, यद्यपि वह स्थायी न थी। तैयारियों की व्यस्तता में मन की पीडा मन में ही सिमटकर रह गयी थी। रामू वैसे भी बहुत गम्भीर प्रवृत्ति का था।

रुपयो का प्रबन्ध नही हुआ था। आनन्द के पास जो रुपये थे, उन्ही से कार्य चला रहा था। कुछ रजन से माँग लिये थे। रामू के आने के बाद उसके दिमाग में एक बात आयी थी कि अगर कल दोपहर तक रुपये न आये तो वह उसी को भेज कर वकील साहब से रुपये मँगवा लेगा।

लेकिन अगर वह न मिले तो ?

'तब वह कृष्णप्रकाश को लिख देगा।'

'अगर वह भी न मिला तो ?...'

'खैर रजन ने तो कहा ही है। उसे आगे-पीछे देते रहेंगे।

दूसरे दिन तार से रुपये आगये थे। रंजना की माँ ने भेजे थे।'

आनन्द मन-ही-मन कृतज्ञता से भर उठा। एक उठता हुआ गुबार सँभाले, एक गहरी मनोव्यथा में डूबा हुआ, एक अवर्णनीय निरीहता का अनुभव करता हुआ वह काम में लीन हो गया।

तेरहीं के पहले, कुछ लोगो के आने जाने, कुछ व्यवस्था आदि करने की परेशानी और कुछ गॉव की स्थिति से उत्पन्न मानसिक उलझनो के कारण आनन्द मॉ की मृत्यु के विषय का वास्तविक आघात अनुभव नही कर पाया था। कल जबसे तेरही आदि सभी कृत्य समाप्त हो गये हैं, तब से रह-रह वह कुछ अन्य ही भावधारा में बह-बह जाता है।

'क्या मृत्यु इतनी समर्थ और शक्तिशाली है कि जीवन उसके समक्ष कोई अस्तित्व ही नही रखता ? क्या जीवन की सत्ता मृत्यु की कृपा-दृष्टि पर ही आधारित है ? मृत्यु की सीमा से निकलकर क्या जीवन पनप ही नहीं सकता है ? हमारे आँसू, हमारा प्यार, हमारा स्नेह क्या इतना मिथ्या और निर्जीव होता है कि मृत्यु जब चाहे हमारे प्रिय से प्रिय व्यक्ति को हमसे छीन ले और हम ऑखो में आँसू भरे उसको देखते रहे ? माना कि मृत्यु एक शाश्वत सत्य है, लेकिन क्या ऐसा नही हो सकता कि वह एक निश्चित उम्र के बाद ही लोगो को अपने मुँह का ग्रास बनाये।'' लेकिन अनिश्चितता ही तो मृत्यु का सर्वाधिक पैना अस्त्र है। अगर वह अस्त्र ही गोठिल हो गया तो उसका आतंक नही क्षीण हो जायगा ? ' तो जब जीवन में इतनी अनिश्चितता है, तब किसी महत्वाकाक्षा को जन्म ही क्यो दिया जाय ? क्योकि सम्भव है, उसकी उपलब्धि के कठिन प्रयास-काल मे ही मृत्यु मनुष्य को अपने क्रूर हाथो से, सिर के बाल पकड़ कर उठाले और उसे नचाकर अपने अधिकार की सीमा में चाहे जहाँ फेंक दे !'

आनन्द जितना ज्यादा सोचता, उतना ही वह मृत्यु की विभीषिका और जीवन की विडम्बना के प्रति भयभीत होता जाता। उसे लगता कि जब मृत्यु की शक्ति इतनी व्यापक और विशाल है तब सागर में एक बूँद से भी सैकडो गुना लघु मनुष्य के असंख्य क्रिया-कलापो का अर्थ ही क्या है, उनकी सोद्देश्यता ही क्या है ? जब अच्छे और बुरे दोनों प्रकार के आदमियो का, मृत्यु एक ही प्रकार से स्वागत करती है, तो आदर्शों और सत्कार्यों का क्या महत्व है ? माना कि सुकार्यों से, जब तक जीवन है, भले वह दो क्षण

जहाँ एक ओर मृत्यु के प्रति विश्वास और जीवन के प्रति अनास्था की भावना उसके मन को मथती, वही दूसरी ओर जीवन के प्रगाढ़ प्रेम और मृत्यु के प्रति उपेक्षा का भाव भी, उस अन्तर्मन्थन से फल-स्वरूप, उसकी चेतना पर नवनीत की भाँति उतरा उठता। जीवन की सार्थकता तो इसी में है कि मृत्यु का भय छोडकर जीवन से प्यार किया जाय। मृत्यु की सीमाएँ अनन्त दूरी तक अवश्य फैली हैं, लेकिन जीवन का यश तो वह शक्ति है, जिसके सामने विजयिनी मृत्यु भी घुटने टेक देती है। मनुष्य के विचारो और कर्मों की पवित्र, पावन और मंगल बेला वह होती है, जब ससार उसके विचारो के समक्ष स्वीकृति का सिर हिलाता है और उसके कार्यों की सराहना करते हुए उसे आदर्श मान बैठता है; लेकिन उस अवसर से भी महान अवसर वह होता है, जब उसकी आन्तरिक कल्याण-कारी शक्ति, उसके पथ की समस्त विघ्न बाधाओ को, उसके समस्त ऊहापोह को, उसके मन में उठनेवाले सारे वितर्क और वितण्डा को क्षार-क्षार कर देने के लिये प्रस्तुत हो जाती है। क्या मृत्यु की सत्ता के समक्ष जीवन की पराजय स्वीकार कर लेना प्रकृति का उपहास करना नही है? क्या अंधकार की तुलना में प्रकाश की अवहेलना कर देना श्रेयस्कर है? जीव अस्थायी है, माना, लेकिन जीवन का प्रसाद क्या अमर नही होता? महापुरुषो ने भी तो क्षणभंगुर ही जीवन पाया था; लेकिन मृत्यु की अँधेरी छाया के नीचे ही तो उन्होने अपनी अमरता की आलोक-रश्मि प्रज्वलित की थी। फिर वही क्यो निराश हो रहा है? वही क्यो एक प्रकार निष्क्रयताजन्य भावना को प्रश्रय देने चला है, जबकि जीवन क्रियाशीलता का ही पर्याय है। मनुष्य जीवन का मूल्य तभी आँक पाता है, जब मृत्यु जीवन को उससे छीनने की तैयारी करने लगती है; लेकिन जीवन का महत्व

इस स्थिति के आगमन के पूर्व भी तो समझा जा सकता है और महापुरुषो ने समझा भी था। मैं भी जीवन को मृत्यु का एक अभिशाप नही, वरदान समझकर ग्रहण करूँगा। हाँ, जीवन की अनिश्चितता एक भय नही, एक प्रेरणा है, जागरूक प्रहरी की सूचना, एक कर्तृत्व का अन्तः स्वर है कि सावधान! जितने अल्प समय में हो सके, अपना काम निपटा डालो, अपनी महत्वाकांक्षा को पूर्ण कर लो, अपने ध्येय की प्राप्ति करलो; नही तो मृत्यु अपने निस्तब्ध चरणो से तुम्हारी ओर लपकी चली आ रही है और जाने कब आक्रमण कर तुम्हारी साँसे तुमसे छीन ले। यह ठीक है; जीवन दो घडी का होता है, लेकिन किसी अनुभूति के लिए ये दो घडियाँ भी बहुत होती है।

जीवन के प्रति प्रेम की जलती ज्वाला के शुभ्र आलोक में काली, अँधेरी और कुरूप मृत्यु सहम उठी और बार-बार पीछे की ओर देखती और अपमान के प्रतिकार की भावना से दशित होती हुई दूर जा खड़ी हुई। आनन्द को लगा कि वह निर्भय हो गया है, जीवन और मृत्यु के जटिल मनोमंथन से छुटकारा पा गया है और सामने के रास्ते पर उजाला ही उजाला फैल गया है।

तेरही के तीसरे दिन उसने गॉव भर के पढे-लिखे और कुछ करने के योग्य लोगो को रजन के कमरे में एकत्र किया और अपनी सारी बाते उनके सामने रखी। जो कठिनाइयाँ थी उनके निवारण के सरल उपाय भी बताये। जैसे लोगो ने कहा—"वाचनालय अगर रामलाल के यहाँ से उठवा भी लेंगे और जबरदस्ती उनसे हिसाब-किताब भी करा लें तो उसे कहाँ ले जायेंगे।"

"मेरा बाहर का कमरा खाली रहता है, उसी में ले आओ। मैं शिवा से भी कह दूँगा, वह वही पुस्तकालय खोलकर सुबह-शाम पढा करेगा।"

फिर दो-तीन छोटी-छोटी समितियाँ बनायी गयी और गॉव की सफाई, गॉव की शिक्षा, और गॉव में सम्मिलित पर्व मनाने की योजनाएँ बनने लगी।

आनन्द ने यह भी कहा—"मैं जानता हूँ कि इस प्रकार की बैठकें पहले भी हुई हैं, समितियॉ भी बनी हैं और अच्छी खासी योजनाओ की रूपरेखाएँ भी निर्धारित की गयी हैं; लेकिन पर्याप्त उत्साह और कार्य करने की लगन के अभाव में वह सब व्यर्थ हो जाता रहा है। हर एक काम करने के प्रारम्भ में एक उत्साह होता है, जो शीघ्र ही मन्द पडने लगता है, यह मैं जानता हूँ। मैं यह भी जानता हूँ कि लोगो को अपनी-अपनी मुसीबतो और अपने अपने कामो से छुट्टी नही मिलती होगी; लेकिन इतनी बात तो ध्रुव सत्य है कि अपने गॉव और गाँववालो के प्रति जरा सी भावना भी यदि उनके मनो में उठती रहे, तो कोई कारण नही कि गॉव की तरक्की धीरे-धीरे न होती रहे। कोई भी व्यक्ति चार-छै घण्टे रोज गॉव की उन्नति के लिये नही दे सकता; पर आधा घण्टा तो दे ही सकता है, जो किसी भी दृष्टि से कम नही है। रह गयी गाँव के बडे-बूढ़े तथा अन्य सम्पन्न लोगो के सहयोग की बात, उसकी चिन्ता करने और उसका मुँह ताकने से कुछ नही होगा। तुम काम करोगे तो चार दिन बाद वे स्वय ही आकर तुम्हारे कन्धे से कन्धा मिला देंगे।"

बाते सब उसी प्रकार की हुई, जैसी हर स्थान में कोई अच्छा पर लम्बा काम करने के विचार से बुलाई गई बैठको में होती हैं। बातें करने, योजनाएँ बनाने और स्वप्न देखने से कभी भी कार्य सम्पन्न नही हुआ करते। ऐसी बैठको में अत्यधिक उत्साह का प्रदर्शन किया जाता है, बडी-बडी बातें की जाती हैं और बडी-से-बडी कठिनाई का तत्काल ही हल भी उपस्थित कर दिया जाता है। लेकिन कक्ष के बाहर निकलते ही, जैसे भरे हुए गुब्बारे में छेद हो जाने पर सूँ-सूॅ कर हवा निकल जाती है, उसी तरह दो क्षण पूर्व कही-सुनी सारी बातो का प्रभाव भी उडने लगता है और बैठक का भविष्य तत्क्षण ही धुऑ हो जाता है।

आनन्द ने प्रारम्भ में अत्यधिक भावुकता और मर्मस्पर्शी ढँग से अपनी बाते कही थी, जिनके प्रभाव का स्पष्ट आभास भी उसे मिला था; लेकिन इस

प्रकार के प्रभाव का क्या भविष्य होता है, यह उससे छिपा नही था। चूंकि रजन, जगदम्बा, श्रीराम, ज्वाला आदि के कर्मठ स्वभाव से वह परिचित था, इसलिये वह थोडा सा आश्वस्त था। इलाहाबाद की तैयारी करते समय, अपनी जगाई हुई रोशनी की किरण के प्रति, उसमें आशा की झलक थी।

आनन्द इलाहाबाद बहुत ही भारी मन लेकर आया। शान्ति ने माया को ले जाने की बात दबे मन से की थी। बाद में बापू भी माया से घर पर ही रहने को कहने लगे। उनका कहना भी ठीक था; क्योंकि शिवा की हाई स्कूल की परीक्षा निकट आ रही थी और वह सोचते थे कि शिवा क्या-क्या काम करेगा। माया ने भी दो-एक बार यही रहने की इच्छा प्रकट की थी, लेकिन आनन्द न तो शान्ति की बात स्वीकार कर सका, न माया की बात पर ही राजी हुआ और न बापू की इच्छा ही रख सका। वह किसी भाँति माया को घर पर अकेले छोडने के पक्ष में नही था। रामू की भी यही इच्छा थी कि अगर उसे इलाहाबाद ले जाया जा सके तो अच्छा ही है। अतः आनन्द उसको लेकर इलाहाबाद चला आया।

आनन्द जब बँगले पर पहुँचा, तो उस समय रानी ड्राइंग रूम में ही आरामकुर्सी पर लेटे-लेटे कोई पुस्तक पढ़ रही थी। रिक्शे की आवाज पर उसका ध्यान आकर्षित हुआ।

—उँह, होगे कोई, पापा के मिलनेवाले। भरोस तो बाहर है ही, वही जवाब दे देगा, नहो तो यहो चले आयेगे। कौन उठे!

लेकिन जब आनन्द ने भरोस को बुलाया, तो वह चौंककर उठ खडी हुई। बाहर आयी तो आनन्द नहीं था; वह पिछवाडे भरोस को देखने गया था। रिक्शावाला सामान उतारकर रख रहा था। एक नवयौवना बालिका-सर ढके और गले के पास धोती पकडे गुम-सुम खडी थी; चकित-सी, शंकित-सी। किसी अनजानी, अपरिचित जगह पर आने के विपुल भाव, उसके

मुँह पर आ-जा रहे थे। रानी के चप्पल की पद-ध्वनि पर चौंककर उसने मुँह घुमाया और रानी को देखते ही हाथ जोड़कर 'नमस्ते' की।

रानी ने भी नमस्ते में उत्तर दिया। उसे उस बालिका का भोलापन, उसके हाथ जोड़ने का ढंग और उसके नमस्ते कहने का प्रकार बहुत ही अच्छा लगा। तत्काल उसके मन में प्रश्न उठा कि यह है कौन? मुखाकृति तो आनन्द जैसी ही है। देह से लम्बी, छरहरी, गोल गोरामुख, पतले गुलाबी अधर, जो अब सूख रहे हैं। बड़ी-बड़ी आँखें, जिनका काजल फैल रहा है और चकित हरिणी की सी चञ्चल पुतलियाँ।

रानी ने लक्ष्य किया कि बालिका की दृष्टि में कुतूहल और विकलता का मिश्रण है।

रिक्शावाला वापस जाने लगा तो रानी ने पूछा—"पैसे मिल गये?"

"जी, मिल गये?" कहकर रिक्शावाला चला गया।

"मास्टर साहब कहाँ गये?"

बालिका ने कुछ जवाब नही दिया। उसके चेहरे पर संकोच दौड़ गया, आँखो में उलझन बढ़ गयी। वह नीचे देखने लगी।

"मैने पूछा, आनन्द जी कहाँ गये?"

"भैया! भैया उधर गये हैं।" उसने घूमकर बायी ओर इशारा किया।

"तो तुम माया हो! मैं अब समझी।"

माया की आँखो में चमक आ गयी। उसने सिर हिलाकर स्वीकृति दी।

"वाह" रानी ने लपककर उसकी पीठ पर हाथ रखकर प्यार से उसे बाहु मे भर लिया। फिर कहा—"यह संकोच क्यो? आओ, चलो।"

माया ठिठकी।

"चलो ना? अन्दर अम्मा हैं, और कोई नही।"

माया चल दी।

अन्दर रानी-माँ अभी खाना खाकर उठी थी और पानदान खोले बैठी ही थी कि माया को लिये रानी जा पहुँची। माया ने प्रणाम किया। माँ ने आशीर्वाद दिया और रानी की ओर प्रश्न भरी दृष्टि उठायी।

"माँ! ये मास्टर साहब की बहिन है; माया।"

"अच्छा-अच्छा। तो आनन्द आ गया? आओ बैठो बेटी। रानी, दोनो रातभर के थके-माँदे आये हैं। कुछ पानी-वानी का प्रबन्ध करो। महाराजिन तो चली गयी। तुम्ही कुछ बना न दो जल्दी से।"

"नही अम्मा, पूडियाँ हैं मेरे पास डोलची में।" माया ने धीरे से कहा।

"तब ठीक है। आनन्द न जाने क्या कर रहा है बाहर। उसे बुलाओ तो ज़रा।"

तब तक आनन्द स्वयं आ पहुँचा। रानी-अम्मा बोली—"आओ बेटा उस दिन तुम्हारी चिट्ठी आयी थी। वकील साहब बडे दुखी रहे दिन भर, शाम को तो खाया भी नही। कई बार तुम्हारी चर्चा की थी। बोर्ड की बैठक में गये हैं। वैसे वह शाम तक चलेगी, लेकिन दोपहर में आने को कह गये थे, खाना भी नही खाकर गये। 'बहिन को लेते आये, चलो अच्छा किया। वहाँ कहाँ अकेले रहती, फिर सयानी लडकी के लिये ठीक भी नही था।"

"यही सोचकर तो लेता आया माता जी।"

रानी की माँ धीरे स्वरो में बोली—"यह तुमने ठीक किया।"

आनन्द ने बैठे-बैठे पैन्ट के भीतर से कमीज़ निकालते हुए कहा—"रानी, महेश का कोई पत्र आया था? उसे तो अब तक आ जाना चाहिये था।"

११

रंजना को जब आनन्द का पत्र मिला था, तब वह एक बार सिहरकर रह गई थी। उसने बहुत सोचना चाहा था कि आखिर क्या सोचकर आनन्द ने ऐसा पत्र लिखा है। वह कुछ समझ नही सकी थी। जब आनन्द नही आया था, तब वह यह भी सोचती थी कि वही चलकर क्यो न मिल आये। माया को भी देख लेगी; लेकिन फिर जा नही सकी। घर में जो बातें चल रही थी; आनन्द अपने विषय में जो बातें बताया करता था, उसे वह बहुत ही अस्थिर हो गयी थी। वह सुनती कुछ और थी और सोचने कुछ और लगती थी।

—आज वह और आनन्द इतने निकट आ गये है कि उनमे हर तरह की बातें होती हैं, हास्य-व्यंग भी कम नही होता। बातचीत के दौरान में कभी वातावरण बहुत भारी भी हो जाता रहा है और कभी बहुत ही रंगीन, मादक, किसी अनदेखी, अनसमझी अकुलाहट और मधुर बेचैनी से भी जी भर उटता रहा है। ऐसे कितने ही क्षणो में आनन्द उसके हाथ की अँगुलियाँ चटकाता-चटकाता, चुप होकर जाने क्या सोचने लगता था, तब वह मौनविचारणा उसे कितनी भारी लगने लगती थी!

ऐसे क्षणो में दो-एक बार आनन्द सोफ़े पर लुढककर, सिरहाने तकिया लगाकर बात करता रहा है और एकाएक उसके हाथ की हथेली अपने मत्थे पर रखकर दबा लेता रहा है। ऐसे अवसरो पर उसने बहुत अच्छी तरह अनुभव किया है कि एक गुदगुदी, एक सिहरन, एक हिचक, एक पुलक; उसके पैरो से सर तक दौड गयी है; उसके भीतर कुछ गाँठें सी खुलती चली गयी हैं; एक बेहोशी-सी छाती चली गयी है। अपने को आनन्द से परे हटा

लेने की बात मन में सोचती हुई भी, वह अपने को शक्तिहीन, बेबस और कमजोर महसूस करने लगती थी। वह एक संकोच, बढी हुई हृदय की धड़कन, एक लज्जा और कुछ अच्छा-अच्छा-सा लगनेवाले डर में लिपटती चली गयी है। मन जाने कैसा होता गया है। किसी अशांत भावना से उसके बालों में वह अपनी अँगुलियो से जल्दी-जल्दी जब-तब कुछ लिख ऐसा देती रही है। तब आनन्द बालो के ऊपर से उसका हाथ पकड कर अपने गालो पर रख लेता और उठ बैठता था। घण्टे-दो-घण्टे के बाद आये ऐसे दो-तीन मिनट बाद में उसे इतना सोचने पर विवश कर देते रहे हैं कि वह घण्टों उन्हीं क्षणो में खोयी रही है।

इतना होने पर भी उनमे खुलकर कभी अपने सम्बन्ध में बातें नहीं हुईं। आज तक कभी किसी ने एक दूसरे से सम्बन्धित, अपने मन की बात नही कही। फिर भी वे कितना निकट आकर एक दूसरे के मन में उतर गये हैं। उसने दो एक बार चाहा भी कि वह आनन्द से कुछ कहे, लेकिन कह नही सकी। —'क्या कहूँ ? कैसे कहूँ ? आनन्द क्या सोचेगा ?, और बात खतम हो जाती। आनन्द जब किसी उलझन में होता, किसी परेशानी में होता, कही दौड धूमकर थका-माँदा प्रतीत होता और तभी कही साक्षात्कार हो जाता या वह स्वय उसके घर आ जाता, तब ज़रूर कुछ कह जाता था। ऐसे क्षणो मे वह अँगूठा दायीं कनपटी पर रखकर और बीच की अँगुली से बीच मत्थे में बार-बार आडी रेखाएँ खीचता हुआ, आँख बन्द कर बात कहता रहा है। जैसे किसी बहुत ही भारी फोडे का आपरेशन करा रहा हो और असह्य पीडा को धीरे-धीरे अभिव्यक्ति दे रहा हो। बात समाप्त कर आनन्द बहुत ही तीव्र दृष्टि उसके मुख पर गड़ा देता रहा है। लेकिन इन सारी बातों में वह तत्व कभी स्पष्ट नही उभरा, जो वह चाहती थी, जिसे वह आनन्द के मुख से सुनना चाहती थी। केवल एक वाक्य, भले ही वह अब बहुत ही हल्का और सस्ता क्यों न हो गया हो। फिर वह कभी-कभी अपने आपको समझाने लगती—'जब आनन्द दुनिया भर की बात उससे कह डालता है

मन की रत्ती-रत्ती बात नही छिपाता, तो सब कुछ कहने के बाद अगर केवल एक वाक्य नही कहता, तो जाने दो। चिन्ता की इसमें क्या बात है?"

रंजना यह भी अच्छी तरह जानती थी कि आनन्द दुनिया भर में बहक ले, लेकिन उसके सामने उसे अक्सर चुप ही होना पडा है। यह ठीक है कि उसको उसने कितनी ही बार नाराज किया है; कितनी ही बार उसने रुष्ट होने का अभिनय किया है। तब आनन्द ने उसे बच्चो की तरह मनाया है, जैसे कोई रोने वाले बच्चे से कहे—'नही! नही! रोओ मत। लो मुझे मार लो।' या वह खुद ही रोने लगे और बच्चा चकित हो, रोना भूल कर, उसकी ओर देखने लगे।

लेकिन अब ' ! राज इधर दिन भर यही सब सोचा करती थी। जाने-अनजाने, उसने कुछ सपने सँजो लिये थे, कुछ महत्वाकाक्षाओ को जन्म दे लिया था। कुछ कामनाओ ने उसके मन में घर कर लिया था और आनन्द इनमें से हर एक में कही-न-कही घूम फिर जाता था। फिर भी एक आशंका से उद्गीर्ण हो-होकर वह सोचने लगती—'जब आनन्द की महत्वा-कांक्षा ही बिखर जायगी तो उसकी अपनी आकाक्षाओ का आधार कहाँ रहेगा?'

इधर रंजना ने विश्व-विद्यालय जाना बन्द कर दिया था। सहेलियों के यहाँ वह खूब घूमा करती थी। अक्सर रानी आ जाती थी। —'ओः कितना परेशान करती है। एम० ए० में पढ़ती है, लेकिन बातें ऐसी कि थोड़ा भी समझदार बच्चा नही करेगा। मुझसे दीदी-दीदी करती है, आनन्द से मास्टर साहब, लेकिन मजाक करते हुए जरा भी संकोच नही होता!'

कमरे में कुर्सी पर बैठी-बैठी विचारमग्ना रंजना अपने आपसे अकेली बातें कर रही थी।

—आनन्द यह तुम्हे आजकल क्या होता जा रहा है? माँ के मरने की वेदना किसे नही होती? क्या मैं नहीं जानती कि उनकी मृत्यु के बाद

बाद तुम्हारे जीवन में कितना उथल-पुथल हो गया है। तुम जिस दिन आये, मैं बाहर गयी हुई थी। अम्मा से तुमने एक-एक बात बतायी। विदित हुआ कि बहुत सारा बोझ तुम्हारे ऊपर आ गया है। पर आनन्द! मुझे तो कुछ ऐसा प्रतीत होता है कि जितना आया नही उसमे कही अधिक तुम समझ रहे हो? क्या मै इसे नही जानती, नही समझती? लेकिन जरा यह तो बताओ, तुम्हारे मन मे क्या है आनन्द? तुम बात कर रहे थे। मैं आयी, बैठ गयी। थोडी देर बातें होती रही, फिर अम्मा उठकर भीतर गयीं। हाय मैं कितनी प्रतीक्षा में थी कि तुम मुझसे कुछ कहोगे! उत्तर में मैं कहूँगी कि तुम घबडाते क्यो हो, मैं जो तुम्हारे साथ हूँ। अपने भार में मुझे साझीदार बना लेना। कदाचित तुम्हारी पीडा बाँटकर, तुम्हारे बोझ में हाथ बटाकर, तुम्हारी उलझनो मे कुछ को सुलझाने का दायित्व लेकर ही मै शक्ति पालूँ, साहस संचय कर लूँ और तुम्हारी साँसो पर अपने सपनो का जाल फैला सकूँ। लेकिन तुमने कुछ भी तो नही कहा!...करीब दो मिनट की चुप्पी के बाद तुमने मौन तोडा था।

राज, तुम्हारे रुपये ठीक समय पर मिल गये थे। मैं आजीवन ऋणी रहूँगा। सच कहता हूँ, कभी नही भूलूँगा इस उपकार को।

"मैने सिर उठाकर तुम्हे ध्यान से देखा था।"

हाँ राज, मै सच कहता हूँ, अगर तुम्हारे रुपये न मिलते तो मुझे बडी परेशानी उठानी पड़ती। खैर, मै कोशिश करूँगा कि जल्दी लौटा दूँ, पर अगर देर भी हो जाय तो धैर्य्य तो रखोगी न?

तो तुम्हे यही सब बाते करनी हैं आनन्द? कोई दूसरी बात नहीं है तुम्हारे पास? मै बडी मुश्किल से कह पायी थी।

नही राज, तुमसे क्या छिपाना? मै आजकल बिलकुल अस्त-व्यस्त हूँ। कुछ सूझता ही नही। माया को यहाँ ले आया हूँ, तुमको पता ही होगा। अब अगर वह यहाँ आ गयी है, तो उसकी पढ़ाई का भी कुछ प्रबन्ध होना चाहिये।

'माया को हमारे यहाँ कर दीजिये। एक से दो रहेंगे, अम्मा को भी अच्छा लगेगा।' मैंने कहा था।

"माया अकेले की तो बात नही है और भी तो पच्चीसो समस्याएँ है राज। कहाँ तक सुलझाने को सोचोगी ?"

—इस पर मैं चुप रही। क्या जवाब देती ? जल्दी कोई उत्तर अवश्य देना चाहती थी, लेकिन समझ मे ही नही आया कि क्या कहूँ।

'तब तक तुम कुर्सी से उठकर पास आ गये और बोले—"अच्छा राज, एक बात बताओ, मित्रता और आत्मीयता के स्थायित्व के लिये सानिध्य और सामीप्य बहुत आवश्यक है क्या ?"

मै एकाएक कुछ नही समझ सकी थी। शायद तुम पहले से ही सब सोचकर आये थे। "नही तो।" मेरे मुँह से निकल गया था।

"राज !" केवल सम्बोधन के भीतर से तुम कुछ कहना चाहते थे।

"जी, कहिये" मै बेबस सी हो गयी थी। न जाने अब क्या कहोगे।"

"कुछ नही।" और तुम खड़े हो गये थे। मुझे स्पष्ट जान पडा था, तुम कुछ कहते-कहते रुक गये हो।

"बैठियेगा नही ?" जाने कैसे मेरे मुँह से निकल पाया था।

"नही, काफ़ी देर हुई। एक सज्जन से अभी मिलना है।" और कथन के साथ तुम चले गये थे। मैं दरवाज़े तक साथ आयी थी। तुमने जीवन में पहली बार मेरे कन्धे इस तरह थपथपाये थे और फिर मेरे गाल पर हल्की चपत लगाकर कहा था—"राज, मैं गलती भी करूँ, मैं नालायक भी हो जाऊँ, पर तुम कभी कोई पागलपन मत करना। समझी ?" तुम्हारा स्वर भरा-भरा था। तुमने जल्दी से मुँह मोड लिया था और तुम साइकिल पर बैठ गये थे। मैंने चिल्लाकर तुम्हें रोकना चाहा था। लेकिन तब तक तुम फाटक के बाहर हो चुके थे। उस क्षण मैंने स्पष्ट देखा था कि तुम पैण्ट की जेब से रूमाल निकाल रहे हो!'

और आज दस दिन हो गये, तुम नही आये। कल रानी आयी। वह बता रही थी कि उसने मेरे बारे में कुछ हँसी की और तुमने उत्तर नही दिया। उसने दुबारा कुछ कहा। तुमने डाँट दिया—"यही सब परीक्षा में लिखना है क्या?" वह बेचारी रोनी-सी हो गयी थी। माया की कितनी बडाई करती थी। कितनी हँसमुख और फुर्तीली है। सुन्दरता की तो प्रशसा करते थकती ही न थी। कहती थी—"बडी होने पर बिल्कुल तुम्हारे जैसी होगी, एक सूत भी घटकर नही। बढ़ चाहे भले जाय।'

कह तो दिया है, शायद अब की बार आये तो माया को साथ ले आये। लेकिन आनन्द, यह बात क्या है कि मुझे अब तुम पर आशंका होने लगी है?

अन्दर से माँ के सिलाई मशीन चलाने की आवाज आ रही थी। रंजना ने हाथ की सलाई रोक दी और सलाई ऊन के गोले में खोस कर गोला रख दिया। पैर तानकर एक अँगड़ाई ली और उठकर बाहर निकल आयी।

सध्या की लालिमा धीरे-धीरे क्षितिज पर मुस्कराने लगी थी और आसमान मे धुनी हुई रगीन रुई के ढेर फैल गये थे। इस बार सरदी कुछ पहले से ही ज्यादा पडने लगी थी। बाहर आकर वह बरामदे की सीढियो पर ही बैठ गयी। बैठी-बैठी कुछ सोचती रही और 'सगीत-समिति' तक अम्मा के न चलने पर कुछ खीझती भी रही। फिर जाँघ पर साडी फैलाकर एक अँगुली से लिखती रही—आनन्द''''माया' रानी '' रंजना '''आनन्द। अँग्रेजी मे ए० एन० ए० एन० डी० ए०। ' ऐं, फाटक फिर खुला है! मंगल से इतनी बार कहा, लेकिन ' '।

एकायक वह उठी। चलकर अम्मा से एक बार और साफ-साफ कहती हूँ। सोचती हुई रंजना गुलाब की क्यारियो की ओर बढी। एक श्वेत गुलाब को उसने क्षण भर अपलक देखा, फिर हाथ बढ़ाकर तोड लिया। पहले उसे सूँघा, फिर वेणी में खोसती हुई, अन्दर जाने को बढी। सीढ़ी

पर पैर रखा ही था, और गुलाब खोसने वाले हाथ अभी वेणी पर ही थे, कि फाटक के अन्दर कार आने की आवाज़ आयी। उसने घूमकर देखा; गाडी में आनन्द था। अचानक गुलाब का वह फूल उसके हाथ से गिर गया। वह आनन्द की ओर देखने लगी।

गाडी से उतर कर आनन्द पास आया। उसने गिरा हुआ फूल उठाकर कह दिया—"लो, लगा लो।"

"रहने दीजिये।" वह सीढ़ियाँ चढने लगी।

"लगा लो, लगा लो राज, नही तो फूल अलग मुझसे अप्रसन्न और काली घटाएँ अलग।

"और मेरे अप्रसन्न होने का डर नही? उसने कहा और वह दरवाजे के पास रुक गयी।

"सबसे ज्यादा तो उसी की चिन्ता है" और उसने पीछे पहुँचते ही फूल उसकी वेणी में खोस दिया।

रंजना जानती है कि इसके पहले भी आनन्द ने दो-एक बार फूल उसके बालो में खोस दिया है, उसके बाद आनन्द हमेशा उसे एक बार सूँघता भी रहा है और जब–जब ऐसा हुआ है तब–तब उसे यही लगता रहा है कि वह स्वयं एक सुगन्धि होती जा रही है; परिमल के साथ वह भी गन्धवाह पर उड़ी जा रही, है किन्तु आज उसे पीछे खड़े आनन्द के फूल सूँघने का कोई आभास नही मिला। फलतः उसने पीछे घूमकर देखा। आनन्द चुपचाप खडा एकटक उसी की ओर देख रहा था। और तभी स्तब्ध और मौन वह आगे बढ़ गयी।

आनन्द के आगे-आगे चलती हुई रंजना अपने कमरे की ओर मुड़ गयी और आनन्द आगे बढ़ गया क्योंकि सिलाई-मशीन चलने की ध्वनि से वह जान गया था कि मशीन मौसी चला रही हैं और वे कहाँ हैं। वह मौसी के सामने

जाकर प्रणाम करके चटाई पर ही बैठ गया। आशीर्वाद देती हुई वह बोली—"आओ बैठो आनन्द, अरे उसपर क्यों बैठते हो, वह कुर्सी ले लो ना।"

"नही ठीक है मौसी।"

"राज मिली? आज सगीत समिति में कहाँ के लोग आये हैं? उन्ही का कुछ कार्य-क्रम है। राज दो घन्टे से तैयार बैठी है, लेकिन भई, मै तो न जा सकी। मैंने साफ कह दिया था कि मैं नही जा सकूँगी। लेकिन उसकी समझ में जब आये, तब तो।"

तब तक रंजना भी आ गयी। उसने दोनो को बाते करते सुना तो वह ऑगन के खम्भे से टिककर खडी हो गयी।

"ये लो, रानी जी आ भी गईं। आनन्द! जरा इसका मुँह तो देखो। अजीब बच्चो को सी ज़िद है। अरे, मुँह लटकाये खडी रहोगी कि कुछ पानी-वानी भी पिलाओगी। हॉ, तुम अपनी बात बताओ आनन्द।"

रंजना चुपचाप वहॉ से हट गयी।

जब लौटकर आयी तो आनन्द कह रहा था 'विदेश मन्त्रालय में काम मिला है। "मौसी क्या करूँ? परिस्थिति ही ऐसी है कि जाना पड़ रहा है। वकोल साहब ने बडा प्रयत्न किया है। अब टाला नही जा सकता। वही खुद कह रहे थे कि करलो आनन्द, अभी ढाई सौ देते हैं फिर आगे कुछ और देंगे ही। तब तक नरेन्द्र से भी पत्र लिखकर पूँछता हूँ कि क्या देर है, उसकी बात मे। मैने भी यही ठीक समझा है।

"तो कब तक दिल्ली जावोगे?"

"आज कौन तारीख है दस न? अठारह को पहुँच जाना है।"

"रहने का क्या प्रबन्ध है वहॉ?"

"अभी तो कुछ नही, वही कही देखूँगा।"

"तो कामेश्वर के यहॉ रुक जाना थोडे दिन।"

"हाँ, यह तो आपने बडी अच्छी बात बताई।"

"लो पानी पियो।" रंजना के प्लेट रखते ही, उसकी माँ ने कहा।

"तुम भी खाओ राज !"

"नही। आप ही खाइये।"

"आनन्द ! तुम एक काम करो। गाडी लेकर आये हो न ? इसे अपने यहाँ लेते जाओ। रानी के साथ चली जायेगी। एक से दो रहेगी, अपना देख भी आयेगी, लेकिन लौटती बार ?"

"भरोस छोड जायेगा।"

"देर हुई तो मै मौसी के यहाँ रुक जाऊँगी। फिर कल सबेरे आ जाऊँगी।"

"नही यह सब ठीक नही है। रात में कही रुकना-उकना नही है, समझी ? भरोस के साथ चली आना।" मौसी ने कहा।

"अच्छा" राज ने उत्तर दिया।

"तो तैयार हो। शाल भी लेती जाना। सरदी पडने लगी है।"

यद्यपि रजना तैयार थी, फिर भी वह अन्दर कमरे में चली गयी। तब तक आनन्द भी बात खतम कर उठ खडा हुआ। मौसी ने उसके चलते-चलते कहा—"बहिन से कह देना कल आऊँगी।"

"अच्छा" कहता हुआ आनन्द बाहर आया। गाडी पर वह बैठा ही था कि रंजना आ गयी।

"बैठो" आनन्द ने कहा।

राज पीछे बैठ गयी। आनन्द ने गाडी स्टार्ट की।

गाडी फाटक से बाहर निकल कर, सीधी चलती हुई जब पहली बार

मुडी तो रंजना ने आगे झुककर आनन्द से कहा—"रानी के यहाँ मैं नहीं जाऊँगी।"

"फिर कहाँ जाओगी ? संगीतसमिति ?"

"नही, वहाँ भी नही ..."

आनन्द ने अपने कन्धे पर रखा हुआ राज का हाथ पकडकर, धीरे से अलग हटाते हुए कहा—"क्या मतलब ? आखिर चलोगी कहाँ ?"

"कही भी। कही भी ले चलो मुझे।"

"फिर घर चलो।" आनन्द ने गाडी धीमी करते हुए कहा।

"नही। तुम मुझे समझते क्यो नही, आनन्द ? मैं सदा सीमाओ में घिरी रहकर पिस जाऊँगी—घुट जाऊँगी।"

रंजना ने आनन्द की बाँह मुट्ठी में भीचते हुए उसे झकझोर देने की कोशिश की।

"राज !" आनन्द ने गाडी रोकते हुए कहा—"मैं समझता हूँ तुम्हें घर लौट चलना चाहिये।"

रंजना पीछेवाली सीट से उठकर आगे आनन्द के बगल में आ बैठी और बोली—"तुम्हे हो क्या गया है ?"

"कुछ तो नही।"

"फिर गाड़ी बढ़ाते क्यो नही ? नहीं तो हटो, मैं ड्राइव करूँ।

"चलूँ कहाँ ?" झुँझलाकर आनन्द ने कहा।

"जहन्नुम में। हिम्मत है ?"

"रास्ता बताती जाना" लाचार आनन्द ने गाडी स्टार्ट की, मोड़ी; फिर वह उड़ चला।

"पेट्रौल है ?"

"अभी भराया है।"

"तो बस सीधे चलो।"

इलाहाबाद-कानपुररोड पर जब गाडी तीव्र गति से आगे फिसलती चली जा रही थी, तब आसमान से धूप-छाँही आलोक झर रहा था। वीरान सडक पर लम्बी, काली गाडी आगे बढी जा रही थी। अब बस्ती पीछे काफ़ी छूट चुकी थी। सडक के अगल-बगल खेतो पर उदासी फैल गयी थी और पौधो की नोको पर नीरवता ने अपना आसन जमा लिया था।

रंजना ने आनन्द के कन्धे पर हाथ रखा, फिर हाथ पर सिर रखा।

"अच्छा आनन्द, असह्य पीडा से तो मृत्यु अच्छी होती है न?"

"मेरे मन में भी कई बार आया है राज कि तुमसे यही प्रश्न करूँ। और आज भी अभी मैं भी यही पूछने वाला था।" आनन्द ने सामने देखते हुए कहा।

"और ऐसी स्थिति मे जहर दे देना पाप भी नही होता होगा आनन्द?"

"नही। लेकिन लोगो मे इतनी हिम्मत कहाँ होती है।"

"तुम मुझे दे सकते हो?"

आनन्द ने चौंककर देखा। वह रंजना के मुख पर कही कोई भाव नही पा सका। वह जैसे हँस रही थी।

"मरने वाले से जहर का स्वाद नही पूछा जाता राज।"

"क्या मतलब?"

"मतलब यह कि तुम्हें पाने की हार्दिक आकाक्षा और वर्तमान स्थितियो में तुम्हें खो देने की पूरी सम्भावनाएँ। इससे भी ज्यादा कोई जहरीली घुटन हो सकती है, मैं नहीं सोच सकता।"

"मुझे खो देने की सम्भावनाएँ! यह तुम कह क्या रहे हो!!"

"काश, मैं तुमसे कुछ छिपा सकता।"

"आनन्द ! आनन्द ! ऐसा मत कहो। मैं तुम्हारी हूँ। समूची, सदेह, सआत्मा तुम्हारी हूँ। तुम मुझे जिस तरह चाहो ग्रहण करो, चाहे एकबार सदा-सदा के लिए मुझे आत्मसात कर लो। बस, मुझ पर अपने विश्वास का प्रकाश भर बिखराते रहो आनन्द ! मैं कभी भी पथभ्रष्ट नही होऊँगी।"

कथन के साथ ही रंजना अपनी सीट से उचककर आनन्द के ऊपर जा रही। उसे ध्यान नही रहा कि आनन्द कार ड्राइव कर रहा है। कही कोई दुर्घटना हो गयी तो ... ?

"हो, भगवान करे किसी पेड से टकराजाये। और आनन्द के ऊपर बिखरते-बिखरते उसके अधरो पर एक ज्योति सी चमकने लगी।

हडबडाकर आनन्द ने कार रोक दी। रंजना के इस तरह गिरने पर वह कार सँभाल नही पा रहा था। फिर भी किसी प्रकार उसे रोककर, आनन्द ने राज को अलग हटाया। पर तब तक उसकी सिसकियाँ जोर पकड चुकी थी। वह नीचे उतरा, घूमकर रंजना की ओर गया, दरवाजा खोलकर उसे नीचे उतारा और सहारा देकर सामने पुल की ओर बढ़ गया। पुल की मुडेर पर पहुँच कर उसने रंजना को बिठाया और स्वयं वह उसके पार्श्व में बैठ गया। रंजना सँभल नही रही थी, इसलिये वह उसे अपनी बाँह का सहारा दिये बैठाये रहा।

"राज, तुम मेरे मन की स्थिति नही समझती।"

"यही तो बात है आनन्द ..!" राज ने उसका सहारा छोड देने का हल्का सा प्रयास किया।

"मैंने हरदम तुम्हें समझने और अपने को, तुम्हें समझाने की कोशिश की है; लेकिन एक तुम हो, जिसने कभी एक दिन भी, मुझे समझने का प्रयत्न नही किया। एक दिन भी, अगर तुम मेरे मन की बात जानने की कोशिश करते, तो शायद मुझे कुछ तो संतोष हो जाता और फिर तुम भी वह सब नही सोचते, जो आज सोच रहे हो ... ...।"

"क्या सोच रहा हूँ ?"

"यही कि निर्वाह कैसे होगा यही न ?"

"अच्छा मान लो यही सोचता हूँ तो!" आनन्द ने बीच में ही बात काट दी।

"आनन्द, विलय से पूर्व कोई जान सका है कि उसमें वेदना होगी या उन्माद ? व्यामोह होगा या वितृष्णा का विनियोग। फिर जब ऐसा अवसर आयेगा, तब उसे भी देख लेंगे। लेकिन अभी से यह उदासी, यह उपेक्षा ! क्या अर्थ है इसके ? स्पष्ट कहो न ?"

"क्या कहूँ ? तुम ऐसा कहती हो, तो मन में एक उजाला सा फैलता जाता है, लेकिन वह इतना सुखद, इतना सुन्दर है राज, कि मात्र उसके क्षीण होने की कल्पना से घुँटन होने लगती है।"

राज ने आनन्द की बॉह पर अँगुली गडाते और एक-आध रेखा खीचते हुए कहा—"तो तुम ऐसा सोचते ही क्यो हो ? मुझ पर विश्वास नही रहा क्या ?" कह कर उसने आनन्द की ओर मुँह उठाया।

"विश्वास है, तभी तो टीस होती है मन में। नही तो, एक सॉस लेकर रह जाता और बस, सब खतम।"

रंजना को लगा, आनन्द का बाहुपाश उसे अन्दर-ही-अन्दर कस गया है।

"जो सामने आये निश्चिन्त होकर झेलो। मैं तुम्हारे साथ हूँ आनन्द। रही प्रतीक्षा करने की बात, मैं अभी इतनी कमजोर नही हूँ। हॉ, अगर तुम मुझे समझने की चेष्टा करो और मुझे कमजोर न बना दो तो ......। मेरी ओर देखो आनन्द।"

"राज ...!" आनन्द ने राज को एक बारगी कस लिया, उसके जलते अधर अपने गर्म होठो में रखकर मसल दिये। फलतः स्वप्नाविष्ट सी रंजना आनन्द के बाहुपाश में जा रही।

किसी के द्वारा फेंककर मारा हुआ जादू का एक मंत्र आनन्द के ऊपर वशीकरण सा करता चला गया। कल्पना की पुष्करिणी में कुछ

कमल खिलते चले गये। कानों में एक संगीत, लोम-लोम में एक माधुर्य घुलता चला गया। मन में कुछ अमृत जैसा रिसता चला गया। ऊपर आसमान में चाँद तैरता चला गया और श्वेत-शुभ्र बादल उड़ते चले गये।

आनन्द भूमि पर खड़ा हो गया था। उसके दोनों हाथो में फँसी राज पीछे की ओर झुक गयी थी। उसका मुँह आकाश की ओर उठ गया था। उसके हाथ आनन्द की पीठ पर कमीज़ को रह-रह कर भींच रहे थे। उसके मूँगिया होठो पर कुछ अस्थिर चिह्न बनकर बिगडते जा रहे थे। गुलाबी कपोलो पर कुछ चित्र उभरते जा रहे थे। वक्षोजाम्बुजो की गर्म चुभन ज्यो ही आनन्द ने अनुभव की, त्यो ही उसकी रग-रग में एक उबाल आ गया। आँखों पर एक प्रमत्त मदहोशी घिरने लगी। वह कुछ कहना चाहता था, पर अब कहने को उसके पास जैसे कुछ रह नही गया था। अथवा कुछ ऐसा था कि कहने वाली शेष सम्भावनाओं के शब्द भूल गया था, प्रतीक भूल गया था। वह सब कुछ भूल गया था। एक बार उसे लगा, वह ज़मीन से करोडों फीट ऊपर उडता जा रहा है, उडता जा रहा है!

राज की दम फूल गयी थी। संयम को यत्किञ्चित शिथिल कर देने का कुछ ऐसा परिणाम होगा उसने नही सोचा था। फलतः दूसरे ही क्षण अपने प्रति, आनन्द के इस कृत्य के प्रति, क्षोभ, आक्रोश और किसी अपरिचित भय का दुर्बल प्रवाह हहराकर उसके ऊपर से निकल गया। उसने समूची शक्ति से, अपने हाथो से आनन्द को परे ढकेलकर, अपने को मुक्त कर लेना चाहा। एक बार तो उसने विवश होकर आनन्द की बाँह में ज़ोर से काट भी लिया। विरोध की सारी सक्रिय इच्छाओ के होते हुए भी वह किंकर्तव्यविमूढ हो गयी थी। वह अपने को आनन्द से किसी भाँति नहीं छुडा पा रही थी, तो क्या वह यह भी नही चाह पा रही थी कि किसी तरह आनन्द का नागपाश ढीला हो जाय? क्या उसके अन्दर कोई चीज थी जिसे वह सँभाल नहीं पा रही थी? कोई चीज़ वर्षों की सँजोयी हुई निधि की

भाँति थी, जो आज आनन्द के दबाव में पिस जाना चाहती थी। विरोध की रह-रह कर हुकारती चेष्टाएँ, आनन्द की लौह श्रृंखला मे, धार में तिनके की भाँति उडी जा रही थी। आनन्द से अपने को मुक्त कर लेने की असमर्थता पर उसे रुलाई आ गयी। ऐसी स्थिति में उसका विरोध शिथिल पड गया और उसके पैर लडखडा उठे।

तब आनन्द ने राज को उठाकर पुल की मुंडेर पर बैठा दिया, वह उसके ऊपर झुकता चला गया। चाँद बादलो में भटक गया था कि एक मोटर का दूरागत हार्न सुनाई पडा, तो वे दोनो चौक पड़े और कुछ ही क्षणो में जब उसकी रोशनी भी दिखाई दी, तो जैसे सचेत हो गये।

एकायक सिसक उठी राज; आनन्द को भरपूर झटका देकर वह खड़ी हो गयी। बोली—

"मर्यादा और संयम का न सही, पर इस खुले वातावरण, निर्जन किन्तु चिर संचालित राजपथ का तो ध्यान रखा होता कि बिल्कुल पशु ही हो गये हो? अपने प्रति मेरी कमज़ोरी का क्या एक मात्र यही पुरस्कार तुम्हारे पास था? कितने विश्वास से मैंने तुमसे कही चलने की ज़िद की थी।"

"राज!" आनन्द कहाँ से कहाँ जा पहुँचा था। करोडो फीट ऊपर से नीचे गिरने की स्थिति क्या कोई और होती है?

"क्या कहना चाहते हो राज से? अब तक तुम्हारी हर एक इच्छा में मैंने मौन हो जो सहयोग दिया, क्या उसका यही एक अर्थ था? तुम तो लडकियो की प्रवृत्ति समझते हो न? मुझको किस वर्ग में रखोगे? रख लेना, जिसमें चाहना। मुझे तुममें विश्वास था, इसलिये मैं अपनी कमज़ोरियो की ओर से निश्चित हो गयी थी; लेकिन दूसरो पर अत्यधिक विश्वास भी किस भाँति पतन की ओर ढकेल देता है, मैने आज जान लिया।"

आनन्द को लगा जैसे किसी ने उसके सीने में घूसा मार दिया हो।

"तो, अभी कुछ मिनट पूर्व तुम्हारा कहा हुआ कथन एक ढोंग था, एक दिखावा था, एक छल था, क्यो ? अभी तुम्हारा क्या स्वरूप था और अब क्या हो गया ! क्या वह एक आकर्षक केंचुल थी जो इतनी जल्दी उतर गयी ? राज, दूसरो को बेवकूफ बनाने की कला का प्रयोग यदि मेरे साथ न किया जाय तो अच्छा होगा। वैसे यदि आदत से मजबूर हो तो बात दूसरी है; लेकिन वह मुझे सह्य नही होगा, इतना समझ लेना। औरो की भाँति तुम भी क्षण-क्षण में अपना रूप बदल सकती हो, इस पर मुझे आज विश्वास हो गया।" कोई बात छिपाये बिना, शील-सकोच छोड़कर आनन्द बरस पड़ा।

रंजना अभी तक एक अजाने, अनदेखे, अपरचित भय से काँप रही थी। आँसुओमे भीगे स्वरो में बोली—"आनन्द, जो तुम्हारे जी में आये, कह लो, मुझे गालियाँ दे लो, लेकिन इतना निश्चित है कि ऐसा कुछ मैं नही नही जानती थी। मेरी तो कछ समझ में ही नही आ रहा है। आनन्द, मैं तो केवल इतना ही जानती हूँ कि मैंने तुम्हें एक विश्वास-पुंज के रूप में अपने अन्तर में स्थापित किया है। और अब भी मुझे तुम्हारा ही विश्वास है, तुम्ही पर भरोसा है मुझे। लेकिन यह सब क्या है, मेरी तो कुछ समझ में ही नही आ रहा है।"

राज हथेलियो में मुँह छिपाये रोती हुई मोटर की ओर दौड़ गयी। बोली—"मान लो, अगर मैं कमजोर पड ही गयी थी, तो क्या तुम रक्षा का बल नही दे सकते थे ?"

उफ़ ! आनन्द अब क्या बात करे ? उसे लग रहा था, जैसे सैकड़ों एंजिन उसके सीने के भीतर फिट कर दिये गये हैं, जो हाहाकारी गति से चल रहे हैं। उस भयंकर संघर्ष की आवाजो में उसे कुछ सूझ नही पड रहा था। आज वह राज के सामने कण-कण होकर कितना फैल गया है, बिखर गया है। वह समझ नही पा रहा कि इतने दिनो से सचित उसका अहं जो आज जवाब दे गया, उसका कारण क्या है।

रंजना पुल से चलकर मोटर में बैठ गयी थी। एक लारी आयी और चली गयी। दोनो ने उसे देखा। लारी भरे हुए बोरो से ऊपर तक खचाखच भरी हुई थी ' बोझ से दबी हुई उस लारी की चाल मे एक दर्द सा पीछे छूटता चल गया।

जब रंजना मोटर में जाकर बैठ गयी तो आनन्द कई मिनट तक तदवत् जड, स्थिर, चुपचाप खडा रहा। शायद राज पुकारे, लेकिन जब कोई आवाज़ नही आयी तो वह स्वयं गाड़ी की ओर बढ़ा।

राज स्टियरिंग पर रखे हाथो पर सिर रखे झुकी थी। रह-रह कर हल्की हिचकियॉ उसके सारे शरीर को एक क्षणिक सिहरन से भर जाती थीं।

पास पहुँचकर आनन्द ने कहा—"खिसको।"

एक क्षण लगा; जैसे राज ने सुना ही नही। फिर वह बगल की सीट पर जा रही। आनन्द ने बैठकर गाडी स्टार्ट की, घुमाया और वह नगर की ओर बढ़ चला। रास्ते की खामोशी आनन्द झेल नही सका। उसने राज के कन्धे पर अपनी हथेली का हल्का स्पर्श देते हुए धीरे से कहा—"राज"

राज ने उत्तर नही दिया, कन्धा हटा लिया अलग से। तब फिर आनन्द ने भी कुछ नही कहा।

कुछ देर बाद रंजना ने स्वयं ही कहा—"तुम कुछ कह रहे थे ?"

"नही तो।'

"कुछ तो"

"यही कि मुझे इतना असंयमित नही होना चाहिये था।"

"और मेरे लिये तुम क्या सोचते हो ?"

"तुम कुछ समझो, मैं तुमको अपने से अलग समझ नहीं पाता। मैं केवल इतना कह सकता हूँ कि यह उचित नही था। मर्यादा की एक दीवार तो हमारे बीच रहनी ही चाहिये।"

"और कुछ ?"

"और क्या ? मैंने आज तक जानबूझकर कभी तुम्हारा मन दुखाने की चेष्टा नही की । लेकिन लगता है कि आज कुछ ज्यादती मुझसे हो ही गयी ।

"रंजना चुप हो रही ।"

"फिर भी मैं लज्जित हूँ राज !"

"केवल इतने के लिये ?" राज की आँखो के पलक भीगे हुए थे, किन्तु उसके अधरों पर विकास था ।

"आगे मेरा साहस भी नही था ।"

राज ने कोई उत्तर तो नही दिया, किन्तु उसका एक निःश्वास सहसा प्रकट हो गया ।

इसके बाद और कोई बात नहीं हुई । बीच में राज कुछ ऊँघने सी लगी तो उसने आनन्द के कन्धे पर सिर रख लिया । आनन्द ने भी भरसक उसे हिलाने डुलाने की चेष्टा नही की । जब कभी पेड नही रहते थे, चाँद की दुधिया रोशनी सामने और बगल के शीशे से छनकर उसके मुँह पर पड जाती थी । आनन्द ने बीच में मुँह घुमाकर उसकी ओर देखा । शीतल ज्योत्स्ना की तरल-रजत रश्मियो में रंजना का मुख थककर सोये हुए बालक की भाँति दमक उठता था । आनन्द को वह बडा अच्छा लगा था । उसने अपना बायाँ हाथ धीरे से बगल से निकाल कर उसका बायाँ गाल थपथपाते हुए कह दिया—"नीद लगी है ?"

"उँह" राज ने उसका हाथ ऐसे हटाया, जैसे कोई सोते हुए मक्खी उडा देता है ।

"अभी कितनी दूर है ?" राज ने आँखे बन्द किये हुए पूछा ।

"बस्ती शुरू हो गयी है ।"

घर के निकट पहुँच कर आनन्द ने पूछा—"घर जाओगी कि रानी के पास चलोगी ? संगीत-समिति में चलना बेकार होगा । वहाँ तो अब सब समाप्ति पर होगा ।"

"घर पर ही उतार दो"

"अच्छा।"

रंजना के बँगले पर जब गाडी रुकी, तो वह उतर गयी।

रंजना उतरी ही थी कि एक रिक्शा आ पहुँचा। उससे माँ को उतरते देखकर राज चौंक पडी। आनन्द भी चौंक उठा।

"कहाँ गयी थी माँ?" राज ने पूछा।

"ज़रा रानी के यहाँ गयी थी। भरोस आ गया था बुलाने। चलो, खडी क्यो हो गयी? चलो न! कि अभी और घूमने का विचार है?"

राज शकित होकर, कुछ भयभीत सी आगे बढ़ गयी, पीछे-पीछे माँ भी चल दी।

आनन्द ने मौसी की बात नही सुनी, लेकिन उसने सोचा—शायद मौसी उससे भी कुछ कहें, पर जब वह बिना कुछ कहे अन्दर चली गई तो उसने गाडी बढ़ादी।

—'रानी क्या सोचती होगी। पापा घर पर नही हैं। मास्टर साहब अच्छा गाडी दौडाते फिरते हैं। आटोमोबाइल्स से मोटर लेकर चले चार घण्टे से ज्यादा हो गया।

शाम सिमिटकर खेतो में सो गयी थी और रात का अंधेरा पहरे पर आ गया था।

१२

उस दिन आनन्द काफ़ी रात तक अपने कमरे में पडा तिलमिलाता रहा था। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि कहाँ, किस जगह, उससे गलती हो गयी थी; आवेश के किस स्थल ने उससे संयम की बागडोर छीन ली थी। लेकिन राज ने उससे कही भी चलने की ज़िद क्यो की थी ? साधारण जीवन से उठाकर, उसे एक कल्पना-लोक में ले जाकर क्यों छोड दिया था ? वह तो नही जा रहा था; फिर राज के उस हठ में क्या था। तत्कालीन वार्तालाप में क्या कुछ ऐसा आमन्त्रण नही था ? भले ही वह कितना ही अप्रकट क्यो न रहा हो। जो कुछ घट गया, उसमें क्या राज बिल्कुल निर्दोष ही है ? और जितना निर्दोष बनने का अभिनय उसने किया था, क्या वह शत-प्रतिशत सत्य था ? ''अभिनय ? 'हाँ, क्या वह अभिनय नही था ? सचमुच ही क्या वह मेरे संयम, मेरी दृढ़ता के प्रति विश्वस्त होकर ही अपने को कही भी ले चलने का आग्रह कर रही थी ? क्या उस आग्रह के मूल मे, इन दिनो की आपस में बढती जा रही दूरी का स्पष्टीकरण करना ही उसका ध्येय था ? फिर वह तो हो भी गया था। लेकिन फिर वह तूफान क्यो आ गया था, जिसने उसे कण-कण करके राज की दृष्टि के सम्मुख छितरा दिया ? अपने चिरसचित अह को मिट्टी में मिला देने के बाद अब राज की दृष्टि मे उसका मूल्य ही क्या रह गया है।

काश, वह राज की बात न मानता। लेकिन वह उस ओर, बिल्कुल एकान्त की ओर, गया ही क्यो ? कही रेस्तोरॉ में भी तो बैठ सकता था। लेकिन राज ने ही क्यो नही टोका, वह भी तो टोक सकती थी। क्या वह नही जानती थी कि आख़िर मैं भी तो एक आदमी ही हूँ, कोई पत्थर का देवता नही।''' ठीक है, वह मेरा विश्वास करती थी;

लेकिन इस प्रकार उसने मनुष्य की सहज स्वाभाविक प्राकृतिक प्रवृत्ति के प्रति क्या अविश्वास नही किया ?

टेबिल-लैम्प का हल्का प्रकाश कमरे में फैल रहा था। खिडकी से आ रही हल्की हवा में, सामने ही खूँटी पर टँगा कलेन्डर धीरे-धीरे सिहर रहा था। सारा बँगला नीद की गोद में अचेत पडा था। बार-बार लेटने-उठने और फिर लेटने के कारण बिस्तर की चादर बुरी तरह सिकुड गयी थी। तकिया बीच में पडा था। और गद्दे का दाहिना भाग काफी खुल गया था।

आनन्द कुर्सी पर बैठा दीवाल से चिपकी छिपकली पर दृष्टि गडाये सोच रहा था। एक बार तो यह भी उसके मन में आया—कैसी अजीब बात है, विचार-मंथन की घडियो में ये छिपकलियॉ अक्सर मुझे दिखलाई पड जाती हैं—दीवार से चिपकी, पूँछ हिलाती, नन्ही-नन्ही ऑखो की पुतलियाँ बदलती हुई।

काश, वह आज राज के यहॉ ही न जाता। वह जा भी तो नहीं रहा था, लेकिन रानी की मॉ ने ज़िद की थी कि आटोमोबाइल्स से मोटर लेने जा रहे हो। लौटते समय राज की माँ को लेते आना। मोटर यों ड्राइवर ही लाता, मगर इधर वह बीमार जो है। और उसके मन में न जाने कैसे आ गया कि चलो मैं ही ले आऊँ। उस बीच जो थोडा-बहुत चलाना सीखा था, देखूँ कही भूल तो नही गया। ··· अच्छा मान लो, अगर वह गया ही था और राज की माँ ने राज को ले जाने की बात कही ही थी, तो क्या वह टाल नही सकता था ? ····पर उस टालने का भी मूल भाव क्या होता ?

आज से केवल सोलह दिन रह गये हैं। फिर वह दिल्ली चला जायेगा। जाते-जाते यह सर्वनाश हो गया। वैसे भी कौन सा नाश शेष था ! लेकिन आज ! कितनी मुश्किल से वह इन दिनो उससे अपने को दूर रखने की चेष्टा कर रहा था। वह दिल्ली जाता; तो कैसे कहे, वहाँ उसे राज की स्मृति विकल

न करती। लेकिन साथ ही एक सन्तोष तो होता कि उसमें उसका उतना दोष नही है, जितना परिस्थितियो का और राज भी वह सब नही सोचती जो आज सोच रही होगी।

अच्छा मान लिया कि सब दोष राज का ही था। लेकिन फिर भी तो वह बच नही पाता है। प्रश्न है कि सबसे पहले उसतूफ़ान का स्वागत किसने किया था? उसने ही न! वह सच ही तो कह रही थी कि उसने आज तक मेरी किसी बात का विरोध नही किया। .. ....

तडफडाते हुए आनन्द ने मेज़ पर पड़ी फाउन्टेनपेन उठाली और काग़ज खीचकर वह लिखने लगा—

राज,

इस प्रकार भी तुम्हे कोई पत्र लिखना पड़ेगा, यह बात कभी मेरे मन में नही आयी। यो भी, कल की घटना के बाद, पत्र लिखने का साहस मर जैसा गया है। फिर भी एक लाचारी है, जिसकी उपेक्षा करने में मै अपने को असमर्थ पा रहा हूँ।

तुम्हे एक पत्र मैने अपने गॉव से लिखा था राज, और एक यह लिख रहा हूँ। लेकिन इन दोनो पत्रो के लिखने की मानसिक स्थितियो में मीलो का अन्तर है। तब जाने कैसा एक संतोष था। पत्र लिख चुकने के बाद एक स्थिरता का, एक शान्ति का, एक स्तब्धता का मैने अनुभव किया था; भले ही वह स्तब्धता, वह शान्ति और स्थिरता तूफान के आने की पूर्व-सूचना रही हो। लेकिन आज! आज जो आँधी उठ रही है, लगता है, वह शायद ही कभी शान्त हो।

राज, तुम्हे वे दिन याद होगे, जब हमने पारस्परिक निकटता और आत्मीयता की सीमा में, अन्दर-ही-अन्दर अपने-अपने मनो में स्वीकृति लेकर, घनिष्टता और मैत्री के सन्धि-पत्र पर हस्ताक्षर कर दिये थे। और... और तुम्हें आज का दिन भी याद रहेगा, जब मैने संयम, शालीनता और

मर्यादा पर लात मार कर, तुम्हारी और अपनी दोनों की प्रतिष्ठा की उपेक्षा कर, तुम्हारे और अपने विश्वास के प्रति आँखें मूंद कर सहर्ष अपने को मित्रता के उत्तुंग शिखर से नीचे ढकेल लिया था, अविश्वास की अँधेरी गहरी वदियो में खो जाने के लिये ।

मैं तुमसे कुछ पूछना चाहता हूँ राज। तुम पर कुछ अभियोग लगाना चाहता हूँ। अगर तुम मेरे पास होती तो तुम्हारा सिर पकडकर मैं दीवार से टकरा देता और पूछता कि राज, आखिर तुमने मेरा इतना ज्यादा विश्वास क्यो किया था ? क्या तुमने मुझे बिल्कुल ही पाषाण समझ लिया था। और अगर समझ ही लिया था तो क्या तुम इतना भी नही जानतीं कि पत्थर में भी लोच होती है। अगर पत्थर में लोच नहीं होती, तो विशाल चट्टानो का वक्ष चीर कर, वृक्षराज सिर उठाकर क्यो विहँस उठते हैं ? कुएँ के भीतर से बरगद का पौधा झॉककर क्यो मुस्करा उठता है ? और मुझे इसका उत्तर दो कि शीतल सुधाकर की सुकोमल रजत रश्मियो में चन्द्रकान्त क्यो पिघल उठता है ? क्या यह सब मनुष्य का कोरा भ्रम है ? अपने को कही भी ले चलने को, आखिर तूमने मुझे क्यो इतना वाध्य किया था ?

अच्छा राज, तुमने बलात दबायी गयी चिनगारी पर से ठंढी हो रही राख को क्यो उडाना चाहा था ? क्या इसीलिये कि मैं अपने प्रति ही शंकालु हो उठूँ ? क्या इसीलिये कि मैं, जो आज तक अपने किये पर कभी पछताना नही जानता रहा हूँ, एक नये अनुभव की ग्लानि और क्षोभ की ज्वाला में सुलग उठूँ ?

अपरिमित आनन्द के रसार्णव का स्रोत, वह सागर में ज्वार उठने के पूर्व का तुम्हारा मौन ! वह मधुर मौन, जिससे प्रोत्साहन पाकर ही सामुद्रिक बेलाओ ने अपने आकर्षण में बलात मुझे चतुर्दिक बाँध लिया था; क्या अर्थ रखता था ? लहरो के ऊपर ही मैं एक अभिशप्त आत्मा की भाँति

मदहोश होकर बह चला था और लहरों के थपेड़ो ने ही मुझे निरर्थक फेन की भाँति किनारे ला फेंका था। मैं स्पष्ट जानना चाहता हूँ, क्या तुम्हारा यही—इतना ही–उद्देश्य था ?—क्या यही तुम चाहती थी ?

लेकिन तुम निश्चित रहो, मैं अब तुमसे कोई प्रश्न नही पूछूँगा, तुम पर कोई अभियोग नही लगाऊँगा। अपने दोष को तुम्हारे सिर थोपकर मैं अपने अन्दर की धधकती ज्वाला को शान्त नही करना चाहता। मैं नही चाहता कि अपने किये हुए कर्म के अनौचित्य के अन्तःसंघर्ष से मैं इतनी जल्दी मुक्ति पा जाऊँ।

पता नहीं राज, वह कौन-सा और कैसा दिन था, जब मैंने, बहुत दिनों तक सहमने के बाद, एक दिन निश्चिन्त होकर, बिना तुमसे पूछे, तुम्हारी स्मृति-प्रतिमा में अपनी कामनाओ और कल्पनाओ के इन्द्रधनुप उलझा दिये थे। सम्भव है, वे इन्द्रधनुष कुम्हला जायँ। सम्भव है, उस स्मृति-प्रतिमा का निर्माता ही पथ-भ्रष्ट हो जाय; लेकिन अपनी यह प्रथम और अन्तिम प्रतिमा की सौगन्ध लेकर कही गयी, निर्माता की एक बात पर विश्वास कर लेना। और चाहना तो न भी करना कि उस निर्माता का आज का रूप उसका यथार्थ रूप नही था।

हाँ राज, प्रत्युत अपने ध्वस्त विश्वास के, मै यह कहने का साहस तो कर ही सकता हूँ कि आज का रूप मेरा वास्तविक रूप कदापि नही था। मेरे अन्दर का आनन्द बाहर के आनन्द से कही अधिक अच्छा है और मुझे उसी पर विश्वास है, उसी पर भरोसा है, पूरा, सम्पूर्ण, अक्षय। आज का आनन्द कौन था, कहाँ से आया था, मैं सोचकर भी नही जान पा रहा हूँ।

लेकिन नही, तुम विश्वास मत करना राज। अन्यथा तुम्हारा अपना विश्वास क्षत-विक्षत होकर रोयेगा।

कभी-कभी मनुष्य अनुचित कार्य करने के पश्चात् दूसरो की सहानुभूति

प्राप्त करने की प्रत्याशा में मिथ्या पश्चाताप का आवरण भी तो ओढ़ लेता है न ! तुम इसे ऐसा ही समझ लेना ।

एक बात और राज । मैं अपने सम्पूर्ण विवेक की शपथ लेकर कहता हूँ, मुझे तुम्हारा मोह नही है। तुमसे परिचय बनाये रखने और घनिष्टता का कमजोर पड गया तन्तु पुनः बुनने का भी कोई मोह नही है। मुझे मोह है तुम्हारी उन धारणाओ से, जो तुमने आज की घटना के पहले निर्मित की होगी। राज, अगर तुम मुझसे मैत्री समाप्त कर, अपने सारे सम्बन्ध समाप्त कर भी मुझे अपनी वह पुरानी धारणाएँ प्रदान करने को प्रस्तुत हो, तो यह विनिमय मुझे सहर्ष स्वीकार है। पत्र के उत्तर की मैं अपेक्षा नही करता। वैसे जैसा समझना, करना।

—आनन्द ।

पत्र समाप्त कर उसने एक बार चाहा कि वह उसे फाडकर फेंक दे। क्यों उसने यह पत्र लिखा ? नही चाहिये उसको किसी की सहानुभूति। उसको किसी की परवा नही, जो जिसके मन में आये, सोचे। हाथ में पत्र लिये, कुछ क्षण वह सकल्प-विकल्प में पडा रहा, फिर उसने एक लिफ़ाफे में वह पत्र बन्द कर दिया। इसके बाद वह कुर्सी छोड़कर उठ गया और बिस्तर पर लेट रहा।

बडी कठिनाई से अभी उसकी आँखें लगी ही थी कि थोडी ही देर में जीवन आ पहुँचा। बाहर की खिड़की से उसने देखा, आनन्द पलँग पर बेसुध पडा है।

—अरे पाँच बजने को हैं और अभी यह उठे नही। कहाँ कहते थे कि मैं तैयार मिलूँगा। कोई बात जरूर होगी; अन्यथा आनन्द इस प्रकार का आदमी नही है। फिर प्रकट स्वरो में जीवन बोला—

"अरे आनन्द ! आनन्द !"

"कौन, जीवन ! तुम आ गये।" आनन्द हड़बडाकर उठ बैठा।

बोला—"क्या समय हुआ ?"

"पॉच बज रहे हैं।"

"पॉच !"

"और क्या, पर तुम अभी तक सो क्यो रहे थे ? रात में क्या देर से सोये थे ? चलो, जल्दी करो, बाहर जीप खडी है। तुमने जैसा-जैसा बताया था, मैंने सब इन्तज़ाम कर लिया है। हम पॉच-छै आदमी इस जीप से चल रहे हैं। बाकी लडके-लडकियाँ दस बजे ट्रक से पहुँचेंगी। नवभारत स्वयं-सेवक संघ, के दस सदस्य भी हमारे साथ हो गये हैं। उठो-उठो ! अब चल ही दो। और हाँ, तुम्हारे मिल आने के बाद मैं भी जिलाधीश से मिला था, फिर दूसरे लोगो से भी मिला था। उन्होने पूरी सहायता देने का आश्वासन दिया है। दवाइयो का काफ़ी प्रबन्ध है।" कहता हुआ जीवन बाहर से हटकर उसके कमरे के सामने बरामदे में आ गया।

कपडे पहनकर और एक छोटे से सूटकेस में अत्यावश्यक सामान लेकर आनन्द तैयार हो गया।

"चलो। उधर ही कही शौचादि से निवृत्त हो लूँगा।"

आनन्द ने बाहर आकर ताला बन्द किया। लेकिन 'अरे' कहते हुए उसे फिर खोला। अन्दर जाकर मेज़ पर से कल रात में लिखा लिफ़ाफ़ा उठाया और बाहर आ गया। बाहर आकर उसने भरोस को बुलाया और लिफ़ाफा देता हुआ बोला—"देखो भरोस, दोपहर तक यह लिफाफ़ा राज को दे आना। समझे ? उन्ही को देना और किसी को नही। और वकील साहब या और कोई पूछे, तो कह देना कि कल जहाँ जाने की बात कह रहे थे, वहॉ चले गये। वैसे मैं दो-एक दिन मैं एक चक्कर मार जाऊँगा। लेकिन न भी आऊँ, तो चिन्ता न करें। समझे न ?" फिर जीवन से बोला—"चलो जीवन।"

"आनन्द, तुम स्वयं दरवाज़ा खुलवाकर क्यो नही कह देते ?"

"नही, ठीक है। कल शाम को मैंने कुछ ऐसा सकेत कर दिया था कि इन दिनो प्रयाग के निकटवर्ती क्षेत्र में, जो प्लेग की महामारी भयंकर रूप धारण करती जा रही है, उस सम्बन्ध में हम लोग कल सुबह से कुछ काम करने के लिये उस क्षेत्र में जा रहे हैं। वकील साहब से भी इक्यावन रुपया ले लिया है। अपने काम के विषय में यहाँ तक कहना और प्रचार करना कि वह एक विज्ञापन का स्वरूप धारण करले, मुझे पसन्द नही।"

"अरे, ड्राइवर नही है क्या ?"

"है, रास्ते मे ले लेंगे। आओ, बैठो।"

जीप आगे बढी तो जीवन ने कहा—"कल बड़ा गडबड हो गया आनन्द।"

"क्यो, क्या हुआ ?"

"कल वन्दना का एक्सीडेण्ट हो गया। हास्पिटल में है।"

"कैसे ?"

"बताता हूँ। बात यह हुई कि····।"

१३

गाँवो में रहते हुए आनन्द को पन्द्रह दिन हो रहे थे। प्लेग का जोर कुछ कम अवश्य पड गया था; लेकिन स्थिति में कुछ विशेष परिवर्तन नहीं हुआ था। और आनन्द ! उस पर तो इन दिनो जैसे सेवा-कर्म करने का भूत सवार हो गया था। एक गाँव में उसका शिविर पडा था, लेकिन शायद ही किसी दिन वह शिविर में सोया हो। इन दिनो उसने नये दृश्य देखे थे, नयी ज़िन्दगी देखी थी और नये तरह के मनुष्य देखे थे। यह नहीं कि उसके लिये प्लेग का प्रकोप नया था; इससे पहले भी वह एकबार इसी भाँति संत्रस्त पूर्वी जिले में गया था। विविध स्थानो में घूमा था, जहाँ महामारी का भयङ्कर अट्टहास गूँज रहा था, जहाँ क्रूर प्रकृति ने खुलकर विनाशक नृत्य किया था, जहाँ सर्वभक्षी मृत्यु ने एकबार तृप्ति की डकार लेनी चाही थी। लेकिन उस समय आनन्द आज की अपेक्षा अधिक भावुक था। वह दिन भर सेवा-कार्य करता और रात्रि की निस्तब्धता में भी उसकी आँखो के सामने बीमार, पीडित और क्षण भर बाद ही मृत्यु के भूखे और खुले जबडो में आत्म-समर्पण कर देने वालो के चेहरे घूमा करते थे; कानो में उनकी आर्तकराहें, बेबस और गीले स्वर गूँजा करते थे। वह करवटें बदल-बदल कर रात काट देता था और अँधियारे ही उठकर उन पीडितो के बीच जा पहुँचता था। तब वह चाहता था कि किसी प्रकार मृत्यु की यह निर्दय, हिंस्र और हत्यारी क्रीडा बन्द हो जाय, किसी प्रकार विवशता और आतंक में तडफडाती मानवात्मा का दारुण अन्तर्नाद थम जाय, जीवन और मृत्य के बीच होने वाला यह विप्लवकारी हाहाकार शान्त हो जाय।

इधर वह अत्यन्त दृढता और शान्ति से सेवा-कार्य कर रहा था। यही कारण था कि उसने मानव-प्रकृति के अपरिचित, अन्यतम तथ्यो से साक्षात्-कार कर लिया था। और अब मानवी प्रकृति उसके लिए अत्यधिक रहस्यमय होकर उसके अध्ययन का विषय बन उठी थी। उसके साथ के आये कितने ही लोग दो-चार दिन में, दूसरे दिन आने को कहकर, नगर लौट गये थे और फिर नही आये थे। कई लोग अवश्य अभी तक रुके थे, जिन में से कुछ तो बेहद लगन से काम कर रहे थे। और कुछ? आनन्द को बडी जुगुप्सा होती थी, उनकी बातें सुनकर, जब वे गाँव की उन लडकियो के विषय में अश्लील, भद्दी और कुभावना से भरी हुई बातो में रस ले-लेकर वार्तालाप करते, जो घर के तमाम लोगो की अस्वस्थता की स्थिति में, उन्हे देख-देखकर आश्वस्त हो उठती थी; उन्हें ईश्वर द्वारा प्रेषित देवदूत समझ बैठती थी और बहुत कुछ सकोच भी त्याग देती थी।

कभी-कभी आनन्द के मन में आता—

सेवा-कार्य के लिए गाँवो में जाना, पिकनिक करना नही है। लेकिन इन दिनो उसने ऐसे नवयुवक ही नही, नवयुवतियाँ भी देखी थी, जो नगर से विपन्न लोगो की परिचर्या, सेवा और सहायता के नाम पर आयी थी और यहाँ आकर अवसर मिलते ही कही एकान्त की ओर रासलीला के लिये चल देती थी। एक ओर जीवन-विनाश की लीला चलती, दूसरी ओर प्रीति-संलाप चलता, परस्पर एक दूसरे के प्रति अपना जन्म सिद्ध सम्बन्ध स्थापित करने का अभिनय किया जाता।

एक मन्त्री को भी उसने देखा था, जो मय परिवार के इस क्षेत्र की स्थिति देखने आये थे। मानो प्लेग का प्रकोप और नित्य ही बिलबिला कर मरते सैकडो मनुष्यो की लाशें कोई खेल हो, सिनेमा या सर्कस हो, जिसे वे अपनी पत्नी और बच्चो को दिखा ले गये थे।

गाँवो की स्थिति तो और चिन्ताजनक थी। गाँव-के-गाँव मुर्दा जैसे हो गये थे। खाली मकानो के आँगन और अन्दर के कक्षो में धूल की मोटी-

मोटी पर्तें जम रही थी। लोगो ने घर छोड दिये थे और जिसको जहाँ जगह मिली, फूस और तिन की झोपडियाँ खडी कर ली थी। कोई अपने मकान के सामने ही डेरा डाले पडा था, तो कोई खेतो मे पड़ा था और कोई खलिहानो में। कुछ लोगो ने घर नही छोडा था। इसके कई कारण थे। कुछ इसलिये घर नही छोड सके कि बाहर झोपडी खडी करने तक का कोई साधन उनके पास नही था। और कुछ घर की धन-सम्पति के मोह और अपने शत्रुओ के प्रति सतर्क रहने के दृष्टिकोण से झोपडियो में नहीं गये थे। पशुओ के भूसे-दाना-पानी में परेशानी का अग्रिम अनुभव करने के कारण भी कुछ लोग घर नही छोड सके थे। इनमें विशेषकर वही लोग थे, जो या तो अपने घर में पहले से ही अकेले थे, या अब हो गये थे।

एक भयावह शून्यता और मौत की काली छाया सारे गॉव के ऊपर मँडराती रहती। मृत्यु की दुर्निवार विभीपिका चारो ओर अट्टहास करती प्रतीत होती थी, उजडे-उखडे और सत्रस्त गॉवो में प्राण देने के लिए जैसे चूहो और मानवो मे होड लग गयी थी, या यो कहे कि मृत्यु ने लगा दी थी। जगह-जगह महामारी के आक्रमण से बचने के लिये, लोगो को सुई लगाने का प्रबन्ध कर दिया गया था। इसके अतिरिक्त कई सूचिका बेधक तथा कथित डाक्टर घुटनो तक बूट पहने हुए, सुई लगाने के लिये, गॉव-गॉव घूम रहे थे। पीडित लोगो की समुचित रक्षा के लिये दवाई आदि का एक तो समुचित और पर्याप्त प्रबन्ध ही न था। यदि थोडा-बहुत था भी, तो गॉव वाले स्वयं पूरी मात्रा में सहयोग नही दे रहे थे। यथा कितने ही लोगो ने सुई लगवाने तक से इन्कार कर दिया था।

दिन भर परिवार और पडोस के रोगियो की परिचर्या करते-करते थके, परेशान, मगर स्वस्थ व्यक्ति को सहसा शका हो उठती और तन्द्रा से धीरे-धीरे जगते हुये के सदृश उसे आभास हो जाता कि गुर्दों में लम्बी-लम्बी गिलटियों के स्वरूप धारण करने की भूमिका बनने लगी है। जी घबडा उठता, भय और आशंका के तत्व मिलकर मन को मथ डालते। थोडी ही

देर में आलस बढने लगता, पीडा बढ़ती चली जाती और ज्वर की गर्मी शरीर में उतरती जाती। जैसे-जैसे ज्वर अपना रंग जमाता जाता, वैसे-वैसे मुँह लाल होकर उसके अधिकार की सूचना देता जाता और ज्वर का तापमान एक-सै चार, एक-सै छै, एक-सै आठ, एक-सै नौ और कभी-कभी एक-सै दस तक जा पहुँचता। हाथ काप उठते। लगता, थर्मामीटर हाथो से छूट जायगा, ऑखे अपने आप मुँद जाने को होती। गिलटियॉ अपना आकार और अपनी आकृति स्पष्ट करती जाती। फिर वे पकती, फूट जाती और जीवन के सूत्र छिन्न-भिन्न हो जाते।

कई बार ऐसा भी हुआ कि कोई व्यक्ति घर वालों के लिये दवा लेकर आया। दस बजते-बजते स्वय उसको अपने शरीर में गिलटियॉ निकलने का आभास सा मिला। बारह-एक तक ज्वर ने घर दबाया। हाथ-पैर ढीले हो गये, चारपायी का सहारा लेना ही पडा। फिर स्थिति यह हो गई कि झोपडी में कोई मॉगने पर पानी भी दे सकने में समर्थ न रहा। रात तडफडाते बीती और दूसरे दिन दोपहर होने के पहले ही उसने ऑख मूँदकर मृत्यु का अनचाहा पर विवश निमन्त्रण स्वीकार कर लिया। कई बार ऐसा भी हुआ कि किसी को सुईयो के लगने से ज्वर आ गया और लोगो ने समझा कि अब यह भी गया।

इसी प्रकार एक ओर चूहे बिलबिलाते, चक्कर मार कर घनघनाकर नाचते और जमीन पर सर पटककर दम तोड देते। दूसरी ओर चारपाइयो पर इन्सान बीबी, बाल-बच्चो और परिवार की चिन्ताओ का ताना-बाना बुनते, अपनी खामोश ऑखो से मौत का इन्तजार करते। वह आती, एक-दो हिचकियॉ, एक हल्का सा झटका और सर जरा सा टेढ़ा होकर एक ओर लुढक जाता। एक कुहराम मचल उठता और जब तक रुदन के स्वर बीमार हवा पर बडी बेबसी से चढकर ऊपर उठ पाते, तब तक किसी दूसरे घर में भी चीत्कार, क्रन्दन और ऑसू जिन्दा हो उठते। कितना दयनीय, और कितना अनिश्चित मरण था कि कोई किसी को सहानुभूति नही दिखा

सकता था। जब कोई अपनी ही सिसिकियाँ नही रोक पाता था, तो दूसरों के आँसू कैसे पोछ पाता!

फूस के अवासो के सामने या घर के सामने बँधे पशु, बँधे रहते, खडे होते और फिर गोबर और मूत्र से सनी जगहो पर बैठ जाते। पूँछ से मक्खियाँ उडाते, यदा-कदा कान फडफडाकर इधर-उधर देखते रहते। कोई उनको पानी पिलाने वाला नहीं रहता, कोई उनको भूसा डालने वाला नही रहता। घर के बगल में आदमी कराहता और चीखता रहता, और लोग अपने दरवाज़ो पर खडे-खडे देखते रहते, सुनते रहते। पहले तो स्वयं ही वे उस बीमार के पास जाने का साहस नही करते। और करते भी, तो माताएँ, पत्नियाँ और घर के बडे-बूढे डपट देते।

पारस्परिक शत्रुता का प्रतिकार करने और अपने कुसंकल्पो को पूर्ण करने के लिये तो यह प्लेग जैसे स्वर्ण अवसर ही था। घरो में लोगो की लाशें निकालते समय, ज्वर से पीडित लोगो मे औषधि वितरित करते समय, उनको सफ़ायी रखने और रोग के आक्रमण के निवारणार्थ पूर्व सावधानी रखने की बातें बताते समय आनन्द ने लक्ष्य किया था कि एक घर में कई दिनो से बीमार पडी, उपेक्षिता बहू की तीमारदारी में उसका ज़रा सी रुचि लेना तक उस घर के बडे-बूढों को अच्छा नही लगा था। अचेत पडे सौतेले भाई या पुत्र की सुरक्षा का प्रबन्ध करना, घर के लोगो को अच्छा नही लगा था। और इतना नही, किसी-किसी को अपने वृद्ध माता-पिता के प्राणों से अधिक चिन्ता, पडोस की नाइन की विधवा पुत्री के प्राणो की थी, गाँव के दूसरे कोने में बीमार, किसी बदनाम कुँजडे की जवान लडकी के प्राणों की थी।

कई स्थानो पर लोगो ने आग लगा देने की भी कोशिश की थी। लोग भले ही चारपायी पर पडे हो, भले ही वे ज्वर के कारण एक कदम भी ठीक से न चल पाते हो, लेकिन जब भी उन्हे मौका मिलता, झोपड़ी से निकलकर, अपने घर का ताला देख आते थे और कभी ताला खोलकर,

घर के भीतर का भी निरीक्षण कर आते थे। बावजूद तमाम सावधानियो के, इधर कई चोरियाँ हो गयी थी और उनके दुःख में ही कई लोग, रोग से रक्षार्थ उपायो की उपेक्षा करके, काल के मुँह में चले गये थे। एक एक गॉव से रोज पॉच-छे लाशें निकलती थी, एक ओर करुण क्रन्दन की चीखें, मज़ार के ऊपर की-सी उदासी की भॉति, गॉव की उदासी के सीने मे तीर की भॉति छिद जाती। दूसरी ओर गाँव से हटकर या किसी घर में ही जुयें की फड जमी रहती। एक बार ऐसा भी हुआ कि आनन्द एक घर में पीने के लिये पानी गर्म कर रहा था। क्योंकि सब लोग चारपाइयो पर थे और जो एक जवान भाई था भी, वह हल्के ज्वर रहने पर भी सुबह से लापता था। बूढा बाप बडबडा रहा था—"हरामी का पिल्ला कही बैठा होगा जुवाडियो के बीच।" इतने में वह भाई—"साले ने समझा क्या है! जबरदस्ती बेइमानी कर लेगा। ज्वर ठीक हो जाय तो सारी जीत का मजा उसको चखा न दूँ तो कुछ नही किया।" बकता हुआ आया और दरवाज़े पर ही गिरकर ढेर हो गया।

इन दिनो आनन्द ने ऐसी भी लडकियाँ देखी थी, जिनके घर में, माँ बहिन से लेकर भाभी तक और पुत्र से लेकर बाप और बड़े भाई तक चारपाइयो पर थे और वे स्वयं रात्रि-अभिसार की बात तो दूर, दिवाभिसार के ही चक्कर में थी। ऐसे लडके भी देखे थे, जो इस बात की प्रतीक्षा में थे कि कब अमुक लडकी का भाई भी चारपायी थाम ले और बहुत दिनो से दबी हुयी, उसकी साध को खुलकर खेलने का अवसर मिल जाय।

आनन्द सब देखता, समझता और सारी बातें मन में रखकर अपने काम में लग जाता। गाँव के ही कुछ उत्साही तरुण उसके साथ हो गये थे। वह दिन भर उनके साथ ही इस घर से लेकर उस घर तक, इस टोले से उस टोले तक, इस गाँव से उस गाँव तक घूमता रहता। रात में, जब सब लोग दिन भर के किये कामों और आगामी कार्यों के विषय में बातें करने के बाद, ऊँघने लगते थे, तब आनन्द लालटेन की पीली, कमजोर

रोशनी में बैठकर, समाचार-पत्रो के लिये, इस क्षेत्र की स्थिति-गम्भीरता के विषय में, छोटे-छोटे लेख लिखता। उन लेखो में यहाँ की दर्दनाक स्थिति के सजीव चित्र खीचता और इस आकस्मिक विनाश के प्रति शासन की उपेक्षा पर कठोर प्रहार और व्यग करता, बाहर से आयी सहायता के विवरण देता और निरन्तर चलने वाली धॉधली पर प्रकाश डालता। परिस्थिति में सुधार के नाम पर वह सहायता की मॉग करता, इस दृष्टिकोण से नही कि सरकार बडी प्रजा पालक है, सहायता की भिक्षा उसे मिलनी ही चाहिये। वरन् इस दृष्टिकोण से कि यह उसका कर्त्तव्य है।

जिस लगन और तत्परता से आनन्द इन दिनो अपने कार्य में संलग्न था, उसने जहॉ एक ओर आसपास के कई गावो के निवासियों में आनन्द को देवता बना दिया, वही समाचार-पत्रो मे प्रकाशित उसके लेखो ने, ऊँचे अधिकारियो में भी उसका नाम पहुँचा दिया था। उन लेखों के कारण जनता के बीच जो हलचल मच गयी थी, शासन के प्रति आलोचना-प्रत्या-लोचना का जो एक चेतनापूर्ण वातावरण बन गया था, उससे अधिकारियो और सत्ताधीषो के कान खड़े हो गये थे। केन्द्र से भी शिकायत के पत्र उनके पास पहुॅचने लगे थे, जिसका परिणाम हुआ कि दो दिन पूर्व ही शासन की ओर से पर्याप्त सहायता-सामग्री और सेवा-कार्य के लिये कई आदमी भी आ गये थे।

इस क्रम में पहले ऊँचे अधिकारी आते। आते ही जब वे आनन्द नाम के व्यक्ति से मिलना चाहते, तब प्रधान शिविर से पता लगता कि दो दिन से उनका पता नही है। उस दिन आये थे, दवाइयाँ लेकर चले गये। दोपहर को बगल के गाँव में थे, शायद आगे बढ़ गये हो। आनन्द के पास सूचना भिजवायी जाती, तो वह कभी-कभी तो टाल जाता—"मुझे जो करना है, मैं कर रहा हूॅ। उन्हे जो करना है, वे करें; मुझसे मिलकर और बातें करके क्या करेंगे? मुझे इस आपत्तिकाल में, किसी विराट औषधालय का उद्घाटन करने के लिये, किसी मंत्री महोदय का भाषण नही दिलवाना है।"

यो एक-एक गॉव स्वयंसेवको के एक-एक दल के नाम कर दिया गया था। लेकिन जाने क्यो, आनन्द इसे स्वीकार नही कर सका था। दवाइयो का बक्स लिये, वह गॉव-गॉव घूमता, घर-घर जाता और आगे बढ जाता। न उसे खाने का होश था, न उसे पीने की चिन्ता थी। यहॉ तक कि उसे विश्राम के लिए थोडी देर सोने का भी ख्याल न आता था। जो सामने आया पेट में डाल लिया, जहॉ देर हो गयी वही कम्बल तान लिया। इधर तो कई दिन से वह बेहद थकान का अनुभव कर रहा था, लेकिन स्थिर होकर बैठना जैसे उसकी प्रकृति में ही नही रह गया था।

उस दिन एक गॉव में आनन्द जब सोकर उठा, तो उसने अनुभव किया उसकी नस-नस में एक कमज़ोरी है, एक टूटन है, एक तनाव है। उसका सर भारी था। फिर भी उसने कपडे पहने और सोचा कि गॉव के घरो का एक चक्कर और मार देना चाहिये। वह घर से निकला, लेकिन कुछ कदम चलने के बाद ही उसे लगा कि वह अब आगे नही चल सकेगा। एक विचित्र कँपकपाहट देह में व्याप्त हो गयी थी। वह लौटकर खाट पर कम्बल ओढ़कर लेट गया। थोडी ही देर में एक सरसराती हुई गरमी की लपट की आँच उसके शरीर के ऊपर से रेंग गयी, और सिर मे हल्की सनसनाहट प्रारम्भ हो गयी। एक सहमती हुई रोशनी 'क्षुब्ध आकाश और असंख्य जलते-बुझते तारे। अब उसे तीव्र ज्वर ने झकझोर दिया था। दस बजे के करीब स्वयंसेवको ने उसे देखा, तो घबडा गये। आनन्द ने किसी प्रकार उन्हे आश्वस्तकर उनसे अपने प्रति निश्चिंत रहने का आग्रह किया। साथ ही यह भी कह दिया कि अगर जीवन प्रधान शिविर में मिले तो उसे सूचित कर देना'

दोपहर तक ज्वर ने उस पर बुरी तरह अधिकार कर लिया। उसके पश्चात् ज्वर की अर्धमूर्च्छित अवस्था में उसको आभास हुआ कि बगल में गिलटियॉ निकल चली है। एक बार तो उसे अत्यधिक व्याकुलता जान पडी। वह घबरा भी गया। शरीर पसीने से नहा उठा। लेकिन शीघ्र ही

उसकी घबराहट और असंख्य जग उठे विचारो की गरमी पर अभय और निश्चिन्तता की सर्द लहर दौड गयी। कुटिया में पडे-पडे, वह बाहर के लोगो की बातचीत सुन रहा था। एक बार उसने उनमें से किसी के स्वर को पहचान कर, उसको बुलाना भी चाहा था, लेकिन गले से आवाज़ नही निकली थी। फिर शक्ति के साथ उसने जो दो-एक बार पुकारा भी, तो उसकी ध्वनि कुटिया का द्वार ही नही लॉघ सकी।

अब आनन्द बेसुध पडा था और वे तमाम बातें, तमाम घटनाएँ और अनेको दृश्य रह-रहकर उसके मानस-पटल पर अंकित होकर मिट-मिट जा रहे थे, जिनको उसने अपनी स्मृति के एक कोने में डाल लिया था। सब बातो के आते-जाते वह घटना भी चित्र की भॉति स्पष्ट हो गयी, जिसे स्मरण कर उसके ज्वर से कम्पति अधरो में भी एक बार स्मित-रेखा खेल गयी।

वह घटना कुछ ऐसी थी कि आनन्द प्रधान शिविर से दवाई आदि लेकर लौट रहा था। रास्ते में उसने सुन्दरिया और छेदीलाल को गॉव-बाहर झाडियो के पास, हाथो में लोटा लिये, आपस में हास-परिहास करते देखा था। वह चुपचाप आगे बढ गया था। फिर गॉव में घुसते ही पता लगा था कि लालताप्रसाद अपना घर देखने गये थे, सो ताला खोलकर अन्दर गये ही थे कि चिल्लाकर गिर पडे और बेहोश हो गये। आनन्द उधर ही लपककर आगे गया। लोगो ने लालताप्रसाद को उठाकर बाहर चबूतरे पर, एक खाट पर लिटा दिया था और वे पानी के छींटे दे रहे थे, तभी वह पहुँच गया। बात सुनते ही उसके दिल में कोई बोल उठा था कि चोरी हो गयी लालताप्रसाद के यहॉ। खैर, वह वहॉ पहुॅचा ही था कि दो-तीन मिनट बाद उन्होने ऑखें खोल दीं और उठ बैठे। पूछने पर उन्होने बताया कि जैसे ही वे ताला खोलकर, सब ठीक-ठीक है या नही, देखने के लिये, अन्दर गये वैसे ही बडी अम्माँ की छाया दिखाई पड़ी। यही नही, वह मुझसे कहने लगी कि तुम जाओ, यहाँ मत आना। यहाँ मै सब रखाये हूँ। देखो! देखो! वह-वह जो दरवाज़े के भीतर से झॉक रही हैं, वही बडी अम्माँ हैं। कई ऑखे दरवाज़े की ओर

उठी, लेकिन वहाँ किसी को कुछ नही दिखाई दिया। वास्तव मे था ही क्या, जो दिखाई देता। लालताप्रसाद की इतनी सी बात से कितनो के रोये खडे हो गये थे। कितने चुपचाप वहाँ से हनुमान चालीसा का जाप करते हुए चल दिये। खुस पुस भी हुई—'अरे अब फल भोगेगें नही ? तब तो बुढिया का माल हडप करने की नियत से, उसको ठीक से पानी तक नही दिया था, दवाई की बात तो दूर रही।' 'मैंने सुना है कि घर की दो-तीन कोठरियो को खोद के रख दिया है, लेकिन हाथ कुछ नही चढा।' अरे तुमको क्या मालूम ? मुझे सब पता चल गया है।' आनन्द वहाँ से चलकर दुलारे पण्डित के यहाँ गया था। घर में पत्नी के प्राण गले तक आ गये थे और छोटा लडका स्तन में मुँह लगाये चिहुँक-चिहुँककर रो रहा था। ननद गंगा चढ़े बुखार में चूल्हे पर दाल डाले बैठी, आँसू पोछ रही थी और दुलारें का पता न था। गगा से बच्चे को, माँ से अलगकर, दूध पिला देने को कहकर और पण्डितानी को दवाई और सांत्वना देकर, वह अलबेले चमार की विधवा के घर गया, तो देखा दुलारे पण्डित उसकी सेवा करने में दत्तचित्त हैं।

इसी प्रकार के तमाम धुँधले चित्र उसकी बन्द आँखो के आगे से सरकते चले जा रहे थे। अचानक बाहर एक कोलाहल हुआ। लोगो की भाग-दौड सुनायी दी। ''रोने और चिल्लाने के तेज स्वर छिटक गये। ' 'एक प्रलय काण्ड-सा उपस्थित हो गया''''। आनन्द एक क्षण को सँभला, तो उसे लगा, जैसे यह शोर-शराबा यह भगदड'' यह आवाजें, बाहर नही, उसी के सिर में भनभना रही हों। एक बार उसने आँखे भी खोली। ' 'क्या बात है, जीवन या और कोई अभी तक आया क्यों नहीं ? बडी गलती की उसने, जो अविलम्ब उन लोगो को सूचना नही भिजवाई।

असह्य पीडा से कराहकर उसने आँखें बन्द कर ली; फिर खोली और उठकर बाहर देखना चाहा कि आखिर बात क्या है; लेकिन शक्ति ने साथ नही दिया और पुनः आँखें बन्दकर उसने करवट ले ली।

जलती झोपडी में बिजली की भाँति समा गया। अरे अरे ! यह कौन है ? ओः ये तो आनन्द बाबू है ! ''अब तक यह कहाँ थे ? क्या कहा ?— नारायण दुबे के कमरे मे ? आज उन्हे सुबह से ज्वर आ गया था। ''''मैं भी तो देखने नही गया था। किशोर बाबू ने कहा भी था कि ज़रा ख्याल रखना, मैं अभी आ रहा हूँ। ' राम राम ' बेचारा भरे बुखार मे प्राण देने को ऐसी प्रचण्ड आग में घुस गया हे ईश्वर ! तुझे क्या मंजूर है ! ''''वह देखो, वह देखो !

लोगो की हाय-हाय बढती जा रही थी कि आनन्द बुढिया और बच्चा दोनो को सम्भाले आग से निकल कर बाहर आ गया।

बाहर तो वह आ गया, लेकिन आते-आते वह धडाम से गिर गया। बच्चा छटककर दूर जा गिरा। और वह बुढिया को लिये दिये ही, अपने को उसके बोझ से मुक्त करता हुआ, अचेत हो भूमिशायी हो गया !

आनन्द की आँख खुली तो उसने अपने को एक साफ-स्वच्छ कमरे में गद्दार बिस्तरे पर पडा पाया। छत से निगाह हटाकर उसने दायी ओर देखा तो एक स्टूल पर रंजना बैठी थी, और एक स्टूल पर रानी का भाई विमल। दृष्टि मिलते ही रंजना मुस्करायी—"कैसी तबियत है अब तुम्हारी।" कहते-कहते उसकी ऑखो में आँसू आ गये। आनन्द ने उत्तर नही दिया वह शून्य आँखों से रंजना को निहारता रहा।

"तुम यहाँ नगर के अस्पताल में हो। परसों रात में ही तुम्हे यहाँ ले आया गया था। आज पूरे दो दिन बाद तुमने ऑखें खोली हैं।"

आनन्द ने आँखें बन्द कर ली।

"आग में घुसते समय तुमको किसी का ख्याल भी था आनन्द ! कही कुछ हो जाता तो '' '' "

"वो बुढ़िया और बच्चा कहाँ हैं ?" आनन्द आँखें बन्द किये ही बुद-बुदाया।

"वो तो बच गये लेकिन   "

"अब लेकिन क्या ?"

"तो क्या अपने को दण्ड देने के लिये ही, चढ़े ज्वर में, आग में अपने जीवन के साथ खिलवाड करने गये थे। क्या आत्मशोधन का यही एक मार्ग शेष रह गया था ... ."

राज का वाक्य पूरा नही हुआ था कि एक नर्स आकर कमरे में खडी हो गई। आनन्द को उसने जो होश में आया देखा, तो उल्टे पैर लौट गयी।

आनन्द ने भौहें उठायी।

"कुछ नही" राज रूमाल को ऑखो पर लगाते हुये चुप हो गयी।

आनन्द ने विमल को इशारे से बुलाकर अपने बिस्तर पर बिठा लिया।

"घर पर सब लोग ठीक हैं ?" उसकी पीठ पर हाथ फेरते हुए आनन्द ने पूछा।

"जी मास्टर साहब ! अभी तो आये थे पापा, दीदी, अम्मा और माया दीदी। माया दीदी तो परसो से ऐसा रो रही है कि चुप ही नहीं होतीं। पापा अभी फिर आते होंगे। एक दोस्त के साथ जरा चौक तक गये हैं।"

"तुम्हारी पढ़ाई ठीक चल रही है ?"

"जी"

"कैसे हैं अब आप, मिस्टर आनन्द।" डाक्टर ने द्वार पर ही से पूछा।

"ठीक हूँ। आपने जिला ही लिया !" आनन्द मुस्कराया।

"आप लेटे रहिये, लेटे रहिये ...आप भी बैठिये। आप क्यो कष्ट करती हैं ? मिस्टर आनन्द ! हम लोग तो बडा परेशान हो गये थे। कल तो मुख्य

मंत्री महोदय भी आपको देखने आये थे, लेकिन आप तो बेहोश थे। आज उनका तार आया है कि उस नवयुवक की क्या स्थिति है। वैसे सुबह ही उत्तर भिजवा दिया था, लेकिन अभी फिर भिजवा दिया है। काम तो आपने बडा कमाल का किया। पहले भी मैंने समाचार पत्रो में आपके दो-तीन छोटे-छोटे लेख देखे थे, मगर आकृति से कहाँ परिचय था! ये देखिये, कल के पत्र में आपका चित्र निकला है और उस घटना का विवरण भी।" डाक्टर ने खाली स्टूल पर बैठकर बगल में दबा समाचार पत्र सामने करते हुए कहा।

आनन्द ने पत्र लेकर सिरहाने रख लिया।

"अच्छा तो ठीक है। मैं चलता हूँ!" पीछे खडी नर्स को कुछ समादेश देता हुआ डाक्टर उठकर चला गया।

आनन्द फिर रजना की ओर देखने लगा।

"आनन्द! तुमने तो आत्मशोधन का यह कठोर मार्ग चुना, लेकिन क्या मेरे विषय में भी कभी सोचा था कि मुझको तो इससे भी कठोर आत्मशोधन करना चाहिये और वह मैं कर सकूँगी? मैं तो तुमसे ज्यादा दोषी हूँ आनन्द! खैर, अभी मै कुछ कहना नही चाहती, लेकिन इन दिनो मेरे मन में जो-जो प्रतिक्रियाएँ हुई हैं, उन्हें मैं ही जानती हूँ। पाषाण!"

आनन्द ने इस बार भी उत्तर नही दिया. केवल मुस्करा कर रह गया। उसे लगा कि उसके अन्तर्द्वन्द के रेशे-रेशे उडे जा रहे हैं' हल्की रिमझिम ··· सुहावनी धूप विहँस रही है'' एक नयी उमंग मुस्कराकर अँगडाइयाँ ले रही है इन्द्रधनुष आनन्द के मारे दोहरा होता जा रहा है एक मन-भावन संगीत झकृत हो उठा है। असीम सन्तोष से आँखें बन्दकर उसने रंजना की गोद में अपना हाथ रख दिया। वह हाथ, जिसमे एक जगह पट्टी बँधी थी और यत्र-तत्र मलहम के ऊपर पतले कपडे के टुकडे चिपके हुये थे।

विमल कभी राज को देख रहा था, जो आनन्द के हाथ को अपनी हथेली में दाबे विभोर हो उठी थी, और कभी आनन्द को।

तभी "क्या आनन्द होश में आ गया, राज बेटी ?" दरवाजे पर वकील साहब की आवाज सुनायी दी ।

हड़बड़ाकर राज ने आनन्द का हाथ, हाथो में लिये ही कहा—"हाँ, मौसाजी"

"अच्छा । तुम क्या हाथ देख रही हो ? काफी झुलस गया है । कहीं जले पर हाथ मत लगा देना । चले आइये, मिस्टर व्यास । बेटी, अब तुम तो विमल के साथ घर जावो । मैं थोड़ी देर में आऊँगा । मुझे जरा मिस्टर व्यास से काम है ।"

इसके बाद आनन्द से बोले—"अब क्या हाल है आनन्द ?"

"ठीक हूँ पापा जी ।"

राज उठकर चली गयी और वकील साहब आनन्द से बातें करने लगे ।

१४

आनन्द अस्पताल से घर आ गया था और घर आये भी करीब एक सप्ताह हो गया था। पट्टियाँ करीब-करीब सभी खुल गयी थीं; लेकिन दो एक जगह, जहाँ घाव हो गये थे, अभी, पट्टियाँ बँधती थी। दिल्ली के आफ़िस से जो पत्र आया था, उसके अनुसार आनन्द को कई दिन पूर्व ही वहाँ जाकर काम सँभाल लेना चाहिये था और इसकी सूचना भी वकील साहब ने उस समय गाँव में पडे सेवादल के प्रधान शिविर मे भेज दी थी, लेकिन वह किन्ही कारणो से आनन्द को नही मिल सकी थी। इसी बीच आगवाली दुर्घटना हो गयी और वकील साहब ने आफिस को इस आशय का तार कर दिया कि आनन्द कुमार इस समय एक अग्नि-दुर्घटना के शिकार होकर अस्पताल में हैं; अतः पन्द्रह दिन बाद ही वहाँ आने योग्य हो सकेंगे।

आनन्द की स्थिति पर्याप्त सुधर गयी थी। वह इन दिनो थोडा-बहुत घूमने भी लगा था। आनन्द को जिस समय अस्पताल में लाकर दाखिल किया गया था, उस समय सभी लोग बुरी तरह घबरा उठे थे, लेकिन कही आनन्द के गॉव में बापू और लखनऊ में रमेश के पास सूचना भेजने पर वे लोग बुरी तरह घबडा न जायँ और कुछ डाक्टरो से स्थिति के बहुत ज्यादा खतरनाक न होने का आश्वासन पाकर, वकील साहब ने रमेश और बापू को न तो तार किया और न अन्य किसी प्रकार का पत्र ही लिखा था। जब आनन्द सुधरने लगा, तब संकेतात्मक-पत्र उन्होने अवश्य लिख दिये थे। और दो एक दिन बाद आनन्द से भी, उनको अपनी कुशलता का पत्र लिख देने का आग्रह कर दिया था।

वकील साहब के कथनानुसार, आज आनन्द रमेश और बापू को पत्र लिख चुकने के बाद उठकर अन्दर गया तो देखा कि रानी और माया, कुछ

खरीददारी के लिये, बाज़ार जाने को तैयार हो रही हैं। आनन्द को देखते ही रानी ने कहा—"मास्टर साहब, ज़रा आप भी कपड़े बदल डालिये।"

"क्यो ?"

"पापा अभी कोर्ट से लौटे नही हैं और हम लोग बाजार जा रहे है। कुछ चीजें खरीदनी हैं। आप रहेगे तो अच्छा रहेगा, अम्माँ ने भी यही कहा है।"

पहले आनन्द ने बडी आना-कानी की लेकिन तबतक वकीलिन आ गयी थी। वे बोली—"चले जाओ आनन्द ! लडकियाँ अकेली जायँ, ठीक नही है।"

लाचार आनन्द को रानी और माया के साथ बाज़ार जाना पडा। रानी को कुछ ऊन लेनी थी, कुछ कपडे लेने थे, एक सैण्डिल लेनी थी माँ के लिये, कुछ साड़ियाँ और ऊनी कोट धुलने के लिये देना था। कुछ अपने लिये भी सामान ले लेगा, आनन्द ने रास्ते में सोचा था। माया को भी कुछ खरीद देना चाहिये, उसके मन में आया था, मगर जेब की हालत देखते हुए उसे मन मार लेना पडा। आनन्द ने मन की इच्छा अवश्य दबा ली थी, लेकिन रानी के मन मे माया का ख्याल था। जब वह डेढ़ पौण्ड ऊन की बात करने लगी तो आनन्द ने पूछा भी "क्या करोगी इतनी ऊन का ? अभी परसाल तो तमाम स्वेटर बुने गये है।"

"इससे क्या, इस डेढ़ पौंड मे एक अपने लिये ब्लाउज़, एक माया के लिये, फिर विमल देखेगा तो मानेगा ? सो, जो बचेगी कुछ न कुछ काम आ ही जायेगी" रानी ने कहा फिर दूकानदार से बोली—"यह नही, हाँ वही रग, जो वो रखा है, निकाल दीजिये डेढ़ पौंड।"

कपडो की दूकान पर जब रानी माया से कपडे पसन्द कराने लगी तो आनन्द को अपने सामान की बात भूलकर, एक साडी और ब्लाउज़ का कपड़ा

माया के लिये भी खरीद देना पडा।

करीब दो घण्टो की खरीद-फ़रोख्त के बाद, जब घर लौटने की बात हो ही रही थी, तभी रानी ने कहा—"मास्टर साहब, अब तो कुछ पेट में पडना चाहिये। लडकियो का बाजार में खाना आपको क्योकर अच्छा लगेगा, पर भई, मै तो विना इसके एक कदम कही जाने से रही। क्यो माया ?

"तुम्हारी इच्छा ही है तो चलो।"

आनन्द रानी और माया को लेकर एक रेस्ट्रॉ में प्रवेश ही कर रहा था कि प्रवेश-द्वार पर अन्दर से निकलता हुआ जीवन मिल गया। आनन्द ने बहुत इन्कार करने पर भी उसे दुबारा पकड ही लिया। एक टेबिल के आस-पास कुर्सियो पर बैठ जाने के बाद आनन्द ने जीवन को माया का परिचय दिया। रानी की तो कोई बात ही नही थी। वह तो बहुत पहले से ही जीवन को जानती थी। वह यह भी जानती थी कि आज से दो ढ़ाई वर्ष पूर्व, जब वह कालेज में पढती थी, तब यह अगाहे-बगाहे मिल जाते थे। और उस समय चाहे यह चुप भी रहे, लेकिन साथ के लोग आवाज़े कसने में कभी नही चूकते थे। उसकी स्मृति में तो वह घटना भी थी, जब एकबार वह कालेज से लौट रही थी, साइकिल की चेन उतर गयी थी। वह बडी परेशान हो गयी थी। कमबख्त चेन चढती ही नही थी। तब उधर से जाते हुए यह अचानक उतर गये और उसकी ओर बढ़े थे। उस समय वह कुछ सकपका गई थी और इन्होने अपनी साइकिल-स्टैण्ड पर खडी करके कहा था—"आपको एतराज न हो तो मैं चढा दूँ।"

—हाँ है, है इतराज। आप से मतलब ? आप अपना रास्ता देखिये।' उसे गुस्सा आ गया था, लेकिन मन की बात ज़बान का ताला नही तोड सकी थी।

इसी बीच इन्होने चेन में हाथ लगा दिया था और उस चेन को, जिसको चढ़ाने की कोशिश में उसे कई मिनट लग गये थे, एक मिनट मे ही चढ़ा

दिया और उठकर हाथ झाडते हुए बोले—"जाइये।"

"धन्यवाद आपको।" उसने उसके हाथ में लगी कालिख को देखकर अपना, पहले ही काला हो गया, रूमाल बढाते हुए कहा था—"लीजिये, हाथ पोछ लीजिये। वैसे ही काला हो गया है।" इस पर उसने अपनी अँगुलियो से, बहुत सँभल कर धीरे से, पैंट की जेब से एक दुग्ध-धवल रूमाल निकालकर अँगुलियाँ रगड़ ली थी। और "ठीक है" कहता हुआ, बिना उसकी ओर देखे, बिना उसके उत्तर की प्रतीक्षा किये, अपनी चमकती साइकिल पर बैठकर चला गया था। उस समय जीवन उसे अच्छा लगा था। फिर उसने यह भी सोचा था—ऐसे व्यक्ति की सज्जनता पर मैंने सन्देह किया था!

इस घटना के बाद भी जीवन से दो-तीन बार उसकी मुलाकातें हुई हैं। विश्वविद्यालय में आये उसे दो महीने भी नही हुए थे कि जीवन ने एक दिन उसे रोककर बडी विनम्रता से कुछ कार्ड देकर वीमेन्स-हास्टेल मे बॉट देने को कहा था। उसके शब्द उसे अब तक याद है। "महीनो पहले हुई, उस छोटी सी मुलाकात का मै इतना बडा लाभ उठाऊँगा, आपने शायद ही सोचा हो।"

"कहिये, क्या बात है?" उसने कहा था। उसे जीवन का, कई लडकियो के साथ जाते हुए, यो रोक लेना अच्छा नही लगा था और साथ की लडकियॉ आगे भी तो बढ गयी थी। जैसे वह सोचती हो कि यहॉ पहले ही मिलने की बात होगी।

"एक कष्ट देना है आपको, अगर आप बुरा न मानें तो?" जीवन ने कहा था।

"कहिये भी तो।" वह झुँझला गयी थी।

"मेरा एक उम्मीदवार है, उसके ये कार्ड्स हैं। ज़रा डब्लू० एच० में बॉटने हैं।" जीवन ने कार्डो को एक गड्डी उसकी ओर बढाते हुए कहा

था—"अगर ज़रा भी हिचक या कोई आपत्ति हो तो रहने दीजिये, किसी दूसरे को दे दूँगा।"

"बाँट दूँगी।" कहकर उसने कार्ड ले लिये थे और आगे बढ़ गयी थी। जानबूझ कर उसने विशेष कोई बात न की थी।

बाद में उसने देखा था कि कई लडकियाँ वही कार्ड बाँट रही थी। और उनकी बातचीत में उसने जीवन का नाम सुना था। एक वो, क्या नाम है उसका? मर्सी! हाँ, मर्सी ही तो कह रही थी कि भई, दूसरेका हो तो फेंक भी दूँ। जीवन को जरा सा भी पता लग गया, तो मेरी तो बस आफ़त ही समझो। अपने दोस्त के लिये वे मेरी जान ही खा लेंगे—'मुझे तुमसे यह उम्मीद नही थी मर्सी! मैने तो कुछ सोचकर ही तुम्हे कार्ड दिये थे।' बाबा! तीन घण्टो तक शकराचार्य की फ़िलासफ़ी कौन सुनेगा?

उसने कुछ कार्ड बाँटे और बाकी फेंक दिये थे। दूसरे दिन जीवन ने फिर टोका था—"कार्ड कम तो नही पडे? और चाहिये क्या?" और उसके "नही" कहने पर—"आज आप रुक रही है न? देखिये, आज तो आपको रुकना ही चाहिये, आज तो वोटिंग है। असल में आप लोगो पर ही तो चुनाव निर्भर करता है। लडकियो के वोट तो सालिड पडते है।" आदि-आदि और अन्त में—" ''तो आप रुक रही हैं न? रुकिये ना! मेरी प्रार्थना पर ही सही।" वह रुक गयी थी और चलते समय न जाने कहाँ से आकर जीवन ने धन्यवाद भी दे दिया था फिर तीन चार दिन बाद बधाई भी दी थी।

''''एक दिन वह आनन्द के साथ, लाइब्रेरी के सामने खडी, बात कर रही थी कि जीवन उधर से निकला और आनन्द ने उसे रोक लिया था। इसके बाद, एक दिन जीवन आनन्द से मिलने के लिये बँगले पर आया था, तब वही तो पहले बाहर मिली थी। इसके बाद ही जीवन ने उससे मिलना, बोलना बन्द कर दिया था। एक दिन जब वह विश्वविद्यालय से घर जा रही थी, पान की दुकान पर खडे कुछ लडको ने छींटे कसे थे। और उसके कान में एक

तेज आवाज़ पडी थी—"ओफ् , जानते हो कौन थी ? आनन्द की सिस्टर। आव देखा न ताव, बस बरस पडे। अरे जरा देख सुनकर मुँह खोला करो" यह जीवन की आवाज थी।

जीवन रानी और आनन्द का सम्बन्ध जानता है; फिर भी बाहर उसे आनन्द की बहन ही कहता था।

इस प्रकार रानी के मन में जीवन के प्रति बड़ी अच्छी भावना थी और जीवन ही क्यो, आनन्द के प्रत्येक मित्र का वह आदर करती है। खैर, बात-चीत का दौर चल पडा।

मज़ा तो तब आया, जब जलपान कर चुकने के बाद आनन्द ने बैरे से बिल लाने को कहा और जीवन ने कहा कि ठीक है, चलो और आनन्द ने कहा —"क्यों .. ?" जीवन ने कहा—"हिसाब चलता है" और वह खड़ा हो गया। नही, नही करते हुये आनन्द ने बैरे से बिल लाने की जिद की तो जीवन ने काउन्टर पर बैठे एक स्थूलकाय बंगाली नवयुवक से कह दिया "ऐ अमोल, बिल मत भेजना, इसके दाम मेरे हिसाब में डाल दो। चलो आनन्द।" विवश होकर आनन्द चुपचाप बाहर आ गया।

बाहर रानी ने हँसते हुए कहा "जीवन जी, यह आब्लीगेशन किसके ऊपर है ? क्योकि चाय तो मैं पिलाने आयी थी।"

"आप भी क्या बात करती हैं। आप और आनन्द की तो बात ही नही, जब भी चाहूँगा, पकडकर खा लूँगा। और माया, वह तो छोटी बहिन है। उसे मुझसे खाने का अधिकार ही है।"

"देखा माया ? ऐसे है तुम्हारे जीवन भाई साहब ! यूँही नहीं खिलाया, आगे वसूल करने की भी पहले ही सोचे बैठे हैं।"

जीवन को छोडकर रानी की इस बात पर सब हँस पडे थे। आनन्द ने लक्ष्य किया कि जीवन आज भी कुछ उखड़ा-उखडा है।

"अब क्या घर जावोगे आनन्द ?" जीवन ने पूँछा।

"हाँ, क्यो, कोई बात ?"

"नहीं, ऐसे ही कहा। अगर कोई खास काम न हो तो रिक्शा कर दो इन लोगो को, ऑय। हम लोग जरा घूम-घाम ही ले। दो-चार दिन में तो तुम चले ही जावोगे। लेकिन नही, जावो तुम भी, मै भी कुछ देर घूमता हूँ फिर......... .."

"नही, मैं चलता हूँ तुम्हारे साथ।" आनन्द ने सोचा, जीवन ठीक ही कहता है, चार दिन बाद फिर कहाँ यह मिलेगा। उसने रिक्शा कर दिया और रानी-माया के चले जाने के बाद बोला—"चलो जीवन! कहाँ चल रहे हो ?"

रास्ते में जीवन ने एक दवाई खरीदी और बोला—"आनन्द, अगर यह दवाई घर पहुँचा कर, घूमने चला जाय तो कोई हर्ज है ?"

"नही-नही, चलो पहले घर ही चलें, लेकिन दवाई किसकी है ?"

"भाभी की।"

"क्या हुआ है ?"

"हार्ट-ट्रबुल्।"

फिर भाभी के विषय में ही बातें करते वे जीवन के घर तक पहुँचे थे। दवा देकर तथा एक सायकिल और लेकर जब चले तो जीवन बडी देर तक कुछ नही बोला। बडी देर बाद उसने मौन तोडा।

"आनन्द, आओ आज कही दूर चलें।"

"चलो, जहाँ मन हो।"

"चलो, आज शिवकोटी चलें।" जीवन ने सायकिल घुमाते हुए कहा।

बीच में यकायक जीवन ने सायकिल रोक दी तो आनन्द ने पूछा—"क्या बात है ?"

"जरा सिगरेट ले लूँ, नही तो वहाँ कहाँ धरी होंगी, अगर मिली भी तो लोग कैंची या खाकी ही दिखायेंगे" एक पान की दुकान की ओर बढ़ते हुए जीवन ने कहा।

सिगरेट लेने के बाद जीवन ने कहा—"हटाओ आनन्द, बेकार है, आओ लौट चलें।" और उसने मायकिल घुमा दी। लाचार आनन्द को भी घूमना पडा। सिविल लाइन्स में जब 'मधुपुरी काफ़ी हाउस' के सामने जीवन रुका तो आनन्द ने पूछा—"क्यो, क्या चाय पीने की इच्छा है ?"

"नही।"

"काफी ?"

"नही आनन्द, अगर तुमको कोई जरूरी काम हो तो थोडी देर बैठकर, चाहना तो चले जाना।"

"नही-नही मुझे कोई जल्दी नही है।"

"जल्दी नही है ?" जीवन ने कुछ ऐसे कहा जैसे वह स्वयं चाहता हो कि आनन्द चला जाय—"तो ठीक है आओ।"

प्रवेश-द्वार के पार्श्व में ही, प्लाइउड की दीवार से घिरी, छोटी सी जगह में लाउडस्पीकर पर ग्रामोफोन बज रहा था। जीवन उसके अन्दर गया, एक किनारे रखे रिकार्डस् में से उसने, दो-तीन मिनट में, एक रिकार्ड ढूँढ कर निकाला और बजाने वाले आदमी के हाथ मे एक चवन्नी फेकता हुआ बोला—"हर एक दूसरे रिकार्ड के बाद यही बजाना, समझे ?" इसके बाद आनन्द को लेता हुआ, हाल के एक किनारे लगे, जीने से ऊपर चढ़ गया। ऊपर दीवार के किनारे एक पंक्ति में प्लाइउड के सहारे छोटे-छोटे कक्ष कर दिये गये थे। करीब सभी कक्ष खाली थे क्योकि प्रायः परिवार के साथ आने वाले लोग ही यहाँ आते थे, लेकिन बीच के एक कक्ष से बात-चीत, हँसने और चम्मच-प्लेट की खनखनाहट आ रही थी। जीवन ने कहा—"आओ आनन्द, यही बैठे खुले में, जब वह खाली हो जायेगा तब वही बैठेगे।"

"वही क्यो ? सभी तो खाली हैं।"

"नही, आज वही बैठेंगे।"

"कोई विशेष बात ?"

"हाँ"

"क्या है ?"

"वही बैठकर बताऊँगा।" जीवन सामने पडे सोफे पर बैठ गया। आनन्द खडा होकर नीचे झाँकने लगा। हर टेबिल पर दो-चार आदमी।.... चुस्त झकाझक बेयरे । चाय, काफी, पॉच, मटर, पोटेट चाप, आमलेट, पोटेट चीप्स आदि के बीच हँसी, मजाक, धीरे-धीरे बातचीत, ठहाके, ऑख और हाथ के इशारे, सभी कुछ तो चल रहा था। कोने में दो-एक लोग बोतले खोले भी बैठे थे। अचानक बजता हुआ रिकार्ड बन्द हो गया, दूसरा तवा चढा। एक भयङ्कर अट्टहास की ध्वनि कैफे के शोर-सराबे के ऊपर, पानी पर तेल की रेखाओ की भॉति, तैर गयी, उसके बाद ही एक घायल आत्मा की उखडी सॉसो की सी, कोई अत्यधिक करुण इंग्लिश ट्यून उड चली। आनन्द नीचे देख रहा था। दो एक लोगो ने जरूर कुछ बात रोककर, कुछ मुँह रोककर, एक आध मिनट के लिये गौर फ़रमाया; लेकिन शेष लोगो पर कोई असर हुआ ही नही, गोया कोई रिकार्ड बज ही नही रहा था।

आनन्द ने जीवन को देखा। उसने दोनो मुट्ठियों में अपने बाल भींचे लिये थे, फिर टेबिल पर केहुनियॉ रखकर दोनो हथेलियो मे मुँह छिपा लिया।

"क्या बात है जीवन ?"

बैरा उधर से बिल लेकर गुजरा।

"कुछ नही आनन्द, तुम नीचे जाकर इस ट्यून को बन्द करा सकते हो ?"

"करा क्यो नहीं सकता। मगर क्यों ?"

"ऐसे ही आनन्द।"

"तो लो।" वह सीढ़ियाँ उतरने को हुआ।

"नही, रुको। बजने दो। मैं सुनूँगा।"

तबतक बीच के कक्ष से निकलकर कुछ लोग बाहर आये और नीचे उतर गये। उनके पीछे बेयरा प्लेट आदि उठा ले गया।

"आओ" और दोनो उसी में जा बैठे।

एक बैरा पानी लेकर आया।

"वाइन मीनू लाओ" जीवन गुर्राया सा।

बैरा नीचे चला गया।

आनन्द जीवन का मुँह देख रहा था। वह मत्थे पर हाथ रखे अँगुलियाँ बालो में छिपाये, दूसरे हाथ के नाखून से टेबिल के शीशे पर पानी की लकीरें खीच रहा था। उसी स्थिति में उसने कहा—

"आनन्द! तुम कुछ बोलोगे नही, समझे? आज तुम कुछ नही बोलोगे, कल जो चाहे कह लेना। वैसे मैं चाहता नही था, तुम मेरे साथ यहाँ आते और ।"

बेयरे ने मीनू लाकर सामने रख दिया।

"स्काच फोर पेग, एक प्लेट में दो अण्डो की आमलेट, और एक प्लेट पोटेट चाप, और क्या लोगे आनन्द, और कुछ नही।"

" ठीक है जावो तुम, देखो, यह पर्दा ठीक कर दो।"

"यस सर" पर्दा ठीक करता हुआ बेयरा चला गया।

जीवन ने हथेलियाँ मुँह पर रख ली और अँगुलियो के बीच से देखता हुआ बोला—"जानते हो, मैं इसी जगह क्यो आया?"

"मुझे क्या मालूम।"

"सुनोगे?"

"बताओगे तो जरूर सुनूँगा।"

जीवन ने सिगरेट सुलगायी। दूसरा रिकार्ड बज रहा था। बैरे ने आकर सोडा रखा, गिलास रखा, बोतल रखी फिर पेग से नाप कर चार

पेग गिलास में ढाल दी और सोडा खोलकर रख दिया। इसके बाद बोतल और पेग ट्रे में लेकर चला गया। जीवन ने गिलास उठाया, एक क्षण उसको हाथ मे ही घुमा-घुमाकर निहारा फिर टेबिल पर रख दिया, सोडा मिलाया और गिलास मुँह से लगा लिया। एक साँस में उसने आधे गिलास से कुछ ही कम खाली कर दिया।

आनन्द जीवन को हतप्रभ होकर देख रहा था। उसके मन में उठा कि इस समय सचमुच जीवन से कुछ कहना ठीक नही है, वह चुपचाप बैठा उसकी ओर दृष्टि किये रहा।

जीवन ने गिलास टेबिल पर पटक सा दिया। मुँह बनाया, आँखें मिचमिचाईं और सिगरेट का कश लेकर बोला—"तुम वैजयन्ती को तो जानते हो न? उस दिन परिचय कराया था।"

"हाँ-हाँ, उसके पहले भी पहचानता था।"

"हाँ, एक दिन यही बैठकर हमने घनिष्टता के पहले प्रयास किये थे। प्रारम्भिक परिचय और अनावश्यक शिष्टाचार के बन्धनो से आगे बढकर, निकटता प्राप्त करने की प्रथम उतावली प्रगट की थी। उसके बाद भी यह जगह कितनी ही बार हम दोनो की हँसी के गूँज उठती रही है। मै सिगरेट का धुआँ उसके मुँह पर छोड देता रहा हूँ और वह 'ऊँह' करके, हाथ से उस धुयें को जल्दी-जल्दी उडा देती रही है "बडे खराब आदमी हो, यह कहाँ की शराफत है?" सीने में अँगुली चुभोकर "छोड दो न इसे" कहती रही है। यो कोई औरत सिगरेट पिये, इस विचार में ही मुझे उबकाई आने लगती है; लेकिन मजाक-मजाक में कई बार मैंने जबरदस्ती उसके होठो से सिगरेट लगा दी थी, खाँसी से उसका मुँह लाल हो जाता, आँखो में आँसू आ जाते और मुझे बडा अच्छा लगता। मै उसकी पीठ सहला देता, आँखो के आँसू पोछ देता और हथेलियो में उसका मुँह उठाकर "क्या हाल है?' कहकर हँस देता रहा हूँ, हँसा देता रहा हूँ।"

जीवन ने दूसरी सिगरेट जलाई और घूँट-घूँटकर शराब पीने लगा। वही रिकार्ड फिर बज रहा था।

"यह दो साल पहले की बात बता रहा हूँ। कोई चीज़ थी जयन्ती में, जिसे मैं आजतक नही जान सका। उसके सामने मै सबको भूल गया था। इसी के पीछे मैंने मर्सी से बोलना छोड दिया था, उसने जयन्ती को गाली देकर बात जो की थी। आनन्द, जयन्ती को पाकर मुझे लगा था कि मेरी हसरतो का कारवाँ मजिल के निकट जा लगा है, शायद मेरा भटकना बन्द हो जाये। आनन्द, अपने जीवन मे मैंने कभी किसी को मिथ्या प्रोत्साहन नही दिया; लेकिन मैंने कभी किसी लडकी को इतना एक निष्ठ होकर चाहा भी नही। यो वह बहुत सुन्दर लडकी नही है, मर्सी उससे कही ज्यादा सुन्दर थी, लेकिन मैंने बताया न कि वैजयन्ती के स्वभाव, उसकी बातचीत, बच्चो की सी उसकी आदतें ...मुझ पर एक नशा हो गया था। यहो बैठकर कितनी ही बार हमने इस रिकार्ड को सुना था। वह कहा करती थी—"जीवन, हम लोग, मान लो, अलग भी हो गये तो इसी रिकार्ड को सुनकर एक दूसरे को याद कर लिया करेगे।"

जीवन ने गिलास खाली कर दिया। बेयरा आकर बाकी सामान रख गया। जीवन ने आमलेट अपनी ओर खीच लिया और चाप की प्लेट आनन्द की ओर खसका दी।

"तुम जानते हो इधर मैं कितना परेशान हूँ। महीनो से जब-तब मुलाकात होती है; लेकिन जानते हो आनन्द, मैंने कल क्या देखा? नही जानते? मत जानो, लेकिन तुम्हे तो जानना ही चाहिये, तुम दोस्त जो ठहरे। दोस्त हो न? तो सुनो ''तैयार हो न? कल मैंने देखा ...'' जीवन ने एक हिचकी ली।

"हाँ, कल मै यहाँ आया था। नीचे भीड थी, अतः यही ऊपर चला आया। सोचा, कही अकेले बैठकर काफ़ी पियूँगा। इसी के बगल से एक पेयर निकला और नीचे उतर गया। बेयरा समान उठाने आया तो धोखे

से उसने, बजाय बगल में घुसने के, यही का पर्दा झटके से खिसका दिया। आनन्द तुम सुन रहे हो न ? मैं वैसे ही ठिठक गया। जानते हो अन्दर कौन बैठा था ? बोलो ना कौन था ?" जीवन ने अपनी बन्द होती ऑखें खोली और कहा—"जयन्ती और बलराज।"

"बलराज !" आनन्द ने हाथ के चाकू से चाप के टुकडे करते हुए रुक कर कहा।

"हॉ-हॉ, बलराज। एक्साइज इन्सपेक्टर है। वैजयन्ती के बँगले के कम्पाउन्ड में ही एक ओर जो खपरैल पडी है, पहले उसी में रहता था।"

"अच्छा" आनन्द की ऑखें कुछ फैली।

"और बीच में बोतल खुली रखी थी। जयन्ती के हाथ में सिगरेट थी। मैं आगे बढ़ गया था। बगल के कक्ष में ही, बेयरे को काफी का आर्डर देकर, मैं खडा हो गया था, बैठने पर साफ़ सुनाई जो नही देता था। बातचीत चल रही थी।"

"लो उठाओ।"

"नही बलराज। बहुत ज्यादा है।"

"अच्छा बस।"

"नही, और निकाल लो अपने गिलास मे।"

"ओफ़्, अब ठीक है, पियो इसे।"

"वैसे अब भी ज्यादा है, खैर।"

"वैजयन्ती अब तुम्हे सिगरेट से खॉसी नही आती ?"

"न, पता नही क्यो, पहले तो बहुत आती थी। बलराज, बैरा क्या समझता होगा ?"

"अरे हमलोग क्या नये हैं उनके लिये, यहॉ तो रोज ही ऐसे लोग आते हैं।"

"फिर भी यह सब मुझे अच्छा नही लगता।"

"अच्छा इधर आवो वैजयन्ती।"

"नही, नही, मैं यही ठीक हूँ।"

"मेरा कहना मानो, तुम्हे मेरी कसम।"

"ओफ्, भई तुम तो बहुत परेशान करते हो, लो आ गयी बस। अब तो खुश हो न! अरे, अरे, ओफ्, उई, बड़े खराब हो तुम, मैं अपनी जगह ही ठीक। तुम तो भूखे बाघ लगते हो। सुनो, मैं पिक्चर नही जाऊँगी।"

"क्यो, मैंने तो टिकिट्स मँगा लिये हैं, खराब नही हो जायेंगे।"

"हो जॉय, वहॉ बड़ी देर लग जायेगी, मुझे घर भी तो लौटना है।"

"वैजयन्ती, तुम्हे लड़कपन की बातें याद हैं? जब मैने तुम्हें एक थप्पड मार दिया था।"

"याद क्यो नही, जब डैडी ने तुम्हे पीटा था और निकालते-निकालते छोडा था।"

"तब और आज का यह दिन, कितना अन्तर है!"

"आनन्द, मैने काफी ज्योंकी-त्यो छोड दी थी। इच्छा हुई थी, पहुँच कर एक भरपूर झापड जयन्ती के मुँह पर जमाकर और केवल एक अच्छी सी भारी गाली देकर नीचे उतर जाऊँ, लेकिन वह कर नही सका। टेबिल पर पैसे पटककर मैं नीचे उतर गया था। सीढ़ियो पर बेयरा मिला था। 'पैसे टेबिल पर हैं' कहकर मैं उतर आया था और जानते हो? तब भी यही रिकार्ड बज रहा था, जो अब बज रहा है।"

आनन्द जाने कहाँ से कहाँ पहुँच गया था—"सुनो जीवन, लेकिन उस दिन की बातें।"

"बाते थी।" जीवन ने कहा और सिगरेट पर लिखे अक्षरो को सिगरेट टेढ़ी करके पढ़ने लगा। बेरा बिल लेकर आ गया। जीवन ने बिल

चुकाया और उठ खडा हुआ । नीचे उतरकर बाजेवाले आदमी को डॉटता हुआ—"बन्द करो इस गाने को ।" बाहर आ गया ।

बाहर पान खाने के बाद जब वे पैदल ही आगे बढ़े तो कुछ देर की चुप्पी के बाद जीवन फिर बोला—"आनन्द, तुम क्या समझते हो कि जयन्ती के जाने से मै कमजोर पड जाऊँगा, झुक जाऊँगा, शोक करूँगा ? मैं तुम्हें बताये देता हूँ आनन्द ! तुम गलतफहमी में हो। भाड मे जाय वैजयन्ती, हम भी जाये, तुम भी जाओ, मै किसी की परवाह नही करता हूँ । उस साली की परवाह करूँगा ? आनन्द ! कहो तो पचास दिखा दूँ, पचास, जयन्ती से अच्छी आकर तुम्हारे चरण न चूम लें तो मेरा जीवन नाम बदल देना । तुम सोचना भी नही । शराब ? मैंने पीली वो मस्ती के लिये पीली, पीली, पीली, नही पी, नही पी । इससे क्या ।"

आनन्द ने कहा ···"जीवन तुम नशे में आ रहे हो, घर जावोगे तो···"

जीवन चुप हो गया । जैसे वह सोच रहा हो कि क्या सचमुच नशे में है फिर बोला—"नहीं बात ही ऐसी थी कि कुछ कहे बिना नही रहा गया । घर में खाना मनाकर आया हूँ । जब तक घूमता हूँ, घूमता हूँ फिर जाकर कमरे में सो जाऊँगा ।"

आनन्द ने जीवन का यह रूप कभी नही देखा था—देखा क्या, सोचा भी नही था । वह बहुत कुछ कहना चाहता था; लेकिन वह अवसर खोज रहा था ।

"वैजयन्ती एक ऐसी लडकी थी, जिसके लिये मेरे एकान्त के कितने ही क्षण खो गये थे ।"

आनन्द चुपचाप चल रहा था अचानक जीवन ने सायकिल स्टैण्ड पर खडी की "जरा एक मिन्ट···हाँ लघुशंका ।"

आगे बढ़े तो जीवन बोला—"आनन्द, एक औरत दो आदमियो से प्रेम कर सकती है ?"

"न"

"लेकिन एक आदमी को तो लगता है कि वह दो से प्रेम करता है।"

"लगता भर है, क्योंकि उसकी दृष्टि में प्रेम से ज्यादा मांसलता का नशा होता है, जब कि सत्यता यह होती है कि या तो वह एक से प्यार करता है या किसी को नहीं।"

जीवन फिर कुछ देर चुप रहा। बीच-बीच में उसे फिट् से आते, तो वह बोलने लगता। एक बार लगा कि वह रो देगा, लेकिन रोया नही—"आनन्द, जयन्ती को ऐसा नही करना चाहिए था।"

"जीवन, जयन्ती ने जो किया, सो किया, लेकिन तुम क्या समझते हो कि शराब पीने से तुम जयन्ती को भूल जावोगे, तुम्हारा गम हल्का हो जायेगा ? मुझे जवाब दो जीवन।"

जीवन ने कोई उत्तर नही दिया।

"मान लिया कि अपने को झूठा सन्तोष देने के लिये, तुम कह सकते हो कि थोडी देर के लिये तो भूल ही जाऊँगा, जो कि स्वयं एक मिथ्या तर्क होगा। फिर सुबह या जब नशा उतरेगा, तब तो याद आयेगी ही और तब यह भी याद आयेगा कि फलॉ को भूलने के लिये ही मैंने सुरापान किया था और उसकी स्मृति तो पहले से अधिक मर्मवेधी हो उठी है, घाव कसक उठा है। तब ? जीवन, इस तरह से तो मन के अन्दर का घाव पक जायेगा और अन्दर ही अन्दर मवाद फैलेगी। यह कितना खतरनाक होगा, स्वयं समझने की बात है, बताने की नही।"

जीवन ऐसा चुपचाप था मानो अभी तक उसके बोलने की बारी थी और अब आनन्द की है।

"जीवन, अपने चारो ओर परेशानियो, उलझनो और अन्तर्द्वन्द का जो घुँटन से भरा हुआ वातावरण तुम अनुभव कर रहे हो, उसमें परिस्थितियो का जो हाथ है, वह तो है ही, लेकिन तुम्हारा भी कुछ कम नही है।

समझते बूझते हुए भी, अपने चारो ओर, तुमने जिस कृत्रिम वातावरण को सृष्टि कर ली है, वही तुम्हे खाये जा रहा है। तुमने अपनी जान को किस बुरी तरह फँसा रखा है, मैं सोच नही पाता। कीचड के इस आथाह सागर में, मैं तुम्हे मुँह गाढ़े नही रहने देना चाहता। कोरी भावुकता के दुर्बल प्रवाह में समर्थण कर देना, नैतिक पतन और तबाही को निमंत्रण देना है जीवन।"

"आनन्द, तुम्हें आज मैं उपदेश सुनाने के लिये अपने साथ नही लाया हूँ। अगर तुम यह समझते हो कि जो कुछ हुआ और जो कुछ हो रहा है, उसमें सारा दोष मेरा ही है, तो अपनी सहानुभूति और अपना उपदेश अपने पास रखो, मुझे नही चाहिये। आनन्द, जब तक मैं इसका प्रतिकार नही कर लूँगा, मेरे सीने के अन्दर सुलती हुई भट्ठी शान्त नही हो सकती।"

"तो ठीक है जीवन, तुम प्रतिकार की भावना में पतन के अन्धकूप में अपने को गिराते जावो और दूसरो को अपने आँसू दिखाते रहो, अपने सीने की भट्ठी दिखाते रहो और अपने को सर्वनाश के रास्ते पर कर लो; लेकिन मैं अपनी आँखो से वह नही देख सकूँगा। अगर तुम्हे मुझसे कुछ भी मोह हो, तो मुझे यह सह्य नही होगा कि आज के बाद तुम्हें फिर कभी इसी स्थिति में देखूँ या सुनूँ। जाने क्यो, मैं वहाँ, जहाँ तुम पतन का कीचड अपने गले के नीचे उतार रहे थे, विरोध नही कर सका था; लेकिन अगर यह दुबारा घटित हुआ, तो मुझे कहते हुये दुःख होता है कि अपने और मेरे सम्बन्धो का सूत्र बीच से दो समझ लेना।"

आनन्द कहने को तो कह गया था; लेकिन वह जानता था कि अन्तिम वाक्य में कितना बल है। यही वह सोचा रहा था कि जीवन बोला—"ठीक है, जब तुम यही सोच बैठे हो तो ठीक है, मुझे क्या शिकायत हो सकती हैं, लेकिन आनन्द, आज तो जरा मेरे साथ घर तक चलो, मुझे घर के फाटक तक पहुँचा कर लौट जाना, कि नही, ऊँ" अपने कथन की समाप्ति पर जीवन चौंक उठा।

आनन्द ने जीवन का चौंकना देखा था और तत्क्षण ही यह भी देख लिया था कि सामने के बँगले से वैजयन्ती निकली और फिर रिक्शे के लिये

इधर-उधर देखती हुई, इसी ओर बढी चली आ रही है। पीछे से एक रिक्शा आ रहा था। वैजयन्ती ने उसे रोका और उस पर बैठ गयी। रिक्शा जब पास आया, तो जीवन ने कुछ छिपने की सी चेष्टा की; लेकिन आनन्द पर दृष्टि पडते ही वैजयन्ती जरा सा झुकी, तो जीवन दिखाई ही पड गया।

"जरा रोको रिक्शे वाले। अरे, नमस्ते जीवन जी। कहाँ घूम रहे हैं। आप तो दिखाई ही नही पडते। उस दिन मीटिंग में आप आये नही। ड्रामे के लिये हम लोगो ने निर्णय कर लिया है। उस दिन बडो प्रतीक्षा की मैने आपकी और मै क्या सभी लोग आपका इन्तजार कर रहे थे।" कहती हुई वैजयन्ती रिक्शे से उतर पडी।

"हॉ, एक काम पड गया था फिर सोचा क्या करूँगा जाकर के, मेरे न जाने से कोई काम तो रुकने वाला था नही आप लोगो का।" जीवन ने कहा। उसने धीरे से सायकिल स्टैण्ड पर खडी कर दी थी। अब वह वैजयन्ती की ओर बढा।

"वाह, आप भी क्या बात करते हैं। अरे और लोगो की बात छोडिये; लेकिन मुझसे तो आपने उस मीटिंग मे मिलने का वादा किया था।"

"वादा! खैर छोडिये, लीजिये सिगरेट पीजिये।" सिगरेट का पैकेट खोलकर आगे बढाते हुए जीवन ने कहा। जीवन के हाथ कुछ कॉप से रहे थे। वैजयन्ती चौक उठी। जीवन ने बात आगे बढाई—"लीजिये, लीजिये, हिचकने की कोई बात नही, यहॉ सब अपने ही हैं।" कहकर जीवन हँसा सा।

"आप भी क्या मजाक करते हैं जीवन जी।" वैजयन्ती भी कुछ हँसी सी।

"मजाक! और यहॉ आपकी अधिक क्या सेवा कर सकता हूँ। अब तो आपको आग्रह मानना ही चाहिए, फिर अब तो आपको खॉसी भी नही आती सिगरेट पीने से।"

"जीवन!" आनन्द ने डपटा।

"प्लीज ! भगवान के लिये खामोश रहो थोडी देर, आनन्द ।"

वैजयन्ती घबडा सी गयी । बात क्या है, उसकी समझ में कुछ नहीं आया; लेकिन मन के चोर ने सिर उचकाया, तो वह अन्दर-ही-अन्दर सिहर गयी ।

"यहाँ बाहर पीने में शर्म लगती है ! अच्छी बात है, लगनी भी चाहिये ।" जीवन ने नयी सिगरेट जलाकर पैकेट जेब में डाल लिया ।

वैजयन्ती रिक्शे की ओर देखने लगी थी । वह सामने जरा हटकर लगे एक नल पर पानी पीने चला गया था । वह सोच रही थी कि वह बेकार ही रुक गयी ।

"आज तुम कैसी बातें कर रहे हो जीवन ।" वैजयन्ती ने अपने स्वर को भरसक मधुर बनाते हुए कहा ।

"क्यो, अब क्या मेरी बातें भी अच्छी नही लगती और (हिचकी) ठीक है, क्यो अच्छी लगेंगी !" जीवन के कथन में एक व्यग, जो लगातार उभरता जा रहा था, आनन्द और वैजयन्ती दोनो ने लक्ष्य कर लिया था; लेकिन जीवन इसकी ओर बिलकुल ध्यान नही दे रहा था । कथन के बीच मे, जब जीवन को हिचकी आ गयी और उसके मुँह से निकली गन्ध वैजयन्ती के नासा रन्ध्रो तक पहुँची, तो वह एक कदम पीछे हटकर बोली—"जीवन, तुमने आज शराब पी रखी है, तभी आज तुम ऐसी-वैसी बात कर रहे हो । तुम नशे में हो जीवन ।" कथन के अन्त में उसने बडी ही सन्दिग्ध दृष्टि से आनन्द की ओर देखा, जैसे आनन्द ही खुद शराब पीकर आया हो और जीवन को शराब पिलाकर यहाँ ले आया हो ।

"बिलकुल ठीक कहा, जयन्ती ओफ़, आई एम सारी, आई मीन वैजयन्ती जी, आपने इतनी जल्दी समझ लिया, दाद देता हूँ आपकी समझदारी की । फिर आप क्यो न समझेंगी, आप तो वाइन की स्मेल जानती हैं, उसका टेस्ट जानती हैं, क्यों वैजयन्ती जी ! मैं गलत कह रहा हूँ !"

वैजयन्ती स्तब्ध रह गयी थी, अन्दर-अन्दर अस्त-व्यस्त होगयी थी,। घबडाहट के चिह्न उसके मुँह पर उभर आये थे।

"साहब" रिक्शेवाले ने आवाज दी। उसको देर हो रही थी।

जेब से एक इकन्नी फेंकते हुए जीवन गुर्राया—"क्या बकते हो, जाओ, नही चाहिये रिक्शा।"

"नही-नही" वैजयन्ती ने घबडाकर कहा। रिक्शावाला ठिठक गया।

"जाओ, मैं कहता हूँ।" जीवन दहाडा सा।

"हाँ तो वैजयन्ती जी, मैंने शराब पी है, लेकिन इसमे क्या कोई एतराज की बात है? मैं समझतता हूँ कि इसमें आपको तो कोई एतराज नही होना चाहिये, क्योकि हम दोनो तो एक ही राह के राही हैं। अन्तर तो बस इतना ही है कि मैं तुम्हारी अपेक्षाकृत कुछ खुलकर पीता हूँ और अपनी इच्छा से, दूसरो के रोकने के बावजूद, पीता हूँ और आपको छिपकर, दूसरो के आग्रह पर, विवश होकर पीनी पडती है।"

वैजयन्ती अब तक सकुचायी, घबरायी और सहमी हुई थी, लेकिन अब वह क्रोध से काँपने लगी।

"जीवन! जरा ज़बान सँभाल कर बोलो। तुम्हे इस तरह मेरा अपमान करने का कोई अधिकार नही। तुमको शर्म नही आती, शराब पीकर एक शरीफ घर की लडकी को इस तरह गालियाँ देते हुए?"

"वैजयन्ती जी, वेश्याओ का कोई मान नही होता है, जो उनका अपमान हो सके, समझी आप। बडे शरीफ़ घर की लडकी हैं आप। बडा ख्याल है आपको अपनी शराफत का। यह ख्याल उस समय कहाँ गया था, जब कल शाम को सरेआम मधुपुरी में सिगरेट के धुएँ और शराब की सुगन्धि के ऊपर बलराज से प्रेम-संलाप चल रहा था?"

"झूठ, सरासर झूठ है यह; लेकिन अब मुझे तुम्हारी शक्ल से नफरत हो चली है जीवन। कितना प्रेम था तुम्हारे लिये मेरे मन में। ओफ,

लेकिन तुम्हारे आज के इस नीच प्रदर्शन ने मेरा मन तुम्हारे प्रति घृणा से भर दिया है। जिसके लिये मैं हर तरह बदनाम हो गयी, फिर भी जिसके सशक्त प्रेम की कल्पना में मैं सब कुछ सहती आई, वही मुझे वेश्या कहे वही ··।" वैजयन्ती की ऑखो में ऑसू आ गये। वह सिसक उठी।

अन्धेरा घना हो गया था। वैजयन्ती के बँगले के सामने की यह सडक, जब भरी दोपहर मे सूनी पडी रहती है, तो इस समय का क्या पूछना। फिर भी जब तब एक-दो आदमी, एक-आध सायकिल या मोटर निकल ही जाती थी।

"शटअप्" जीवन चिल्लाया—"जी में आता है, थूक दूँ तुम्हारे मुँह पर। खबरदार, जो कभी आज से इस तरह की बात निकाली। मुझको स्वांग दिखाती हो?" जीवन ने आने जाने वालो की बिल्कुल परवाह न करते हुए लपककर वैजयन्ती को कन्धो से दोनो हाथो मे पकड लिया—"और मैं झूठ कहता हूँ? नीच कही की। मैंने अपनी इन्ही आँखो से कल तुम्हे देखा था, इन्ही ऑखो से, जिन ऑखो मे तुम एक सपने की भॉति लहराया करती थी। मैं नही जानता था कि तुम्हारी इन ऑखो की चमक में वासना है, एक कामुक उत्तेजना है, सेक्स की भूख है। तुम्हे दूसरी लडकियो से कुछ अलग समझता था न, इसी से एक चुम्बन तक से तुम्हे अछूता रखा था। क्या इसी कारण · ।" अत्यधिक उत्तेजना, आवेश और प्रतिकार करने की भावना से भर उठा जीवन हॉफ गया।

" न सह्य हो रहा हो, तो चिल्ला दो, आवाज लगावो न साहस हो तो। इस समय तो सभी तुम्हारी मदद करेंगे। तुम एक शरीफ़जादी, मैं एक लुच्चा-लफंगा, शराबी, जो किसी को तृप्ति के नाम पर एक चुम्बन नही दे सका और उसे विवश होकर दूसरे का आश्रय लेना पडा क्यो? वाहरी विवशता।" जीवन खुलकर हँसा।

"हाँ, तो क्या इसी कारण····" जीवन ने पूर्व वाक्य दोहराया—"चाहो तो वह भी कर सकता हूँ" जीवन ने बाहो में दबोचकर वैजयन्ती के होठों

के निकट अपने होठ लाते हुए कहा—"लेकिन, नहीं, अब तुम में रह ही क्या गया है।" जीवन ने वैजयन्ती को छोड दिया।

"जाइये आप कहाँ जा रही थी ? वही कल के स्थान पर न ? जाइये, जाइये, अब आप निश्चिन्त रहिये, डरिये नही, मैं कभी एक शब्द नहीं बोलूँगा, एक दृष्टि उठाकर नही देखूँगा। चलो आनन्द । अरे आनन्द, कहाँ हो तुम ?" कथन के अन्तिम वाक्यो में उसका स्वर कमजोर पड़ गया था। और जाती हुई ट्रक की रोशनी में वैजयन्ती का चेहरा श्याम होकर, श्वेत पड गया था, जिसे जीवन ने देख लिया था। वह निर्जीव होकर, मूक खडी-खडी कॉप रही थी। कुछ देर पहले आए ऑसू अब सूख गये थे। कल्पना से परे, आशा से परे और आशंका से परे किसी घटना के घट जाने पर, जो स्थिति हो जाती है, वही स्थिति वैजयन्ती की हो गयी थी।

आनन्द पहले खडा दोनों की बात सुनता रहा, फिर कुछ सोचकर कि बातें ही तो हो रही हैं, वह थोडा सा परे हट गया। बीच में जब जीवन दो-एक बार जोर से चिल्लाया तो वह किसी आशंका से चौक उठा। यह सारी घटना यो उसे उचित नही लग रही थी, लेकिन पता नही क्यो वह मन से विरोध भी नही कर पा रहा था। उसे लगता कि जीवन ठीक कर रहा था। ऐसी लडकियो के लिये यही दण्ड है। अन्त में जीवन जब उत्तेजना के चरम पर पहुँच गया, तो अब अनर्थ हुआ, समझकर वह जीवन की ओर बढा, लेकिन दूसरे ही क्षण जीवन ने स्वयं वैयजन्ती को छोड दिया था।

"ये क्या हूँ मैं, कुछ दिखाई भी कम पडने लगा क्या ?" आनन्द ने उसके बगल से कहा।

"जाइये आप, देखती क्या हैं ? चलो आनन्द।" सायकिल हाथ में लेकर वह आनन्द के साथ चल दिया। कुछ कदम चलकर जीवन फिर पलटकर खडा हो गया। वैजयन्ती अपने बँगले की ओर तेज़ कदमो से चली जा रही थी। जीवन हल्के अँधेरे में दृष्टि गडाये उसे अपलक देखता रहा, फिर घूमकर चल दिया। दो कदम बाद ही उसने दो रिक्शो को

आवाज दी और एक पर सायकिलें रखकर, दूसरे पर आनन्द को लेकर बैठ गया ।

"आनन्द, अब तुम्हें मुझसे सम्बन्ध तोडने की स्थिति में नही आना पडेगा ।"

"तुम चुप क्यो हो आनन्द ? क्या मैने वैजयन्ती के साथ जो बर्ताव किया वह नहीं करना चाहिये था ?"

"मैं नही जानता आनन्द, मैंने अच्छा किया या बुरा । लेकिन चाहे तुम इसे मेरी कितनी ही बडी कमज़ोरी क्यो न समझो, यह मुझसे कभी न कभी हो ही जाता, मैं इसे पचा नही सकता था ।"

"ठीक ही रहा" कुछ सोचते-सोचते आनन्द ने कह दिया ।

"नही आनन्द, मैंने बहुत गलत काम किया । मुझे ऐसा नही करना चाहिये था । जब मैने ही हर दृष्टि से उस बेचारी का साथ नही दिया, तब इस शिकवे का सवाल ही क्यो उठा ? उस समय मुझे क्या हो गया था आनन्द, तुमने मुझे जबरदस्ती वहाँ से क्यो नही हटा लिया ? ज़िन्दगी में जो काम कभी नही किया था, वह आज कर डाला, फिर भी मुझे शान्ति क्यो नही मिल रही है ? क्यो मेरे मन में एक भयंकर हलचल मची है ? कुछ बताओ आनन्द ?"

जीवन ने आनन्द के गले में एक हाथ डालकर अपना चेहरा उसके बायें सीने से सटा दिया । और जब आँख के आँसू, उसका दायाँ हाथ अपने हाथ में पकड़े, आनन्द के हाथ पर टपक पडे, तो आनन्द चौंक उठा ।

१५

दिल्ली आकर पहले चार-छै दिन आनन्द को बहुत खले थे। आफ़िस से वह लौटकर आता और पलँग पर पड रहता। कामेश्वर ने कहा भी कि चलो घूम आयें, तो 'यहीं अब तो हूँ, घूमूँगा ही।' कहकर वह टाल गया। उसे दिन भर इलाहाबाद की, माया की, रानी की, वकील साहब की याद आती थी। और रन्जना जब-त्ब उसकी आँखो में ही घूम जाती थी। रात वाली गाडी से उसे आना था। दोपहर मे वह राज के पास गया था। मौसी अन्दर सो रही थी। राज ने बताया कि कल शाम से उन्हें हरारत है और दोनो अन्दर कमरे में बैठकर बातें करने लगे थे।

"आज मैं जा रहा हूँ राज!"

"जानती हूँ।"

"भैया से कुछ कहना है?"

"कहना क्या, अम्मा की तबियत बता देना।"

वह कुछ देर चुप बैठा रहा फिर बोला—"राज, जरा मंगल को बुलाओ।"

"क्यो, क्या काम है?"

"जरा पान मँगवाऊँगा।"

"अच्छा।" राज उठकर बाहर गयी और मंगल से पान लाने को कह-कर लौट आयी।

"पता नही दिल्ली में कैसा लगे।"

"लगना क्या, आराम से घूमना। दिल्ली तो राजधानी है। उसकी तो रौनक ही दूसरी है। और भइया के आफ़िस में तो लेडीज भी हैं; किसी से दोस्ती कर लेना, शामें आबाद रहा करेंगी।"

"राज !"

"क्यो गलत कह रही हूँ क्या ?" राज हँसी सी। फिर बोली—"माया यही रहेगी।"

"हाँ, फिलहाल तो यही है।"

"ठीक है। यहाँ रहेगी, अच्छा रहेगा।"

"राज, पहले एक निश्चित मंजिल थी, एक सुलझा हुआ रास्ता था पर अब तो···· "

"क्यो अब क्या ?"

"डरता हूँ कि कही जो होने जा रहा है ? वही होकर न रह जाय।"

राज ने इसका कुछ जवाब नही दिया फिर उसी ने कहा—"और हाँ राज, कल वकील साहब ने एक प्रकाशक से एक सेलेक्शन और एक पुस्तक का कन्ट्रैक्ट करा दिया है।"

"बडा अच्छा है।"

"हाँ, बाद में जो कुछ फायदा होगा, सो तो होगा ही। फिलहाल समय बिताने का यह एक अच्छा साधन रहेगा।"

"क्यो, कुछ एडवान्स भी तो मिला होगा ?"

"हाँ दो सौ।"

इसके बाद कुछ और बातें होने लगी। अचानक राज ने कहा—"एक मिनट।" और उठकर उसने आलमारी खोली और एक कागज़ का डिब्बा लाकर मेज पर रख दिया।

"क्या है इसमें ?"

"कुछ नही, यूंही है। इसे लेते जाना।"

"आखिर है क्या ?" उसने डिब्बा खोला—दो पैड, दो पैकेट लिफ़ाफ़े, एक बढ़िया डायरी, राज का अपना फाउन्टेनपेन और नीचे एक जेन रूमाल।

"यह क्या ?"

"क्यो जरूरत नही पडेगी। तुम्हारा क्या, तुम बहाना भी तो बना सकते हो।"

उसको राज का उतरा हुआ मुँह देखकर हँसी आ गयी थी।

"ऐसे नही बना सकता ? फिर तुम्हारा सामान भी तो अधूरा है। इसमें एक तो फाउन्टेनपेन की स्याही नही है, दूसरे लिफ़ाफ़ो पर टिकट नही हैं। खैर, यह फाउन्टेनपेन क्या करूँगा ?"

"क्यो तुम्हें इसकी निब तो बहुत अच्छी लगती है ?"

"अरे, तो उससे क्या ! तुम क्या करोगी ? रखो इसे।" उसने फाउन्टेन पेन निकाल दिया।

"नही, कल मैं दूसरा खरीद लाई हूँ।"

"उससे क्या। इसे भी रखो।" उसके स्वर में एक प्रकार का अधिकार सा था।

"मानो आनन्द। कम से कम आज तो ज़िद न करो।"

"अजीब बात है। लेकिन यह डायरी !"

"देखूँगी कि तुम क्या लिखते हो। यो दूसरो की डायरी देखनी नहीं चाहिये, लेकिन मैं देखूँगी।" कहते हुए राज ने खुद ही डिब्बा बन्द कर दिया "कल जीवन जी मिल गये थे, जब मैं ये खरीद रही थी फिर उन्होने ही अपनी पसन्द से खरीदवाये।"

"अच्छा ! लेकिन एक पैड तो निकाल ही लो।"

"क्या करूँगी ? मेरे पास हैं।"

तब तक माँ ने राज को आवाज दी और दोनो उठकर उनके पास गये। आनन्द उनकी चारपायी पर ही बैठ गया।

"कल जा रहे हो आनन्द ?"

"नही मौसी, आज रात को।"

"अच्छा! मुझे तो कल शाम से ही बुखार आ गया है। देखो, अब कितना है।"

सामने स्टूल पर दो शीशियो के बीच मे थर्मामीटर रखा था। उसने उसे खोलकर मौसी के मुँह में देते हुए कहा—"हाँ अभी राज ने बताया।"

थर्मामीटर मुँह से निकालकर देखा, तापमान निन्नानबे बिन्दु कुछ था। उसने थर्मामीटर यथा स्थान रख दिया और बाते करने लगा। तब तक मंगल पान लेकर आ गया।

मौसी ने देखा तो इतना भर कहा—"राज, पान तो रखे थे लगा देती।"

"माँ, आनन्द को बज़ार ही के पान अच्छे लगते हैं।"

"नही! नही!! मैंने कब कहा ?" उसने कुछ ऐसे ढंग से कहा, मानो राज ने पहले घर मे ही पान लगा देने को कहा हो और उसी ने मना कर दिया हो।

उसके कहने के ढंग पर मौसी हँसी—"अरे तो क्या हुआ।" फिर वे कामेश्वर आदि के विषय में बाते करने लगी थी। बीच में राज ने टोका—"अम्मा, कहिये तो रानी के साथ मैं भी आनन्द को विदा कर आऊँ। तुम्हारी तबियत सुबह से तो काफी अच्छी है।"

"कर आओ; लेकिन देर काफी हो जायेगी।"

"मौसा जी से कह दूँगी कि पहले मुझे घर उतार दीजिये।"

"तब ठीक है।"

थोडी देर बाद जब वह उठा तो राज उसे बाहर तक छोडने आयी थी ।

"हाँ राज, कुछ किताबें दे दो। सोचता हूँ, कुछ इधर के उपन्यास ही पढ़ डालूँ ।"

"ले लीजिये न ।"

मंगल से रिक्शा लाने को कहकर वह राज के कमरे में गया । राज को पुस्तकें खरीदकर पढने का बडा शौक था । उसके पास काफी पुस्तकें हो गयी थी । माँ कभी विरोध सा भी करती, तो वह अपने कामेश्वर दादा से रुपये माँग लेती थी और कामेश्वर ने इस आदत को कभी भी निरुत्साहित नही किया ।

आनन्द पुस्तकें देखता रहा, बीच-बीच में निकालकर रखता भी रहा । राज पीछे खडी उसकी पीठ पर अँगुलियो से रेखाएँ खीचती रही ।

तीन-चार पुस्तकें निकालकर उसने अलमारी बन्द कर दी—"आवो चलें । "

कमरे से बाहर निकले ही थे कि राज बोली—'अरे' और लौट-कर, डिब्बा लाकर देती हुई बोली—"इसे क्या जानबूझकर छोड जाना चाहते हो ।"

"नही-नही" आनन्द ने दूसरे हाथ से डिब्बा पकड लिया—"वाह अच्छा बोझ हो गया है ।" और वह घूमा ही था कि राज ने कहा—"रुको"

वह रुक गया ।

राज ने कन्धे की धोती मत्थे पर चढायी और फिर बैठ कर आनन्द के पैर छू लिये ।

"राज !" एक सेकेण्ड में वह न जाने किस भाव से भर उठा था—"यह क्या किया ।"

"कुछ नही आनन्द, तुम्हे टोकना नही चाहिये था । क्या पता स्टेशन पर मौका मिलता-न-मिलता ।" वह अपने आँसू छिपा रही थी ।

"राज" उसने एक हाथ में पुस्तकें और दूसरे में डिब्बा सँभाले, अपनी बाहुओ में राज को भर लिया। राज एक सहमी हुई कबूतरी की तरह उसके सीने से चिपक गयी।

आनन्द का मन भर उठा—"कमजोर न बनो रंजना" उसने राज के बाल चूम लिये। "चलो देखो, रिक्शा आ गया।"

दोनो बाहर आये। वह रिक्शे पर बैठ गया था—"अच्छा तो मैं रानी से कह दूँगा। वह तुम्हे बुला लेगी।"

"हाँ"

रिक्शा चल दिया था। उसने घूमकर पीछे से देखा था। राज वही खडी उसे देख रही थी। वह सोचने लगा था कि प्यार मे इन्सान सचमुच कितना बच्चा सा हो उठता है; सारी डिग्रियाँ, सारी शिक्षा और सारे अनुभव कितने छोटे हो जाते हैं कि एक ओर धरे रहते है।

भरोस के साथ सब समान स्टेशन भेज दिया गया था और सबके साथ वकील साहब राज को लेते हुए स्टेशन पहुँचे। प्लेटफार्म पर जीवन पहले से हाथ में एक पत्रिका मोडकर लिये, सिगरेट पीता खडा था। इन लोगो को देखा, तो सिगरेट फेककर तुरन्त आकर मिल गया। प्लेटफार्म पर आये दो मिनट भी नही बीता था कि गाड़ी आ गई। भीड़ काफ़ी थी। अन्त में एक डिब्बे में सामान रखा गया। बैठने लायक जगह बनायी गयी। दो और आदमियो को उठाकर, होल्डाल खोल दिया गया और फिर उन्हें भी उसी पर बिठा देने के बाद आनन्द बाहर आ गया।

माया आज सुबह से ही मुँह लटकाये थी। उसने माया से कहा था—"माया, देखो रानी जीजी का कहना मानना। समझी न? तुम भी रानी जरा इसका ख्याल रखना।"

"अब यह सब भी आप समझायेंगे !" राज ने हँसकर कहा था और वकील साहब भी हँसने लगे थे। दो-चार इधर-उधर की बातें हुईं कि सीटी हो गयी।

जीवन में पहली बार उसने झुककर वकील साहब के चरण छुए।

"सुखी रहो बेटा !" वकील साहब ने उसे सीने से लगा लिया—"खुश होकर जाओ और डटकर काम करो। उन किताबो का भी काम जरा जल्दी निबटाना, अच्छा। मन अगर ज्यादा उचटे न, तो बीच में दो-एक दिन के लिये चक्कर मार जाना। जाओ।"

"जी" गाडी रेंगी। वह चढ़कर खिडकी पर खडा हो गया। "जीवन, अपना हाल लिखते रहना।" रूमाल हिले, हिलते रहे। जब गाडी ने मोड़ लिया, तो वह अपनी जगह पर आकर बैठ गया। उसने लक्ष्य किया कि डिब्बे के कोने के तीन-चार नवयुवक उसी की ओर देखकर कुछ बातें कर रहे हैं। फिर उसने ग्रीन कलर की बात सुनी, तब वह समझ गया कि उनकी बात-चीत का आकर्षण वह नहीं, लडकियाँ थी, क्योकि माया ने हरी साडी पहन रखी थी। और मुस्कराकर उसने पैण्ट से सिगरेट निकालकर जला ली थी। वह सिगरेट बहुत कम पीता है, लेकिन सफर आदि मे और खासकर रात के सफर में उसे सिगरेट की जरूरत महसूस ही होती है।

१६

इलाहाबाद से आकर आनन्द का मन दिल्ली में रमा नही। इलाहाबाद छोड देना वह जितना आसान समझता था, वह उतना आसान सिद्ध नही हुआ। पहले दस-पन्द्रह दिन कामेश्वर के साथ रहने के बाद, जब उसने इधर-उधर कमरा तलाश करना प्रारम्भ किया तो कामेश्वर ने रोक दिया

"क्यो यहाँ कोई कष्ट है क्या? अरे तीन कमरे हैं। अकेला मैं खुद ऊब अनुभव करता हूँ। अब तुम आ गये हो, तो कुछ बातें हो जाती हैं, कुछ अकेलापन कम हो गया है। क्या जरूरत है अलग रहने की? वैसे अगर रुपये ही खराब करने हैं तो कोई बात नही।" और वह कामेश्वर के साथ ही रहने लगा था। दूसरी मजिल पर दो कमरे और एक छटी सी कोठरी थी। एक भुवन को आफ़िस से मिला हुआ चपरासी था। भोजन नीचे के ही एक होटल में होता था। आनन्द ने सोचा, चलो ठीक है, और दिन कटने लगे।

प्रारम्भ के कुछ दिनो में आनन्द ने बहुत ही मन लगाकर अपने आफ़िस मे काम किया। वह समय से आफ़िस जाता, डटकर बैठता और दो-दो घण्टो की बैठान में, कलम उठाता और फाइलो का ढेर एक ओर से दूसरी ओर कर देता। साथ के लोगो में थोडी हलचल हुई। ऑखो-ऑखो में इशारे होते, यही नही, बाहर भी वह बातचीत का विषय बन जाता और अभी 'नये-नये हैं न इसी से। देखते जावो।' पर आकर बात खतम हो जाती। एक महीने के बाद ही आनन्द को अनुभव होने लगा कि छै घण्टे के आफ़िस में काम तीन-साढ़े तीन घण्टे का ही है; लेकिन उन घण्टो में ही कितनी थकान लगने लगती है। उसे लगता कि कुछ जंजीरें हैं, जो उसके आसपास खसकती चली आ रही हैं। कुछ दीवार हैं, जो अन्दर ही अन्दर

संकुचित होती जा रही है। कुछ सीमाएँ हैं, जिनके निशान मिमिटते चले जा रहे हैं। एक विचित्र प्रकार की यान्त्रिकता है, जो उसके ऊपर छाती चली जा रही है। एक समय आना, एक समय लन्च के लिये उठना, एक समय आफिस छोडना, एक-सी ही घर-गृहस्थी, बीबी और बाल-बच्चो की फरमाइशो, आवश्यकताओ, बीमारी तथा दवाओ की बातें। एक ही तरह की फ़ाइले। उन पर लगभग एक ही प्रकार के नोट्स, उनके एक ही तरह के उत्तर। सुबह नौ के बाद एक ही बात दिमाग में कि तैयारी करनी चाहिये। शाम को मन पर एक ही चिन्ता की पर्त कि आज बडा काम रह गया, कल पूरा हो जाना चाहिये।

धीरे-धीरे और लोगो की देखा-देखी उसको भी बैठक कम होने लगी। आध घण्टे बैठता और उठ खडा होता। किसी की मेज़ के पास जाकर बैठ जाता। इधर-उधर की बातें करने लगता। साथ के लोगो में कुछ बड़े मज़ेदार व्यक्ति थे और आनन्द का स्वभाव मिलनसार भी था। अतः घनिष्ठता वह भले ही नही प्राप्त कर सका हो, लेकिन हिलमिल तो गया ही था। बातें करने के बाद वह फिर अपनी मेज़ पर आता, फाइलें खोलता, बीस-पच्चीस मिनट काम करता, उसके बाद चपरासी से कभी पानी माँगता, कभी पान मँगवाता और बैठकर इनके आने का इन्तजार करता-करता कुछ सोचने लगता।

उसकी कुर्सी के बगल में एक टेबिल के बाद ही दो लेडीज़ टाइपिस्ट बैठती थी। वे क्रिश्चियन लड़कियाँ थी। एक का नाम था मिस रेबेका जान। पतली, गोरी और देखने में मज़े की सुन्दर। शौकीन तबियत और बातो में गहरी अदा। बोलने में हँसमुख और काम में तेज़। जरूरत से ज्यादा व्यवहार-कुशल और बेहद बातूनी। रेबेका प्रायः चर्चा का विषय रहती। कुछ ही दिनो में आनन्द ने उसके विषय में बहुत सी बातें सुन ली। अब भगवान जाने, वे सच थी या झूठ। लेकिन अगर उनका एक हिस्सा भी सच हो, तो आनन्द उसके बारे में दूसरे ढंग से सोचने पर विवश था। वह यह भी सोचता कि यह स्वभाव इनके लिये आवश्यक है और

चूँकि आवश्यक है इसलिये बहुत सम्भव है कि यह स्वभाव प्रकृत्या न होकर कृत्रिम हो। रेबेका प्रायः सभी से बाते करती और हासपरिहास में पर्याप्त भाग लेती। उसकी मनोरजक और हँसनेवाली बातो को, आनन्द प्रायः शाम को, घर आने पर, कामेश्वर से बताता और कामेश्वर पहले खूब हँसता फिर कहता—"ज़रा बच के आनन्द! पल्ला जरा दाब के नही, अगर उडा तो उडता चला जायेगा। फिर हाथ की पकड में नही आने का।"

दूसरी थी मिस ज्वायस। सीधी-सादी लडकी। रंग से उज्ज्वल, सुन्दरता में अनुपम, उसके चेहरे में एक गज़ब का आकर्षण था। सकोच के झीने आवरण ने जिस पर एक विशेष प्रकार के लावण्य की सृष्टि कर रखी थी। भोलापन लिये हुए स्निग्ध मुख, बडी-बडी ऑखे, जो पलको का बोझ कम सँभाल पाती थी। आनन्द की इच्छा होती थी कि वह उससे कुछ खुलकर बात करे, लेकिन वह इतना कम बोलती और चुपचाप काम करती कि चार-छै सामान्य बातो के आगे वह बात करने में कभी सफल नही हुआ।

शाम को वह टहलने निकलता। कभी अकेले, अकसर कामेश्वर के साथ। एक अजीब भीड-भाड में पडकर वह घबडा-सा उठता। रगीन रोशनी, रंगीन परिधान, जरूरत से ज्यादा तडक-भडक, लेकिन हर एक अपने मे खोया सा, अपने में परेशान। इस कोलाहल में वह अपने को खपा नही पाता। उसे लगता कि वह ऊपर-ही-ऊपर तैर रहा है। ऐसे समय वह बडा उद्विग्न हो जाता और इलाहाबाद की चौडी, खाली सडको की, दूर-दूर फैलकर बसी हुई बस्ती की, गगा के कछार को, यमुना की चॉदनी रातो की याद में भटक जाता। कामेश्वर के साथ घूमता हुआ वह उसके मित्रो के यहॉ जाता, कभी क्लब जाता, दो-एक बार वह बार में भी गया। लेकिन उसे लगता, जब वह कामेश्वर का साथ नही दे पाता, उसके साथ क्लब में बैटकर रमी या ब्रिज नही खेल पाता, ड्रिंक नही कर पाता, बाल डान्स नही कर सकता, तब उसके साथ घूमने से फ़ायदा क्या? कामेश्वर कुछ तो सोचता ही होगा! उसके दोस्त कहते होगे कि यह अच्छा आदमी है, जो मयखाने में घुसकर भी

इसकी रायल्टी आदिका अधिकार वकील साहब को ही होगा। इसी आशय का एक पत्र उसने वकील साहब को लिख भी दिया था। इधर वह अपनी बडी पुस्तक के लिखने में व्यस्त था। घूमकर लौटता तो बडी रात तक पढता रहता। कुछ नोट्स लेता और सुबह ढाई-तीन घण्टे जमकर लिखता और चार-पॉच फुलस्केप लिखकर फेक देता। तीन महीने के अन्दर ही वह कामेश्वर के मित्रो ओर परिचितो के बीच मे आ गया था। उन परिचितो और मित्रो में कुछ बैक के लोग थे, कुछ एडवोकेट थे, दो-एक प्रोफेसर थे, कुछ उसके आफ़िस से सम्बन्धित लोग थे और दो-एक महिलाएँ थी, जिन मे मोहिनी माथुर और नीलिमा कौर प्रधान थी। इसके अतिरिक्त पत्रकार नवलकिशोर और ललित मिश्रा भी थे। इन सब मे आनन्द जिन लोगो मे अधिक अभिरुचि ले सका, वह थे—प्रोफेसर सत्यकाम, पत्रकार नवलकिशोर और मोहिनी माथुर।

नवलकिशोर में वह जीवन का अभाव पूरा करने की कोशिश करता था। उसकी सनसनी-खेज, सरगर्म और मजेदार बातो मे वह दिल्ली का कोलाहल, एक विचित्र प्रकार की दौड-धूप, धक्कम-धुक्का और निरन्तर प्रतिध्वनित वातावरण, कभी अपने इर्द-गिर्द कुलबुलाता-सा अनुभव करता और कभी इस वातावरण से अपने को ऊपर उटता हुआ पाता। नवलकिशोर बात कहॉ से उठाता और कई मोड देता हुआ कहॉ ले जाकर समाप्त कर देता, मालूम ही न पडता और मालूम भी पडता तो तब, जब बातो का दौर खातमे पर आ गया होता।

प्रोफ़ेसर सत्यकाम एक स्थानीय डिग्रीकालेज में राजनीति के अध्यापक थे। बहुत ही अध्ययनशील; विचारो की गम्भीरता, साथ ही अत्यन्त सुलझा हुआ मन और अभिव्यक्त करने का अत्यधिक आकर्षक और प्रभावशाली ढग उनकी सबसे बडी विशेषता थी। आनन्द को उनके साथ बात करने में बडा सुख मिलता था। उसमें एक आदत थी। वह सदैव एक ऐसे आदमी का सम्पर्क चाहता था, जो उसे बौद्धिक स्तर पर अपने से ऊँचा दिखाई दे।

जो उसकी हर बात स्वीकार न कर, वरन् उसे ही अपनी बात अकाट्य तर्कों और प्रमाणो से स्वीकार करने पर विवश-सा कर दे। और उसने सत्यकाम में यह बात देखी थी। आनन्द अन्दर-ही-अन्दर प्रोफेसर साहब के प्रति अगाध श्रद्धा से भर उठा था। सत्यकाम का निवास चूँकि उसके निवास से काफी दूर पडता था; अतः आनन्द के चाहने पर भी उनमे अकसर मुलाकात न हो पाती थी। वह पन्द्रह-बीस दिनो के अन्तर से ही उससे मिल पाते थे।

तीसरी थी कुमारी मोहनी माथुर, एक रिटायर्ड जज की पुत्री। बडे बाप की लडकी। स्वतन्त्र वातावरण और स्वतन्त्र शिक्षा में पली, बढी और पढी। कामेश्वर से मालूम हुआ था कि जब उसने एम०ए० किया था, तब जज साहब ने चाहा था कि मोहनी लॉ करले और प्रैक्टिस करे। नयी रोशनी में लडकियो को जीवन के किसी भी क्षेत्र में पदार्पण करने में कोई हिचक नहीं होनी चाहिये। तब मोहिनी ने लॉ किया था और वह ट्रेनिंग लेने लगी थी। इसी बीच, जिस लडके से उसके विवाह की बात चल रही थी. जाने क्या हुआ कि वह अमेरिका चला गया। पहले बात थी कि शादी के बाद दोनो साथ साथ ही जायेगे, लेकिन ऐसा नही हो सका। उसके बाद मोहिनी उस लडके की चर्चा पर एक तरह का रोष महसूस करने लगी। उसने ट्रेनिंग छोड़ दी और एक कालेज में सर्विस कर ली। फिर वह भी छोड दी और आज कल वह यूँही समय बिता रही थी। कुछ दिनो से रेडियो पर काम करने लगी थी और इधर उसके प्रोग्रेम्स काफी बढ गये थे। भाई कामेश्वर की कम्पनी में ही था और इन दिनो विदेश में था।

आनन्द कभी सोचता था कि वह कहाँ से आया, उसने जो वातावरण, और जिन लोगो का सग-साथ पाया, वह कितनो को मिला है, जो वह आकारण ही, अनायास ही, सयोग मात्र से पाता जा रहा है। उसकी स्थिति में एक साधारण परिवार से आकर कितनो को यह सब मिलता है? उसे कभी लगता कि वह जन्म से ही इसी वातावरण में, इसी अभिजात्य वर्ग के बीच रहता रहा है और जीता रहा है। इसी के वह सपने देखता रहा है और इसी

के अनुरूप उसकी महत्वाकाक्षाएँ बनती रही हैं। कभी-कभी उसके मन में यह भी आता कि अगर उसके जीवन में वकील साहब का संयोग न आया होता तो ? इसके आगे की कल्पना ही बिगड जाती थी। कोशिश करने पर वह कुछ सोच भी लेता, तो कुछ रेखाएँ, कुछ रग, कुछ छायाएँ बनती-बिगडती, एक दूसरे को ऐसा काटती-फॉदती निकल जाती कि कोई भी स्थिर आकृति बन ही न पाती थी। ऐसे समय उसका सिर भारी हो उठता और वह सिर को झटककर उठ खडा होता।

कामेश्वर जब कभी उसका परिचय अन्य लोगो से कराता, तो कितनी अत्यधिक अतिशयोक्ति और अतिरंजना का आश्रय लेता है, यह सोचकर आनन्द कभी-कभी धरती मे गड जाया करता था। उसे यह भी लगता कि गरिमा का, बडप्पन का, गुणो का और विशेषताओ का, जो घेरा उसके विषय मे कामेश्वर तैयार कर देता है, अगर कभी वह उनके अनुरूप न उतरा, तो इन लोगो की धारणाओ का क्या होगा ? और उतर ही कैसे सकता है, जब वह उतना योग्य है ही नही। उसने कई बार कामेश्वर से कहा भी कि भाई सीधा परिचय दिया करो। तारीफो का इतना कोष क्यो खोल देते हो कि सब झूठ-ही-झूठ हो जाता है। इसपर कामेश्वर ने हमेशा यही उत्तर दिया है कि आनन्द तुम समझते नही, इन लोगो के केवल कान होते हैं कान। दूसरो के गुणो को यह आँखो से देखकर कभी नही समझते, समझ ही नही सकते और अगर समझते भी है तो उसकी सराहना नही कर सकते। इनसे जो कुछ कहा जायेगा, ये उसी पर विश्वास करेंगे और सुनी-सुनायी बातो पर ही अपने मतो का निर्णय देंगे।

दिल्ली में आकर और जो कुछ हो, लेकिन आनन्द इतना तो अनुभव कर ही रहा था कि इलाहाबाद रहने पर एक बोझ, एक परेशानियो और चिन्ताओ का झुंड, जो उसके दिमाग़ पर बर्र के छत्ते के समान भनभनाया करता था, काफी शान्त हो गया है। इधर वकील साहब का एक पत्र आया

था, जिसमे एक रिश्ते के लिये चर्चा की गयी थी। उसके उत्तर मे आनन्द ने जो पत्र लिखा था, उसमें उसने एक प्रकार से महीने भर का हिसाब लिख दिया था और लिख दिया था कि अभी तो मैं कामेश्वर जी के साथ ही हूँ; लेकिन सुनने में आ रहा है कि जल्दी ही उनका तबादला और कही हो जायेगा। तब निश्चित है कि खर्चे के साथ-साथ कुछ असुविधाओ में भी स्वाभाविक रूप से वृद्धि हो जायगी। आप मेरे निर्माता है, अतः आपकी बात टालने का साहस मुझमें नही है। यह जो लाचारी है, उसे आप नही समझते है, ऐसा मै नही सोचता।

माया को लेकर भी उसके दिमाग में उथल-पुथल हुआ है। दो-एक बार उसने यह भी निश्चय किया कि वह कुछ रुपये भेज ही दे, लेकिन ऐसे अवसरों पर हमेशा एक सकोच आकर उसे घेर लेता रहा है।—वकील साहब क्या सोचेगे? जब वह वहाँ रहती ही है, तब कुछ रुपये मात्र भेज देना क्या अर्थ रखता है? यह तो केवल हास्यास्पद ही होगा, और कुछ नही। रानी के पत्र से मालूम हुआ था कि बगल के ही एक कालेज में माया को ग्यारहवे में एडमीशन दिला दिया गया है।

रह गयी राज। पहले तो कुछ दिनो तक उसके ऊपर राज की स्मृति के फिट से आते थे, लेकिन धीरे-धीरे वह कम होते गये। एक नौकरी वह पा गया था, जिसकी एकरसता में वह अपने को कही-न-कही टूटता हुआ पाता था। उसने साफ़-साफ़ महसूस किया था कि अब उसकी महत्वाकाक्षाओ की उपलब्धि का उतावलापन और उत्साह पता नही कैसे, कहाँ से, ठण्डा पडता जा रहा है। वह जब-तब एक आलस्य, एक विकलाङ्ग सन्तोष और बलात् आरही लापरवाही का आश्रित होता जा रहा है। ऐसी स्थिति में राज की स्मृति उसे जब-तब झकझोर जाती थी। तब वह कल्पना के पखो पर उड जाता। अदम्य प्रेरणा और नव-उल्लास से भर उठता। राज को लम्बे-लम्बे पत्र लिखता, वहाँ की जिन्दगी के बारे में लिखता, आगामी महीने में आने के विषय में लिखता, पिछली घटनाओ का चित्र खीचता और अपनी मनस्थितियो के

नक्शे बनाता-बनाता बहुत खुश हो जाता । इन दिनो वह जमकर पढता भी था और कभी अपनी पुस्तक के पृष्ठ-पर-पृष्ठ लिखता; लेकिन यह सब दो-चार दिनो तक ही रहता । जल्दी ही वह उसी आलस्य, उसी लापरवाही और एक सूनेपन का शिकार हो जाता । पुस्तको पर, कागज़ो पर धूल की एक हल्की-सी पर्त्त चढ़ जाती । आधे लिखे हुए पत्र पड़े रहते और कभी-कभी फाड भी दिये जाते ।

राज के छोटे-छोटे पत्रो पर वह खीझ उठता था । जिस लगन और उमंग मे वह पत्र लिखता, उसी उमंग से उनके उत्तर की प्रतीक्षा भी करता । लेकिन उत्तर में वह जो कुछ पाने को लालायित रहता, वह उसे कभी नही मिलता । कामेश्वर की बातचीत से पता लगा कि मेरठ के किसी सिविल-सर्जन के डाक्टर पुत्र से राज की शादी की बात चल रही है और शायद इन दिनो वह लोग राज को देखने इलाहाबाद जायें भी । इस विषय में, जब उसने राज को सकेत रूप मे लिखा, तो राज ने इतना ही लिखा—विश्वास करने की वस्तु अधिक और दिलाने की कम होती है । जो होना है, उसे कोई नही रोक सकता, वह होकर ही रहेगा । लेकिन इतने से ही विधि की सत्ता को सर्वोपरि मानकर, अकर्मण्यता की दुहायी दे बैठना कोरे प्रलाप और असमर्थता की घोषणा कर देने के अतिरिक्त कुछ नही है । तुमने जिस तरह की बाते लिखी हैं, वह किसी भी समर्थ और जागरूक व्यक्ति के लिये शोभाजन्य नही कही जा सकती । ' '' इस तरह क्या पता, तुम्ही, जो होने जा रहा है और जो नही होना चाहिये, उसमें सहायक सिद्ध हो जाओ और वही हो जाय, जिसे न तुम चाहोगे, न मैं । लेकिन सावधान ! तब उसे मौन होकर, बलात् अपनी आत्मा पर, अपने मन पर, एक पहाड की भॉति सँभाल लेना पडेगा।

१७

उस दिन कामेश्वर के कमरे में ही आनन्द, नवल और मोहिनी की बैठक जमी थी। जाने कैसे मुहम्मद-इस्लाम की बात चल पडी। वहाँ आनन्द ने ही कहा था—"भाई साहब, कल आप के जाने के बाद बडी देर तक इस्लाम मुझसे गिडगिडाता रहा कि साहब, आप ही कहसुनकर माफ़ करा, दीजिये। जिन्दगी भर अहसान मानूँगा। क्या करूँ जुबान को साहब, उस दिन जाने क्यो कम्बख्त ने साथ ही न दिया।"

"और उस दिन साथ दिया था, आफिस में, जब मैने चेतावनी दी थी कि अबतक तुमने जो कुछ किया सो किया, अब जमा-खर्च में या आफिस के इन्तज़ाम में आगे कोई गडबडी हो, यह मैं नही सुनना चाहता। नही तो बताये देता हूँ कि तुम्हें आफिस छोड देना पडेगा, तो अपने एक रिश्तेदार के भरोसे पर, जो एम० पी० हैं, आँख दिखाता हुआ निकल गया कि "कह देना आसान है, मुझसे भिडना आसान नही। लेने के देने पड जायेंगे साहब।" अब देखता हूँ किसको लेने के देने पडते हैं। कामेश्वर ने कुछ तैश मे आते हुए कहा—"आनन्द, साले की मैंने ऐसी रिपोर्ट की है कि अगर मैं न चाहूँ तो कोई दूसरी हस्ती नही है, जो उसे अब आफिस में रख सके।"

"वह कह रहा था—साहब, घर की परेशानियो से आजिज़ आकर, बीबी के तानो से ऊबकर, बीमार बच्चे को चारपायी पर छोडकर, बिना खाये-पिये, आफ़िस चला आया था। आते ही साहब ने खबर लेनी शुरू कर दी। क्या करता, कुछ झुँझलाहट हो ही आयी।"

"और वह झुँझलाहट उसे मेरे ही ऊपर, चार आदमियो के बीच, उतारनी थी, क्यो ? कल आफिस में बडी देर तक रोता गिडगिडाता रहा, बीबी, बाल-बच्चो और अपनी उम्र की दुहाई देता रहा; लेकिन मैने तो साफ़ कह दिया कि अब मेरे हाथ मे कुछ नही है। अपने उस रिश्तेदार से ही जो कुछ हो सके कराओ। मैं कुछ नही कर सकता। और शाम को वह कम्बख्त यहाँ भी आ मरा! उसी के कारण मै जल्दी से घूमने निकल गया था।"

"क्या करें ये लोग भी ? आज का जीवन कितना जटिल और संघर्षमय हो गया है, यह तो बेचारे झेलनेवाले ही जानते हैं।" उसी के सम्बन्ध में बातचीत के दौरान में कुछ मिनट बाद आनन्द ने कहा था।

"आनन्द, तुमने अभी सघर्ष के मैदान में पैर रखा है, इसी से ऐसा सोचते और कहते हो। और मैंने कभी भी इस तरह का सघर्ष झेला नही है, तो क्या हुआ ? मै सघर्ष के वातावरण में रहा हूँ, रहता हूँ। इसलिये तुमसे ज्यादा अनुभवी हूँ। यहाँ कोई भला-बुरा पहले नही सोचता है और अगर सोचता भी है तो काम करने के बाद अपने पक्ष में विवशता का इतना बडा आवरण तैयार कर लेता है कि आप जल्दी उस आवरण की सत्यता समझ ही नही सकते। तब वह आपके कन्धे पर, आपके सिर पर और आपके अधिकार पर पैर रखकर आप से आगे निकल जाने की कोशिश करेगा। वह कभी नही सोचेगा कि उसके इस काम से आपको कितनी, कहाँ तक और किन-किन दिशाओ से हानि पहुँच रही है या पहुँच सकती है। बाद मे भले ही, प्रदर्शन के लिए, वह अफ़सोस करता घूमे। सम्भव है कि आपके सामने आकर रो भी दे और आपके चरण पकडकर, बाल-बच्चो की दुहाई देकर, माफ़ी भी माँग ले। और सम्भव है कि आप उसे माफ भी कर दें। लेकिन क्या आप समझते हैं कि इसके बाद उस आदमी की मनोवृत्ति बदल जायेगी, उसकी दुष्टता बन्द हो जायगी ? कभी नही। वह पुनः दुगने उत्साह और तैयारी से अपने आगे वाले पर हमला करेगा !"

"क्या हर एक आदमी अन्दर से ऐसा ही होता है ?" आनन्द ने पूछा ।

"नही हर एक आदमी ऐसा नही होता; लेकिन निन्नानबे प्रतिशत लोग ऐसे ही होते है । और अगर होते नही, तो बनाये जाते है, बन जाते है । नही तो भूखो मरेगे, अभावो मे पिसेगे और झुलसी आकाक्षाएँ लिये जलेगे । किसी तरह अपना निर्वाह कर भी ले जॉय, तो उनके बच्चो पर इनकी जो प्रतिक्रिया होती है, वह तो बहुत ही भयकर होती है । बाप के आदर्शो को वह एक ढोंग, एक सनक समझकर मेट देते है और तब वे नैतिकता और कर्त्तव्याकर्त्तव्य पर लीपा-पोतीकर, समृद्धि, पैसा और वैभव के मैदान में एक विचित्र रोष के साथ उतरते है। और ठीक भी है, जो आदर्श जीने की सुविधाएँ नही दे सकते, उनको लेकर चाटना है या ओढना-बिछाना ?"

बातचीत की दिशा बदल गयी थी, पर आनन्द ने उसी दिशा में बढते हुए कहा—"लेकिन जीने की सुविधाओ का मानदण्ड आप क्या मानते है ?"

"मानदण्ड ? आनन्द, जिस समाज में, लोगो के रहन-सहन में, आकाश-पाताल का अन्तर हो, वहॉ मानदण्ड का सवाल ही नही उठता ।"

"क्या मतलब ?"

"मतलब यह कि आलीशान फ्लैटो, कोठियो और बँगलो में रहनेवालो, विलासिता को आवश्यकता मानकर आकाश में विचरण करनेवालो की तुलना में कड़े परिश्रम के बाद सुबह-शाम भोजन और पहिनने भर को कपडे पाकर रहनेवालो का जीवन भी कोई जीवन है ! कम-से-कम मुझे तो स्वीकार नही । अन्तर आवश्यक है, वह था और रहेगा भी, लेकिन बीच में खाइयॉ ही हो, यह तो कदापि नही सहा जा सकता ।"

"लेकिन यह तो सामाजिक व्यवस्था का दुष्परिणाम है, न कि मनुष्य की अन्तर्वृत्तियो का ।"

"ओः, कुछ भी हो, है तो । और समाज के निर्माण में, समाज की

व्यवस्था के निर्धारण में क्या अन्तर्वृत्तियो का योग नही था ?"

"तो ऐसी व्यवस्था बदली भी तो जा सकती है। वह तो हमी ने बनायी थी। हम उसे दूसरा रूप भी दे सकते है।"

"देखो आनन्द, अब तुम करने लगे न नेताओ की-सी बात। यह चाहिये, वह चाहिये, यह हो सकता है, वह ... । अरे होने को क्या नही हो सकता ? लेकिन किसमें इतनी सच्ची लगन और सच्चा विश्वास है, जो इस वर्ग-संघर्ष मे कूदे ? फिर इतना विशाल समाज और इतनी गहरी नीवोवाली सामाजिक व्यवस्था बदल डालना क्या सौ-पचास के वश की बात है ?"

"ठीक है, पर आप सौ-पचास की बात क्यो करते है ? गान्धीजी ने अकेले नवजागृति और नयीचेतना की अग्नि सुलगाने में अभूतपूर्व योग नही दिया था ? एक बात और कहूँ, समाज में क्रान्ति के लिए वातावरण तैयार करने में जो कठिनाई होती है, सो तो है ही। लेकिन उससे बडी कठिनाई उस क्रान्ति को सयमित रखने, उसे आगे बढाने और फिर उसे एक मंगलकारी रूप देनेवाले व्यक्तियो के निर्माण मे होती है। सबसे विचित्र बात तो यह है भाई साहब, हम दूसरो की बात करते हैं, पर पहले अपना मन नही टटोलते ! अन्दर मन की क्या आवाज है, आत्मा का क्या स्वर है और अपना विश्वास क्या बोलता है, इसको तो देखते नही, सुनते नही। आवाज अन्दर-ही-अन्दर भटकती है, विकल आत्मा छटपटाती है, लेकिन बाहर से तो हम भी दूसरो की तरह ही हैं। समझते हैं कि यह नही होना चाहिये । लेकिन करते वही हे, उसी को प्रोत्साहित करते हैं और प्राथमिकता देते हैं ?

कामेश्वर हँस पडा। सिगरेट ऐश ट्रे में डालकर उसमें गिलास का पानी डाल दिया और उठकर खडा हो गया— 'साल भर बाद पूछूँगा आनन्द, कि अब क्या विचार है। अरे स्थितियाँ आदमी को मसल देती हैं और सिद्धान्त धरे रह जाते हैं।" ओर आगे बढा, फिर पलटकर बोला—"मैं बडा भाई

हूँ न ? मेरी बात का बुरा न मानना। तुम दिल्ली आना चाहते थे ? आकर खुश हो न ? न आते, वही सार्वजनिक जीवन बिताते। पत्रकारिता से ही जीवन यापन करने की अभिलाषा थी न ? वही करते। लेकिन क्या उसके लिये सुविधाएँ नहीं चाहिये थी ? आनन्द, मैने भी पहले बहुत सोचा था; लेकिन जमाने का रग-ढग देखा तो मेरी हिम्मत छूट गयी। खैर छोडो, तुम्ही बताओ, जिन रचनात्मक विचारो की चर्चा करते या अपने तथाकथित आदर्शो के पूर्ति के प्रयास में, प्रयाग में रहते समय, तुम अत्यधिक सक्रिय रहा करते थे, उन विचारो के प्रति प्रेम और उन कामो के करने की शक्ति, तुम स्वय अपने में क्षीण होती हुई अनुभव नही करते हो ?"

सिद्धान्त और उस के सम्बन्धो मे बाते करते करते कामेश्वर जब नितान्त व्यक्तिगत स्तर पर उतर आया, तो आनन्द को कुछ अच्छा नही लगा। आनन्द कामेश्वर की बात का उत्तर चाहता तो अवश्य दे सकता था; लेकिन उसके कथन मे अन्तर्निहित सत्य आनन्द के मर्म को कचोट गया और वह अन्दर-ही-अन्दर कुडमुडाकर शान्त हो गया।

यह बडे आश्चर्य की बात थी कि इस बीच में नवल बिल्कुल चुपचाप ही रहा, वैसे वह चुप बैठनेवाला व्यक्ति था नही। सम्भव है, उसके मौन के मूल में यह प्रतिक्रिया रही हो कि वह कितनी अच्छी घटना बता रहा था। इन लोगो ने उस पर तो कान दिया नही, बीच में बात काटकर विषयान्तर कर दिया। अतः वह अपनी झुँझलाहट दबाये, एक मासिकपत्रिका के एक लेख पर आँखें दौडा रहा था। और मोहिनी ? वह भी चुपचाप दोनो की बात सुन रही थी। बीच में वह कुछ बोलना भी चहती थी; लेकिन जब बातें कुछ तेज़ होने लगी, तो वह कभी आनन्द की ओर और कभी कामेश्वर की ओर देखने लगी। बीच-बीच में एक-आध दृष्टि वह नवल पर भी डाल लेती थी। वह चाहती थी कि नवल भी इसमें कुछ बोले तो मज़ा आये; लेकिन वह तो ऐसा मुँह बनाये बैठा था, मानों सोचता हो—क्यो वह इस वाहियात बातचीत में भाग ले !

आनन्द ने समझा कि कामेश्वर का कथन समाप्त हो गया, लेकिन तभी वह फिर बोल उठा—

"आनन्द, तुम सच बताना, दिल्ली आकर तुमने सामाजिक समस्याओ पर कितने लेख लिखे हैं ? तुमने कितने काम किये है, जो समाज-कल्याण के पक्ष में हो ? मोहिनीजी, यह वही आनन्द है, जिन्होने थोडे ही महीने हुए कानपुर-इलाहाबाद के आस-पास जब प्लेग फैला था, तो अपने लेखो से उस महामारी के प्रति शासन की उपेक्षा, उदासीनता और धॉधली पर वो-वो प्रहार किये थे कि जनता में खलबली मच गयी थी; ऊँचे-से-ऊँचे अधिकारियो की हवा बिगड गयी थी ! एक बुढिया और बच्चे की रक्षा के लिये जनाब भयानक आग में कूदकर प्राण देने को तत्पर हो गये थे। प्रधान-मन्त्री महोदय तक हास्पिटल में देखने गये थे हुजूर को। उन दिनो आनन्द जी के इन कामो की धूम सी मच गयी थी। लेकिन आज, जो कोई इनके साथ इन महीनो में यहाँ रहा है, अन्दाज़ लगा सकता है कि यह वही आनन्द है, जिनका नाम एक बार इलाहाबाद की जनता की ज़बान पर चढ गया था ? इसी से मैं कहता हूँ कि जब तक साधन न हो, तब तक मनुष्य की गति रेंगने की-सी होती है। वह एक मिनट खसकेगा, तो दस मिनट बैठकर हॉफेगा। यह दुनिया तो सागर है सागर, जिसकी लहरो की एक-एक चपेट पर इन्सान कभी किनारे, तो कभी मझधार में गोता खाता दिखाई पडता है। वे लोग बडे हिम्मती और भाग्यशाली होते हैं, जो मझधार मे पड़े हुए भी तूफान की ताकत परखने और उसे झेलने का हौसला रखते है। क्यो मोहिनीजी, मैं ठीक कह रहा हूँ न ?"

"कामेश्वर, तुम भी अजीब आदमी हो। आनन्द के पीछे अच्छा पड गये हो ! तुम से तो लाख दर्जे अच्छा है, जो 'भारतीय नवयुवक संघ' का चन्दा खा गये !" नवल ने कामेश्वर की स्पीच से चिढकर कह दिया और फिर वह उठकर खडा हो गया।

"देखो नवल, मैं पर्सनल बात नही करता और न चाहता हूँ कि कोई करे।"

एक बडे जोर का ठहाका लगा—"बड़ी इम्पर्सनल बात कह रहे थे आप !" और हँसी की लम्बाई बढ गई।

"अच्छा जल्दी करो, समय हो गया। ललिता, नीलिमा और जगत वहाँ क्लब में, इन्तज़ार कर रहे होंगे। चलिये कामेश्वर जी, कपडे बदलिये। और आनन्द जी, आप भी उठिये। मैं और नवल दोनो बाहर सडक पर गाडी में इन्तज़ार करते हैं।" कहकर मोहिनी नवल के साथ कमरे से बाहर हो गयी।

कामेश्वर, मोहिनी और नवल कभी के जा चुके थे। चलते समय नवल ने आनन्द के साथ चलने को कहा था; लेकिन आनन्द ने इन्कार कर दिया था। वह आज के दिन के विषय में सोचने लगा—'कामेश्वर ने ठीक ही कहा कि इन चन्द महीनो मे उसके जीवन का प्रवाह कितना मन्द और शिथिल पड गया है। उसके आफ़िस में पचासो आदमी काम करते हैं। उनकी जो ज़िन्दगी है, वही तो उसकी भी हो गयी है, बल्कि उससे भी भिन्न। वे तो फिर भी अच्छे हैं। दिल खोलकर आपस मे बोल-बता तो लेते हैं, पारिवारिक कठिनाइयो, मुसीबतो और समस्याओ से लेकर अपने प्रेम की कहानियो तक का आदान-प्रदान तो कर लेते हैं, लेकिन वह ?'

आनन्द के मन में आज सुबह की यही बातें, घूम रही थी जिनको वह कईबार स्मरण करके व्याकुल हो चुका था और सोचते-सोचते उसी स्थल पर जा पहुँचा था, जिस पर चोट करते हुए कामेश्वर उसे इतना बडा लेक्चर पिला गया था।

वह आफ़िस के कमरे के द्वार पर ही था कि घनश्याम बोल उठा—"आइये आनन्द बाबू ! आप तो हम लोगो से इतना कटे-कटे रहते हैं कि पूछिये मत। परसो अपने विभाग का उत्सव था, आपको छोडकर सभी आये थे। हम लोग तो रह-रहकर केवल आपके ही आने की बात सोचते रहे थे।"

इसके पहले कि वह कुछ उत्तर देता, कमरे के कोने पर बैठे, वृद्ध हो रहे एक बंगाली बाबू बोल उठे—"ओरे घनश्याम ! तुम भी क्या बात बोलता है, ए आनन्द बाबू ? बुरा आदमी है की वो भाई बरा लोगो के साथ घूमता है। हमारा लोगो के साथ रहेगा तो उसका प्रेस्टीज नही घट जायगा ! हम तो उस दिन देखा था, आनन्द बाबू एक कारवाला लेडी के साथ घूम रहा था। आनन्द बाबू, हम ठीक बोलता है ना !" कहकर वह ही-ही करके हँसने लगे।

उसने कोई जवाब नही दिया था। चुपचाप जाकर वह अपनी कुर्सी पर बैठ गया था।

"हॉ मिस्टर आनन्द, थोडी-बहुत लिफ्ट तो हम लोगो को दे ही दिया कीजिये।" यह रेबेका की आवाज़ थी, जो उसने अपने इधर के नये दोस्त जमुना की ओर ऑख मारते हुए कही थी।

"कोशिश करियेगा तो जरूर मिलेगी, या जब कोई न दे तब मुझसे मॉगियेगा।" उसने घूनकर उसकी ओर देखते हुए उत्तर दिया था।

कई लोग हँस पडे थे। घनश्याम ने पास आकर कहा—"क्या जवाब दिया है तुमने आनन्द कि मजा आ गया। यह इसी सम्मान के योग्य है।"

"लो, सिगरेट पियो घनश्याम।" उसने जेब से सिगरेट-केस निकालकर घनश्याम के हाथो मे रख दिया। कामेश्वर का सिगरेट-केस उसकी जेब में धोखे से रह गया था।

घनश्याम सिगरेट लेकर चला गया और वह भी अपनी फ़ाइलो में डूब गया।

लेकिन बंगाली बाबू की बात जैसे उसके सामने की फाइलो पर चमक उठती थी। आज शनिवार था। अतः आफिस जब दो बजे बन्द हुआ, तो अपनी टेबिल से उठ चुकने के बाद भी उसने करीब दस मिनट तक घनश्याम के उठने की प्रतीक्षा की। वह घनश्याम के साथ ही बडी दूर तक पैदल आया था।

घनश्याम को विदा करने के बाद, जब वह अपने निवास पर आया तो बैठक जमी हुई थी और नौकर छंगू चाय का पानी गरम कर रहा था।

उसे देखते ही नवल ने कहा—"वाह ! क्या मौके से आये आनन्द, अभी हम तुम्हारे विषय में ही बातें कर रहे थे। क्लब के वार्षिक पर्व पर मोहिनी जी चाहती हैं कि एक नाटक खेला जाय; लेकिन सवाल यह है कि कौन नाटक खेला जाय ? कामेश्वर ने बताया कि तुम भी तो नाटक लिख लेते हो। तुम्हारा कोई नाटक कभी विश्वविद्यालय में भी खेला गया था। तो क्यो न एक नाटक हम लोगो के लिये भी लिख दो ?"

"अरे नही। आप लोग किसी अच्छे नाटककार का नाटक खेलिये।"

"आपको कोई एतराज़ है, नाटक लिख देने मे ?" मोहिनी ने पूछा।

"एतराज़ की बात नही, बात असल में यह है कि पहले मैंने दो-तीन बडे-बडे एकाकी अवश्य लिखे थे, लेकिन इधर तो काफ़ी दिनो से लिखना-पढना ही बन्द है। वैसे और कोई बात नही। आप लोग चाहेंगे तो मैं लिख दूँगा। लेकिन अगर अच्छा न बन पडे तो बाद में दोप मत दीजियेगा। बताये देता हूँ।"

"नही-नही, दोष देने की क्या बात है ? तुम लिखो तो।" कामेश्वर ने कहा।

"अच्छी बात है, लेकिन बाद में यह मत कहियेगा कि अब ज़रा अभिनय भी कर दो।" उसने हँस कर कहा था।

"अगर अभिनय करना चाहेंगे तो उत्तम ही है, वैसे और अभिनेता अभिनेत्रियाँ हैं।" मोहिनी ने उत्तर दिया।

"मोहिनी जी, अबकी बार आप भी रंगमच पर उतरें तो कैसा रहे ? बहुत दिनो से आपको स्टेज पर देखा नही।" नवल ने कहा।

"मैं तैयार हूँ, लेकिन आप जोकर बनें तो।"

एक हँसी हुई और बातचीत की दिशा बदल गयी। फिर जाने कैसे इस्लाम की बात उसी ने चला दी।

कामेश्वर ने ठीक ही कहा और एक कामेश्वर क्या, उसने भी तो चलते क्षण राज से कहा था—'राज, मैं डरता हूँ, कही जो होने जा रहा है

वही होकर न रह जाय।' उसकी आशंका सत्य ही निकली। अपने गाँव के लिये ही उसने रजन से क्या नही कहा था? 'पिछले हफ्ते जो रजन का पत्र आया है वह तो सन्तोषप्रद है। पुस्तकालय और वाचनालय का प्रबन्ध ठीक चल रहा है। रामलाल भी काफ़ी मदद कर रहा है। गाँव की गलियाँ पक्की करवा देने की पूरी कोशिश कर रहे हैं डिस्ट्रिकबोर्ड से स्कूल का भवन पक्का बनवा देने के लिये चार हजार रुपये की ग्राण्ट ले ली है और अब उसे जूनियरहाईस्कूल करा देने की योजना चल रही है। लेकिन मुझे तो लगता है कि रामलाल अगले चुनाव में खडे होने के लिये ही यह सब भूमि तैयार कर रहे हैं। चलो अच्छा है, इसी बहाने गॉव में कुछ हो तो रहा है ।' रजन ने ठीक ही लिखा है—रामलाल अपने भविष्य-निर्माण को दृष्टि में रखकर गाँव-सुधार का प्रयास कर रहा है, लेकिन फिलहाल चुप रहना ही ठीक है। रजन को लिख देता हूँ कि जरा सावधान रहना कही कोशिशें और योजनाएँ बीच रास्ते में ही न रह जायें और सूत्रधार मञ्जिल पर जा पहुँचे। विद्यालयवाला चार हजार रुपया भी अगर शीघ्राति-शीघ्र ईंट, चूना, सीमेण्ट और बालू के रूप में और यही नही, दीवारो और छतों के रूप में दिखाई पडे तो अधिक अच्छा हो।

आनन्द ने उठकर रंजना को एक पत्र लिखा और फिर कामेश्वर और बंगाली बाबू की बात में उलझ गया।

१८

उस दिन ठण्ढ कुछ अधिक थी। कामेश्वर सुबह ही घर से निकल गया था। उसके हेडआफिस से कोई ऊँचा अधिकारी आया हुआ था। आनन्द जब सोकर उठा था, तब हाथ डाढी पर गया था। 'कहाँ उसे शेव परसो ही कर लेना चाहिये था और कहाँ दो दिन बीत गये लेकिन रजाई से निकलने की तबियत नही हो रही। देखा जायेगा, आज तो छुट्टी है। आज उसने कुछ लिखा भी तो नही।' नौकर को बुलाकर पूछा—"कामेश्वर कबतक आने को कह गये हैं?"

"कुछ ठिकाना नही। कह गये हैं कि आनन्द से कह देना, रास्ता न देखें।"

"अच्छा।" और नौकर से चाय बनाने को कहकर उसने बगल में स्टूल पर रखा अखबार उठा लिया और फिर वह उसी में डूब गया।

चाय आयी। उसने चायपी और वहसोचनेलगा कि अब उठना चाहिये। लेकिन करूँगा क्या? मन ने कहा—उठो तो पहले। रजाई फेंककर वह पलँग के नीचे पैर लटकाकर बैठ गया। नौकर से पानी गरम कर लाने को कह दिया। स्टूल सामने रख लिया और उस पर अखबार रखकर इधर-उधर नजर दौडाने लगा। पानी आगया। शेविंग सेट आ गया। उसने अखबार पलँग पर फेंककर सामने शीशा किया, ब्रुश उठाया, पानी में डुबोया और साबुन लगाकर डाढ़ी पर रगडने लगा। फेन उठा और डाढी को घेर कर हँस उठा। शीशे में अपना मुँह देखकर उसे खुद हँसी आ गयी। शेव कर वह बाथ रूम में घुस गया। काफी देर स्नान करने बाद बाथरूम से निकल कर वह कघी कर ही रहा था कि किसी ने कहा—"आ सकती हूँ?"

आनन्द चौका—"कौन ? अरे, मोहिनी जी आप ! नमस्ते ।"

"जी, मैने समझा कि सब लोग यही होगे । क्या बेल करूँ और इधर आयी तो नौकर भी नही दिखाई दिया । आपकी बैठक भी तो बन्द थी । माफ़ कीजियेगा । बाकी लोग कहाँ गये ?"

"कौन बाकी लोग ?"

"अरे कामेश्वर जी, जगतप्रसाद, नवलकिशोर जी वगैरह । यही तो मिलने को तय हुआ था ।"

"यहाँ !"

"जी ।"

"यहाँ तो कोई नही आया और कामेश्वर भी सुबह से बाहर गये हैं ।"

ड्राइंग रूम का वह दरवाजा जो इस कमरे में खुलता था खोलता हुआ आनन्द बोला—"आप बैठिये । मैं अभी आया ।"

"मोहिनी ने जाकपर्दा तो खीच ही दिया किवाड़े भी उढका लिये ।

थोडी देर में, आनन्द जब तैयार होकर कमरे में घुसा तो देखा मोहिनी चुपचाव बैठी, कुर्सी की बाँह पर अँगुलियाँ पटक रही थी ।

"आ गये आप ?"

"जी, आगया । पहले आप बताइये कि आप कुछ ··?"

"नही आनन्द जी, मैं घर से डटकर नाश्ता करके निकली हूँ, बल्कि इसी से मैं समझती थी कि कुछ देर हो गयी है ।"

"कुछ तो ।"

"आप अपने लिये मँगा लीजिये ।"

"मैं तो अभी चाय पीकर उठा था । यहाँ किसी खास काम के लिये आप लोग····?"

"खास काम क्या, क्लब का वार्षिकोत्सव नज़दीक आ गया है, उसी के विषय में कुछ बातें करनी थी।"

"लेकिन अब कैसे कोजिएगा ?"

"हाँ, अब कैसे हो सकनी हैं।" मोहिनी ने हँसते हुए कहा—"आप तो लगता है कि कही जाने के लिये तैयार है।"

"मैं ? नही तो। अभी स्नान करके उठा हूँ। हाँ, सोचता जरूर हूँ कि कही हो आऊँ; लेकिन अभी कुछ तय नही कर पाया।"

"घर से निकल पडिये, कहीं न कही मंज़िल बन ही जायेगी।" मोहिनी ने हँसकर कहा।

"यही मैं भी सोचता हूँ मोहिनी जी। लेकिन भय है कि कही रास्ता भटका न दे।" आनन्द ने मोहिनी की हँसी में योग दे दिया।

"रास्ते नही भटका करते आनन्दजी, राही अलबत्ता भटकजाते हैं।"

"हो सकता है। पर यह तो आप मानेंगी ही कि रास्ते खुद न भटकें; लेकिन राही को तो भटका देते हैं !"

मोहिनो से जल्दी कोई जवाब बन नहो पडा। बोली—"तो क्या आपने सचमुच किसी निश्चित स्थान पर जाने को नही सोचा है ?"

"नही मोहिनी जी, वैसे मन में है कि पहले आफिस के एक मित्र के यहाँ जाऊँगा। उनका बडा आग्रह है कि कभी आते नही, फिर हो सका तो आज पिक्चर निकल जाऊँगा।"

"पिक्चर ?"

"हाँ, काफ़ी दिन हुए नही देखा।"

"तो चलिये।"

"नही, आप बैठना चाहे तो बैठिये। शायद कामेश्वर जी आ ही जायँ। नही तो हटाइये। मैं भी बैठा हूँ।"

"नही-नही चला जाय ।"

दोनों उठकर नीचे आये ।

मोहिनी बोली—"मैं समझती थी कि यहाँ देर लगेगी, इसलिये गाडी भेज दी थी । अब ।"

"आइये, पहले कुछ जलपान कर लें ।

मोहिनी ने देखा कि आनन्द अभी स्नान करके आया है और जलपान की बात टालना उसके साथ अन्याय होगा । अतः वह बोली नही, साथ हो ली ।

जलपान करके, रेस्तोरॉ से जब दोनो बाहर आये तो मोहिनी ने अपनी घडी देखते हुए कहा—"आनन्द जी, अब तो आप एक ही काम कर सकते हैं; चाहे पिक्चर देख लीजिये चाहे अपने मित्र के यहाँ हो लीजिये ।"

"क्या हर्ज है, पिक्चर फिर कभी देख लूँगा ।"

"और दोस्त से फिर नही मिल सकते ? जैसा आप ठीक समझें। अच्छा, तो मुझे आज्ञा दीजिये ।"

"ठीक है मोहिनी जी । चलिये, मैं पिक्चर-पैलेस पर उतर जाऊँगा । आप उधर से घर चली जाइयेगा ।"

मोहिनी ने उत्तर नही दिया । आनन्द ने एक ताँगा बुलाया और दोनो बैठ कर चल दिये ।

रास्ते में आनन्द के मन में उठा कि मोहिनी से सिनेमा के लिये पूछे कि न पूछे । माना कि मोहिनी से परिचय नया नही है, लेकिन इसके पहले उसने मोहिनी के साथ कभी कोई कार्यक्रम नही बनाया है । पता नही, मोहिनी स्वीकार करे, न करे । लेकिन न पूछना अच्छा भी तो नही मालूम देता । सोचेगी कि एक बार भी नही पूछा ।

सिनेमा-घर आया तो आनन्द ताँगे से उतर पडा ।

"मोहिनी जी, अगर आप का कोई जरूरी काम न हो तो साथ दीजिएगा ? अकेले तो जानती हैं, कितना ऊब जाऊँगा।"

"चलिये, आप कहते हैं तो ...।"

आनन्द ने टिकट लिये और फिर दोनों जाकर अन्दर बैठ गये। चित्र अभी प्रारम्भ ही हुआ था। चित्र के बीच में आनन्द ने जब अपनी सीट के हत्थे पर अचानक हाथ रखा तो मोहिनी के हाथ पर अपना हाथ पाकर उसने अपना हाथ झटके से खींच लिया। उसके बाद उसने सोचा—शायद मोहिनी ने भी हाथ हटा लिया हो। अतः उसने दो-तीन मिनट के बाद फिर हाथ रखा; लेकिन मोहिनी का हाथ वहीं था। इस बार आनन्द ने हाथ हटाया तो उसके मन में आया कि मैंने बेकार ही दुबारा हाथ रखा। मोहिनी ने कुछ फील न किया हो।

चित्र की कथा आगे बढ रही थी। लेकिन आनन्द का मन कहाँ से कहाँ पहुँच गया था। कभी वह मोहिनी के बारे में सोचने लगता, कभी रजना का भी ख्याल हो आता। राज के दो पत्र आये; लेकिन कितने संक्षिप्त में उसके आठ-पृष्ठों के पत्रों का उत्तर केवल डेढ-दो पेज के पत्र ! क्या कारण हो सकता है ? उसमें अधिक विस्तृत पत्र तो रानी के ही हैं। कितनी बातें रहती हैं उसमें ? डायरी ? डायरी तो उससे दस-बारह दिन के बाद लिखी ही नहीं गयी। और लिखे भी तो क्या ? कुछ लिखने लायक चीज भी तो मिले। आज जब वह कामेश्वर को बतायेगा कि वह मोहिनी के साथ पिक्चर गया था तो कैसा मुस्कराकर रह जायगा। और यह मोहिनी ? आखिर क्या सोचती है ? शादी नहीं, नौकरी नहीं, भविष्य के विषय में कुछ तो सोचा होगा ? कामेश्वर ने बताया था कि पहला लडका, जिससे शादी की बात चली थी, विदेश चला गया। फिर अजीत भाटिया आया। वह डी०एस०पी० था। अचानक एक रिश्वत के मामले में फँस गया और जाने कहाँ चला गया। फिर प्रकाशचन्द्र जालान से भी काफी पटी। लेकिन एक दिन पता लगा कि उसने कोई शादी करली है और आजकल दक्षिण-भारत में है। कुछ दिन

उससे भी निकटता बढी थी, लेकिन आरती नाम की एक लडकी के बीच में आ जाने से सम्बन्ध अन्दर-ही-अन्दर कुछ कमज़ोर पड गये। किसी दूसरे के विषय में इतना सुनने को मिला होता तो शायद मन पर अरुचि और साफ कहूँ तो घृणा की हल्की पर्त फैल गयी होती। लेकिन मोहिनी का व्यवहार, उसके बातें, बातो मे सरलता, दबी मुस्कराहट और निर्मल हँसी, बातचीत में कभी बच्चो की सी ज़िद्द और मुँह बनाकर किया गया हठ—विश्वास नही करने देते थे कि जो सुना है वह सब सच है। यो तो आपकी दुनियाँ ही ऐसी है। और खासकर भारतवर्ष में, जहाँ शिक्षित अर्धशिक्षित और बिल्कुल अशिक्षित के अपूर्व मिश्रण से बने समाज में, किन्ही दो स्त्री-पुरुष मित्रो के सम्बन्ध में इस प्रकार की शकाओ को बे हिचक उडने के लिये मुक्त कर देना खेल है !

चित्र चल रहा था। अचानक मोहिनी आनन्द की ओर झुकी; कन्धे से कन्धा सटगया और वह धीरे से बोली—"आनन्द, तुम कह सकते हो कि औरत की कमज़ोरी से लाभ उठाकर मनुष्य ने अपने स्वार्थ की सिद्धि मे कभी कोई हिचक महसूस की है ?" चित्र का प्रसंग भी कुछ इसी प्रकार का था। आनन्द चौंक-सा पडा बोला—"जी।" और उसने अपना कन्धा खीच लेना चाहा। फिर उसने कहा—"आपने कुछ कहा मोहिनी जी ?"

लगा, कन्धे का बोझ एक झटके से हट गया है।

"मैंने ? कुछ नहीं आनन्द जी। पता नही आज सुबह से सिर में हल्का-हल्का दर्द क्यो है !"

"क्या इस समय कुछ ज्यादा बढ गया है ?"

"नही ठीक है। पिक्चर तो अच्छी है।"

"हाँ, अभी तक तो ठीक है। आगे देखिये।"

करीब पन्द्रह मिनट की खामोशी के बाद 'मध्यान्तर' हुआ।

प्रकाश में आनन्द ने देखा कि मोहिनी के चेहरे पर कुछ थकान के से चिह्न हैं। मोहिनी ने एक बार इधर-उधर देखा ओर फिर अपने पन्जो से माथे को दोनो ओर से दबाते हुए आँखें बन्द कर सिर नीचे कर लिया।

"आइये बाहर हो लें, कुछ हवा ही लगे।"

मोहिनी ने उत्तर तो नही दिया; पर वह उठ खडी हुई।

बाहर आकर स्टाल पर आनन्द ने चाय का ऑर्डर दिया और मोहिनी से कहा—"आप बैठिये। मैं अभी पान लेकर आता हूँ।"

पान की दुकान पर जगतप्रकाश दिखाई पडा।

"नमस्कार जगतप्रकाश जी।"

"आच्छा; आनन्द तुम! नमस्कार। कहो कैसे? पिक्चर देख रहे हो क्या?"

पानवाले को पैसे फेंककर, पान लपेटने को कहकर, आनन्द ने उत्तर दिया—"जी, यूँ ही चला आया।"

"अकेले हो, या कामेश्वर भी है?"

"कामेश्वर नही; मोहिनी जी हैं। आप भी क्या··?"

"हाँ, मैं भी देख रहा हूँ। लेकिन मोहिनी कहाँ हैं?"

"उधर बैठी हैं। सुबह आप लोगों की कोई सिटिंग थी मेरे यहाँ?"

"क्यो, क्या हुआ?"

"कुछ नही, उसी के लिये मोहिनी जी आयी थी। फिर हम लोग यहाँ चले आये।"

पान लेकर चलते हुए आनन्द ने कहा।

मोहिनी पास पहुँचते ही, जगतप्रकाश को नमस्ते करती हुई उठ खडी हुई। जगत ने प्रत्युत्तर देते हुए कहा—"क्यो मोहनी जी, आपके यहाँ कल मैंने फ़ोन तो कर दिया था कि बैठक आगे के लिये स्थगित कर दी गई है।"

दो प्याले रखते हुए बैरे से मोहिनी ने कहा—"एक और ले आओ जल्दी से।" और जगत से बोली—"मगर मुझे किसी ने बताया ही नही। मैं कामेश्वर के यहाँ गयी तो वहाँ कोई मिला ही नही।"

"फिर सोचा कि पिक्चर ही देख डाली जाय। क्यो ?" जगत ने हँस कर कहा।

"नही, विचार तो नही था। रास्ते में आनन्दजी ने आग्रह किया तो चली आयी। लेकिन पता नही, तबियत क्यो भारी-भारी लगती है।"

"दुश्मनो की तबियत नासाज़ है क्या ?"

खाली कप रखते हुए मोहिनी ने मुस्कराकर कहा—"दुश्मनो को तो कभी कुछ होता ही नही। और· · ?"

"और जो कुछ होने को होता है, सब आपको ही हो जाता है, क्यो ?"

सब हँस पडे।

इसके बाद दो-तीन बाते पिक्चर के विषय में हुई और सब लोग उठ खड़े हुए। हाल के गेट के पास मोहिनी ने पूछा—"जगत जी, आप अकेले हैं क्या ?"

"आपने क्या समझा था ? अरे सबको साथी थोडे ही मिल जाते हैं। किस्मत जो जुदा-जुदा होती है।"

"तो आइये, साथ ही बैठा जाय।"

"चल तो इसीलिये रहा हूँ। हॉ हुज़ूर को कुछ · · ?"

"चुप भी रहिये।" मोहिनी हाल में घुस गयी। पीछे जगत और सबसे पीछे आनन्द।

मोहिनी बीच में बैठी रही। कुछ बातें नही हुई। बीच में जगत ने पूछा भर—"मोहिनी जी क्या बात है ? सरदर्द बढ़ गया है क्या ?"

"नही तो, ठीक हूँ। पिक्चर देख रही हूँ।"

आनन्द चुपचाप देखता रहा, कुछ सोचता रहा। बीच में दो-एक बातें जगत और मोहिनो मे और हुई, लेकिन आनन्द ने सुना नही। उसके मन मे आया कि अकेले आता, तो शायद अच्छा रहता।

पिक्चर समाप्त होने पर जब सब बाहर आये तो जगत ने कहा—"मोहिनी जी, आपकी गाडी तो है नही।"

"न, मैंने कामेश्वर के यहाँ हो छोड दी थी।"

"तो चलिये, मै आपको छोड दूँ।"

"चलिये।"

अचानक बस आती हुई दिखायी दी तो आनन्द ने कहा—"अच्छा जगत जी, मुझे आज्ञा दीजिये, मैं बस से निकल जाऊँ।"

"कहिये तो आपको भी छोडता चलूँ। थोडा चक्कर जरूर पडेगा, लेकिन क्या हुआ?"

"नही, ठीक है। अच्छा, नमस्ते मोहिनीजी" और जब तक वे लोग कुछ और कहे-कहे, तब तक आनन्द उछलकर बस में हो रहा।

आफिस से लौटकर, घर आने पर आनन्द को ख्याल आया कि कामेश्वर ने तो आज आफिस मे ही बुलाया था। शरीर में बडा आलस था, लेटने की तबियत थी। किसी तरह उसने हाँथ-मुँह धोया और वह कपडे बदलकर निकल पडा। वह जब आफिस पहुँचा तो कामेश्वर आफिस से नीचे आकर खडा एक नवयुवती से बाते कर रहा था। उस नवयुवती को देखकर आनन्द को लगा कि इसे कही देखा है, लेकिन याद नही पड रहा है, कहाँ देखा है। नहो-नही, इसे नही, बिल्कुल इसी तरह की आकृति तो थी उसकी भी। लेकिन किसकी? पास पहुँचा तो कामेश्वर ने परिचय कराया—

"आरती बोस । हाँ-हाँ वही आरती बोस जिनके बारे में तुमसे कई बार ज़िक्र किया है ।"

'आरती बोस ? बोस ??' अचानक आनन्द को जीवन के साथ मिली वन्दना बोस की याद हो आई । उसने सकुचाते हुए पूछा—"आरती जी, क्या आपकी कोई बहन इलाहाबाद में ...... ?"

"हाँ-हाँ बन्दना; पढ़ती हैं इलाहाबाद में । क्यो, तुम जानते हो क्या ?"

कामेश्वर ने बीच में ही बात काट दी ।

"विशेष नही, यूही एक बार परिचय हुआ था ।"

"बड़ी चंचल लड़की है, मेरा तो घर भर उससे परेशान रहता है ।" आरती ने कहा ।

"आपके बिल्कुल विपरीत हैं ।"

कामेश्वर ने हँसते हुए कहा—"आनन्द, तुम्हें कितनी बार समझाया कि किसी के बारे में इतनी जल्दी निर्णय मत दे दिया करो । तुमने अभी आरती को देखा ही कहाँ है ? बन्दना से कोसो आगे है आप । क्यो आरती ? क्यो उस बेचारी की पीठ पीछे बुराई करा रही हो ?"

"मैं बुराई कराती हूँ और आप क्या आनन्द जी से मेरे विषय में बातें करके मुझे वरदान देते थे ?"

"मैं ! मैं तो पानी पी-पीकर कोसता था ।"

कामेश्वर आज काफी खुश नजर आ रहा था ।

"चलिये, आज मैं सबका बदला चुकाये देती हूँ । आप से ज्यादा न सुनाया तो नाम नही ।" फिर चलती हुई आरती बोली—"अंकिल तो बड़ा हिचक रहे थे, लेकिन चाची मान गयी, इसलिये वे कुछ कह नही सके । कामेश्वर, मैं तो चली भी आयी; लेकिन एक तुम हो कि आना तो दूर, दो आने खर्च करने में जान निकलती है । एक बात बताऊँ ? अगले कुछ ही

महीने में शायद मैं यही आ जाऊँ। आज मुझे पता लगा है कि महिला कालेज में एक जगह खाली होनेवाली है।"

आनन्द सोचने लगा कि कहाँ आ गया। इतने दिनो बाद दोनो मिले हैं। दोनो के बेतकल्लुफ होकर बात करने में वह सकोच की एक दीवार ही तो है। तभी कामेश्वर ने कहा—"आनन्द, थोडी देर पहले मोहिनी का फ़ोन आया था। तुम्हे बुलाया है। मैंने काम पूछा तो कहा, पहले भेज दीजिये, फिर बता दूँगी। क्या हर्ज है, तुम उससे मिल लो? हम उसकी कोठी पर तुम्हे छोडते हुए निकल जायँगे। या चलो साथ ही घूमें।"

"चलिये, मैं मिल लेता हूँ। देखूँ, क्या बात है।"

कामेश्वर ने कहा—"डरो नही; आज जगत नही मिलेगा।"

आनन्द न हँसा, न मुस्कराया।

सब जाकर कार में बैठ गये। मोहिनी की कोठी पर गाडी रोकते हुए कामेश्वर ने कहा—"शायद मुझे देर हो जाय आनन्द। तुम इन्तज़ार न करना, समझे? और सुनो, चाहना तो नौ बजे अनुपम टाकीज़ मे आ जाना। पिक्चर देखेंगे।"

"चाहना क्या, ज़रूर आइयेगा आनन्दजी। इस समय तो कुछ बातें ही नहीं हुई आपसे। उस समय ज़रा फ़ुरसत से बात करूँगी। अच्छा नमस्ते।"

गाडी आगे बढ गयी।

पहले तो आनन्द फाटक की ओर बढा। फिर देखा कि गाडी निकल गयी है, तो खडा हो गया। दो मिनट सोचता रहा कि कहाँ जाय। मन हुआ, चलो सुदर्शन के यहाँ ही हो लिया जाय।

वह कभी उसके घर गया तो नही है; लेकिन उसने जो एक बार पता-ठिकाना बताया था, उससे घर पहुँचने में कोई असुविधा तो न होनी चाहिये। वह घूमकर एक ओर बढ़ा ही था कि आती हुई एक कार सहसा उसकी

बगल में आ रुकी । आनन्द ने चौंककर देखा । और कोई नही, स्वय मोहिनी कार में थी। उसने खिडकी से मुँह निकालकर कहा—"क्षमा कीजियेगा आनन्द जी, आपको प्रतीक्षा करनी पडो ।"

"नही-नही, प्रतीक्षा की क्या बात है ?"

"बात क्यो नही ? आप जा ही रहे थे । ज़रा-सी देर और हो जाती तो आप गायब ही थे । खैर, चलिये, आइये बैठ जाइये ।" मोहिनी ने पीछे मुडकर दरवाज़ा खोलते हुए कहा ।

"नही, मैं चलता हूँ ।" कह कर आनन्द कोठी की ओर बढा । और 'अच्छा' कहकर मोहिनी ने गाडी आगे बढायी ।

पोर्टिको के नीचे गाडी खडी करके मोहिनी उतर गयी और हाथ का बैग झुलाते हुए आनन्द को देखने लगी। आनन्द पहुँचा तो सीढियाँ चढते हुए उसने कहा—"आपको कामेश्वर जी ने बताया होगा ।"

" जी ।"

तब तक एक नौकर ने आकर सामने का दरवाज़ा खोलते हुए कहा—"एक बाबू जी आये थे । बैठे रहे, फिर चले गये ।"

मोहिनी ने हँसते हुए कहा—"चले कहाँ जायेंगे काशी। देखो मैं पकड लाई हूँ ।"

काशी ने आनन्द को देखते हुए उत्तर दिया—"आप नही, वो जो नीली मोटर पर आते हैं ।"

"कौन जगतबाबू ? कुछ कह गये हैं !"

"जी, कह तो कुछ नही गये हैं। बस, इतना कह गये हैं कि कह देना ड्रामे में मिलेंगे ।

'अच्छा' कहकर मोहिनी कमरे में आ गयी। आनन्द को एक कुर्सी पर बैठने का इशारा करके उसने नौकर को आवाज दी । वह आया तो पूछा—"डैडी हैं ?"

"वह तो किसी पार्टी में गये हैं। मेम साहब भी साथ ही गयी हैं।"

"सोहिनी ?"

"वह आर्ट-स्कूल गयी है।"

"अच्छा आनन्दजी, आप पाँच मिनट और क्षमा कीजिये। मैं अभी आयी। ज़रा आपके लिये कुछ ' ...।"

"नही मोहिनीजी। मैं अभी घर से चाय पीकर आ रहा हूँ।"

अन्दर के दरवाज़े पर पहूँच कर मोहिनी ने मुडकर मुस्कराते हुए कहा—"आनन्द जी यह मेरा घर है। यहाँ मेरी ही इच्छाएँ चलेंगी" और घूमकर चली गयी।

आनन्द ने पहले इधर-उधर देखा, फिर सामने सोफ़े पर एक पत्रिका पडी दिखाई दी। वह उठा, वहीं जाकर पत्रिका हाथ लेकर बैठ गया। मोहिनी लौटी तो आनन्द ने पहली ही दृष्टि में जान लिया कि वह नये वस्त्रों में नये प्रसाधन के साथ आयी है। आकर बैठते ही उसने कहा—"कला-केन्द्र की ओर से जो नाटक हो रहा है, उसे देखने चलियेगा ? नाश्ता करके चलिये देख ही लिया जाय ?"

"नही, आप हो आइये। जगतजी ने वही बुलाया है क्या ?"

"हाँ, उन्ही का आग्रह था। मैंने कहा था, जाइयेगा तो मुझे लेते चलियेगा। लेकिन क्या बताऊँ, एक सहेली को छोड़ने स्टेशन चली गयी, वहीं देर हो गयी। वह आये भी और चले भी गये।

"तो आप हो आइये न ! मैं फिर किसी दिन आ जाऊँगा।"

"नही, अब जाने दीजिये।"

नौकर चाय और नाश्ते की प्लेटें रख गया। मोहिनी ने चाय बनायी। प्लेट और प्याला आनन्द के सामने खसकाते हुए बोली—"लीजिये।"

"यह नाश्ता है कि भोजन ?"

"जो समझिये। वैसे भोजन तो साढ़े दस के करीब नसीब होंगे।"

"बडी देर में होता है भोजन आपके यहाँ" कहकर आनन्द ने प्लेट में हाथ लगाया।

नाश्ता चलता रहा। चाय चलती रही, तो बातें क्यो न चलती? वह भी चलती रही।

"हाँ मोहिनी जी, यह तो बतलाइये कि आपने किस लिये बुलाया था?"

"कोई जरूरी है कि किसी काम के लिये ही बुलाया जाय? यो भी आपसे इधर कई दिनो से मुलाकात नही हुई थी। बुलाने के लिये क्या इतना काफ़ी नही है?"

"सो तो कृपा है आपकी। वैसे मैंने समझा कि कोई बात होगी।"

"हाँ, एक काम की भी बात करनी थी, लेकिन वह तो बाइ-दि-वे है।"

"बताइये।"

"कोई जल्दी है? बता दूँगी। जब आप समझते हैं कि किसी काम के लिये ही बुलाया है, तो ठीक है। काम बता भी दूँगी और काम ले भी लूँगी। बस न?"

आनन्द ने उत्तर नही दिया।

नाश्ता करने के बाद मोहिनी ने कहा—"आनन्द जी, ड्रामा देखने नही चल रहे हैं तो कही घूमने ही क्यो न चला जाय? शाम को घर में तो मेरा दम घुटने लगता है। आइये, कही भी घूमेंगे।"

आनन्द उठ खडा हुआ। बाहर आकर मोहिनी ने नौकर से कहा—"डैडी से कह देना, मैं आठ बजे तक आऊँगी। समझे?"

थोडी देर बाद मोहिनी की कार घनी बस्ती से निकलकर एक खाली सडक पर दौड रही थी। आनन्द कुछ असमंजस में पडा। उसने पूछा—"कहाँ चल रही हैं आप?"

"क्यो ? हॉ, एक बात बताओ आनन्द। क्या रोज़-रोज़ उसी चहल-पहल, भीड-भाड और गर्द-गुबार में घूमने से तुम्हारी तबियत नही ऊबती ?"

"लेकिन उससे बचा भी तो नही जा सकता।"

"क्या एक-आध दिन के लिये भी नहीं ? एकरस और बिल्कुल बँधी-बँधायी ज़िन्दगी भी तो एक तरह की मौत ही होती है। कम-से-कम मैं तो ऐसा ही समझती हूँ।"

"इस तरह तो आप नियमित जीवन पर भी आक्षेप कर रही हैं। यह आक्षेप आपकी जान में भले न हो, लेकिन वह हो तो जाता ही है।"

"लेकिन अत्यधिक नियमितता का जीवन व्यतीत करना क्या यान्त्रिक जीवन से ज्यादा दूर की चीज़ है ? खैर छोडो। तुम गाड़ी ड्राइव कर लेते हो ?"

आनन्द जानता है कि आप और तुम की खिचडी मोहिनी की बातचीत में चलती है।

"हॉ, थोडा-बहुत। क्यो ?"

"ऐसे ही पूछा। कामेश्वर के साथ तो कभी ड्राइव करते नही देखा।"

"कुशल जो नही हूँ।""""मेरा ख्याल है कि अब लौटना चाहिये कि बिल्कुल कुतुब तक चलने का इरादा है ?"

"लौटिये। वैसे शाम के धूमिल प्रकाश में कुतुब आपने कभी देखा नही है। कभी देखिये, अजीब सी भावनाएँ उठती है मन में।" मोहिनी ने गाड़ी धीमी की और मोड ली।

"आप ड्राइव कीजिये न ?"

"ठीक है, आप चलाइये।"

"मैं तो चलाऊँगी ही।" मोहिनी ने एक्सलेटर दबाते हुए गाडी तेज़ की—"कामेश्वर जी कहाँ होंगे ?"

"पता नही। कोई उनकी मित्र हैं, आरती बोस। उन्ही के साथ कही गये हैं।"

"आरती ! क्या वह यहाँ आयी है ?" मोहिनी ने अपनी सीट पर कुछ उचककर आनन्द की ओर मुँह करके पूछा ।

"आप जानती हैं क्या उन्हे ?"

"जानती क्यो नही, यही रेडियो पर काम करती थी ।" मोहिनी ने कुछ मुँह विचकाया—"कामेश्वर साहब तो तभी से उसके पीछे पडे हैं । बडी होशियार लडकी है ।"

"बातचीत से तो ऐसी कोई बात नही मालूम पडती ।"

"जरूरी है कि बातचीत से मालूम ही हो जाय ।"

बस्ती में आकर एक रेस्तोराँ के सामने कार रुकी तो जाती हुई एक टैक्सी को देखकर आनन्द कुछ चौंका सा और उसके मुँह से निकला—"अरे !"

"क्या बात है आनन्द !"

"कुछ नही, वह जो टैक्सी गयी है न, मुझे लगा कि उसमें से जगत बाबू ने हाथ उठाया था । पहले मैंने ख्याल नही किया । फिर किया, तो वह निकल गयी ।"

"जगत बाबू ? आप भी खूब हैं आनन्द जी । अरे वह ड्रामे मे होगे कि यहाँ ! फिर अपनी गाडी छोडकर टैक्सी क्यों पकडेगे ?"

दोनो अन्दर जाकर बैठे, तो मोहिनी ने जाने कैसे पूछ दिया—"तुम कभी सिगरेट नही पीते आनन्द ?"

"पीता क्यो नही, लेकिन यदा-कदा ही पीता हूँ ।" आज की बातो की कोई तुक उसकी समझ में नही आ रही थी ।

"मैंने कभी देखा नही ।"

"न देखा होगा । फिर कोई जरूरी है कि आप मेरे सभी अवगुण देखें ?"

आनन्द ने हँसते हुए कहा—"आप भी क्या कहेंगी ! ब्वाय जरा सिगरेट तो लाना ।"

ऑर्डर देकर मोहिनी बोली—"हॉ, तो आपको बता दूँ कि किस लिये बुलाया था ?"

"बताइये ।"

"डैडी के एक लेखक मित्र हैं ठाकुर दिगविजय सिह । कई उपन्यास लिखे हैं उन्होने । उनमे से कई के तो अग्रेज़ी और अन्य प्रान्तीय भाषाओ में अनुवाद भी हुए हैं ।"

"नाम सुना है ।"

"एक कोई प्रकाशक महाशय हैं जो उनके एक नवीनतम उपन्यास का अग्रेजी मे अनुवाद प्रकाशित करना चाहते हैं; लेकिन कोई सुयोग्य अनुवादक उन्हे मिल नही रहा है । इसलिये उन्होने ठाकुर साहब से कहा होगा कि अगर कोई अच्छा अनुवादक उनकी नज़र में हो तो बताने का कष्ट करें । वही कल डैडो से बता रहे थे और कह रहे थे कि अगर आप किसी ऐसे आदमी को जानते हो जो ठीक काम कर सके, तो बताइयेगा । पेमेण्ट पॉच रुपये पेज तक दिया जा सकता है, बशर्ते अनुवाद अच्छा हो ।"

"पॉच रुपये अनुवाद के लिये अच्छा पेमेण्ट है ।"

"हॉ, काफी है । जब वह डैडी से कह रहे थे, तब मैं वही पर थी । उसी समय मुझे आपका खयाल हो आया । कामेश्वरजी ने बताया था एक दिन कि अनुवाद का काफ़ी काम आप कर चुके हैं । हिन्दी और अग्रेज़ी दोनो से । इसलिये मैने कह दिया कि मेरे एक परिचित हैं, जो शायद इसे अच्छे ढग से निपटा सकते है । मै उनसे पूछकर आपको बताऊँगी । कई सौ पृष्ठो के लगभग का एक लघुउपन्यास है ।"

बैरा सामान रख गया था । हाथ और मुँह अपना काम करने लगे थे ।

"मैं सोचकर बताऊँगा मोहिनी जी । क्योकि मेरे पास खुद एक काम है, मैं वही नही कर पा रहा हूँ ।"

"मै राय दूँगी कि तुम इसे कर डालो आनन्द । ठाकुर साहब बहुत सोर्स के आदमी हैं । आगे-पीछे तुम चाहोगे तो उनसे पचासो काम निकाल सकोगे ।"

"अच्छा देखिये । मैं परसो-नरसो तक आपको निश्चित रूप से बता दूँगा ।"

इसके पश्चात कुछ और फालतू की बातें होती रही । रेस्तोरॉ के किनारे रखे एक बॉक्स में कोई अंग्रेजी गीत की ट्यून मचली तो रेस्तोरॉ की सारे चहल-पहल—सिगरेट, गर्म चाय और काफ़ी के प्यालो से उडनेवाले धुओ—पर ही नही, उसमें उभरने वाले वार्तालाप और कहकहो के ऊपर भी छाकर रह गयी । आनन्द ने सिगरेट मँगाकर सुलगायी ही थी कि मोहिनी पूछ बैठी—"आनन्द जी आपको तो शिकार का बडा शौक है ।"

"हॉ, है तो ।" आनन्द को याद आया कि एक बार उसे वकील साहब के एक मित्र के साथ शिकार पर जाने को विवश होना पडा था और उसी का संस्मरण, एक दिन वह कामेश्वर को सुना रहा था । तभी मोहिनी जी आ गयी थी । आनन्द ने सोच लिया कि मोहिनी की स्मृति मे वही बात है ।

"यहॉ शिकार नही करते । सब भूल गया क्या ?"

"नही, भूल कैसे जाऊँगा ? लेकिन यहॉ नयी दिल्ली में शिकार ? क्या मजाक करती है मोहिनी जी आप भी !" कहकर आनन्द ऐसा हँसा कि चाय छलकते छलकते बची ।

"क्यो, मजाक़ क्यो ? शिकारी आदमी को हर जगह शिकार मिल जाते हैं ।"

"लेकिन मैं इतना पहुँचा हुआ शिकारी जो नही हूँ ।"

"क्यों झूठ बोलते हैं आप ?" मोहिनी ने उस पर दृष्टि गडायी ।

"तो झूठ ही समझ लीजिये ।" बिल के पैसे देता हुआ आनन्द उठ खड़ा हुआ ।

"आनन्द जी ! आप बडी मजेदार बातें करते हैं।"

"चलिये, आज एक सर्टीफ़िकेट तो दिया आपने।" वह खुलकर हँस रहा था।

"बाकी भी धीरे-धीरे मिल जायेगे।" मोहिनी ने उछलकर आनन्द के साथ आते हुए कहा।

"चलिये, आपको छोड दूँ।"

"नही, ठीक है मोहिनीजी। यही पास में एक मित्र का मकान है। ज़रा उनसे मिलने जाना चाहता हूँ। क्यो आप कष्ट करेंगी!"

"तो उस बात के विषय में?"

"मैं परसो तक आपसे मिल सका तो मिलकर, नही तो फ़ोन पर बतादूँगा। अच्छा, नमस्ते।"

एक ओर चलते हुए ही आनन्द ने कार का दरवाज़ा बन्द होने, कार स्टार्ट होने और फिर गाडी के आगे बढने की क्रमशः क्षीण होती ध्वनि सुनी थी।

कमरा खोलकर आनन्द कमरे में आया तो वहाँ दो पत्र पडे हुए थे। पहला पत्र रमेश का था। और वह अभी प्रयाग गया था, अतः माया आदि के भी हाल उसने लिख भेजे थे। साथ ही उसने वह भी लिखा था—आ० ए० स० एलाइड्स में मेरा इण्टरव्यू-लेटर आज सुबह मुझे मिला। इण्टरव्यू अट्ठाइस तारीख को है। परीक्षा की तैयारियाँ चल रही हैं। आदि-आदि।

'रमेश इण्टरव्यू के लिये बुलाया गया है।' आनन्द का दिल बल्लियो उछल गया। उसकी आँखो में खुशियाँ-ही-खुशियाँ झलक उठी। —'चलो घर से एक आदमी तो निकला। अभी उसको उत्तर लिखता हूँ। मगर ज़रा यह पत्र भी तो देखलूँ।'

दूसरा पत्र जीवन का था। आज कई महीनो के बाद जीवन का पत्र आया था। जब वह पहले पहल यहाँ आया था, तब उसने जीवन को एक पत्र लिखा था, जिसका उत्तर उसे कोई बीस दिन बाद मिला था। और आनन्द के दूसरे पत्र का उत्तर तो उसने दिया ही नही था।'' आनन्द ने बडी उत्कण्ठा से पत्र पढ़ना प्रारम्भ किया।

आनन्द,

तुम शायद चौंको कि किसका पत्र आ गया है और शायद पत्र की समाप्ति पर यह भी सोचो कि अच्छा, यह बात है। इसलिये पत्र लिखा गया है, इसलिये मेरी याद की गयी है; तुम जो चाहे सोच लेना। अब मुझे उसकी चिन्ता नही है। मेरे मित्रो मे तुम्हारा स्थान जरूर कुछ सबसे अलग है; लेकिन जीवन के संघर्षमय क्षेत्र में आकर मेरा विश्वास है कि लोगो की अपनी विशेपतायें क्षीण हो चलती हैं। पता नही, कही तुम भी अपनी विशेषताएँ खो न बैठो। आनन्द, इतने अनुभवो के बाद, अब मै इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि इन्सान को परखना शायद दुनियाँ में सबसे मुश्किल काम है और सहज विश्वास कर लेने के आदी इन्सान को सबसे अधिक पछताना भी पडता है।

आनन्द, इन्सान चोट लगने पर रोता है, पछताता है और चोट लगने के सारे कारणो का मूल्य अपने को मानकर, कभी अपने से नाराज़ हो जाता है, कभी दूसरो पर कोपकर अपने को अकथनीय दया का पात्र बना लेता है और कभी अपने ऑसुओ को पीकर, अपनी हिचकियो को रोककर, मन मे उठते हुए धुँएँ को आत्म सातकर, बहुत कुछ गवाँकर, बहुत कुछ सहकर, और बहुत मँहगे दामो खरीदे हुए अपने अनुभवो को भाग्य का प्रसाद समझकर स्वीकार कर लेता है। और तब ऑखें खोलकर, समझ-बूझकर, पुराने अनुभवो के प्रकाश में नयी ज़िन्दगी का रास्ता चुनता है। आज मैं भी इसी स्थिति में आ गया हूँ।

अपने उन तमाम मित्रो से, जो कुछ मास पूर्व ही हँसने-हँसाने के क्षणो में मेरी बात सर्वोपरि मानकर मुझे अन्दर-ही-अन्दर किसी गर्व का अनुभव

करने पर वाध्य कर देते थे, जिनके साथ हमारी भविष्य की तमाम सह योजनाएँ थी, जिनके तात्कालिक उल्लास और उत्साह का मैं एक प्रबल स्रोत था, आज कोई सम्बन्ध नही रखना चाहता। आनन्द, आज वे लोग थोडे से रुपयो के लिये मुझे अपने महीने भर का हिसाब देते हैं और पचास बहानो से अपनी असमर्थता का औचित्य प्रकट करते है। आज वे अपने में और मुझमें अन्तर देखने की कोशिश करते है। जानते हो क्यो? इसलिये कि वे कमाते हैं और मै कमाने के नाम पर शून्य हूँ।

लेकिन आनन्द, तुम इसे गर्व मत समझना। मैं बहुत ही आत्म-विश्वास के साथ यह बात कह रहा हूँ। एक दिन आयेगा जब जीवन का जीवन बदलेगा। वह तरक्की करेगा, उसे कोई नही रोक सकता। मनुष्य का भाग्य नक्षत्र जब धूमिल पडने लगता है तब अपने भी उपहास करने में दूर नही रहा करते। लेकिन आज उन्हे हँसने दो आनन्द! कल वही हँसी उनके दिलो में एक हूक बनकर समा जायगी। सफलता मेरे चरण चूमती घूमेगी और तब, जब मैं उनकी हर बात में अपनी बात नहो मिला पाऊँगा तब मेरे विषय मे घमण्डी, अहबादी और न जाने क्या क्या प्रचारित किया जायगा, मै जानता हूँ।

अपने इधर के अनुभवो से मैं सोचता हूँ कि दो व्यक्तियो के मध्य पहले अविश्वास या शंकित विश्वास की कच्ची ईटो के आधार पर बनते प्रासाद की दीवारो पर जब एक व्यक्ति विश्वास का सीमेण्ट चढ़ाने लगता है या चढा देता है और दूसरा व्यक्ति उसे स्वीकार नही कर पाता है या स्वीकार करके भी उसे उचित सम्मान नही देता तो वे दीवारें चटक ही जाया करती हैं, उनमें दरारें पड ही जाती हैं जो इस गति से बढती है कि शीघ्र ही जैसा तैसा बना वह प्रासाद जमीन चाटने लगता है।

आनन्द, एक दिन आँसुओ का कोप खतम हो जाता है एक दिन मन को निराशा और घुँटन भी थक जाती है और एक दिन मनुष्य के भाग्य पर हँसनेवाली अज्ञात शक्ति भी सहमकर अपनी मुद्रा सँभाल लेती है। लेकिन वह तब होता है जब इन्सान अन्दर से हल्का हो चलता है। वह तब होता

है, जब इन्सान हर दूसरे आदमी पर सहज विश्वास करना छोडकर शंका की हजार दृष्टियाँ गडाने का आदी हो जाता है। और यह तब होता है जब आत्मा की सुकुमारता और उसकी सच्चाई कुरूप होने लगती है।

आनन्द, आज मैं चिल्लाकर कह रहा हूँ कि मैं बदल रहा हूँ। जीवन बदल रहा है। हाँ आनन्द, जीवन बदल रहा है। अगर अबकी बार तुम इलाहाबाद आये तो मुझे बदला हुआ पाओगे। लेकिन इसका दोष मुझ पर नही तुम पर होगा, तुम लोगो पर होगा।

अब आओ मतलब की बात पर। मुझे सौ रुपये अविलम्ब चाहिये। अगर भेज सको तो भेज दो। अन्यथा स्पष्ट लिख देना कि असमर्थ हूँ। कही और दरवाजा खटखटाऊँगा।

सदा तुम्हारा— जीवन

आनन्द थोडी देर तक पत्र हाथ में लिये खडा रहा। फिर उसने जीवन को एक बहुत ही संक्षिप्त पत्र लिखा—"तुम्हे" जरा बिस्तर से एक पत्र लिखने की इच्छा है; लेकिन वह अवकाश मे दो एक-दिन बाद लिखूँगा। हाँ, तुमने जो रुपयो की बात लिखी है, सो तुम 'साहित्य-संस्थान' से जाकर ले लेना। मैं उन्हे पत्र लिखे दे रहा हूँ। अगर वे न दे सके तो लौटती डाक से मुझे सूचित करना। मैं यहाँ से भेजने का प्रबन्ध करूँगा। तुम्हारा—आनन्द।

जीवन को एक पत्र लिखने के पश्चात् आनन्द ने एक पत्र 'साहित्य संस्थान' के व्यवस्थापक को इस सम्बन्ध में लिखा।

दोनो पत्र लिखकर उसने लिफ़ाफ़ों में बन्दकर उन पर पते लिखे और एक पुस्तक से टेबिल पर दाब कर रख दिया और नौकर को आवाज़ दी। नौकर आया तो कहा—"जाओ नीचे होटल से मेरा खाना यही ले आओ।"

"अच्छा साहब!" कह कर नौकर चला गया। उसके जाने के बाद आनन्द ने उठकर रेडियो आन कर दिया। एक घरघराहट—और संगीत की लहरों पर एक गीत की ध्वनि कमरे में गूँजने लगी।

....चढ़ गया ...नदी में पानी। हो ...धीरे-धीरे ...हो धीरे-धीरे।

बस्ती के रोशनी से भरे कमरो मे अनुहार-मनुहार के खेल चलने लगे थे; अंधेरा और गर्म साँसे मचलने लगी थी। बन्द पलको में मन दिनभर के कर्म-कोलाहल से ऊपर उठकर कही और जा रम रहा था। ऐसी ही बातो के बीच कामेश्वर ने रजाई में लिपटे अधबैठे होकर सिरहाने की खिडकी खोल दी। शीत से जमे जा रहे चाँद की ढेर भर किरणें करीब आधे बिस्तर पर फैल गयी, हवा का एक झोका सामने टँगे कलेन्डर को हल्की सिहरन से भर गया।

कामेश्वर ने बाहर देखते हुए कहा—'अच्छा, एक बात और बताओ आनन्द, प्रारम्भ में तो लोग बडे जोश और गति के साथ इस क्षेत्र में उतरते है फिर वर्षों के सम्बन्ध, अनगिनत योजनाएँ, हजारो कसमें और वादे आखिर क्यो, एक छोटी सी घटना, थोडी सी अन्यमनस्कता और समय के एक झोके से कहाँ के कहाँ पहुँच जाते हैं, कभी सोचा है? तुम्हारा नाम आनन्द, मैंने इधर एक लम्बे अर्से से आरती के विषय में सोचना छोड दिया था। मुझे उम्मीद ही नहीं थी कि आरती कभी इतना झुक सकती है। तुम जानते नही आनन्द, वह बहुत स्वाभिमानी लडकी है। एक छोटी सी बात, थोडी देर की बहस, कुछ गर्मागर्मी, फिर शान्ति। इसके बाद ही वह बरेली चली गयी। दो पत्र आये। दूसरे का मैंने उत्तर नही दिया। काफी दिनो; फिर एक पोस्टकार्ड लिखा, जिसका उसने भी कोई उत्तर नही दिया। मैंने समझा, चलो नाटक समाप्त हो गया। लेकिन उस दिन जो आफिस पहुँचा न? तो मैं हक्का-बक्का रह गया था। अब सोचता हूँ कि मैंने बडा अन्याय किया था। आखिर यह सब क्यो हो जाता है? वैसे मेरी बात तो कुछ नही, मैंने तो इस प्रकार के तमाम प्रसंग विवाहित और अत्यधिक प्रेमियो के बीच घटते देखें है। कुछ बता सकते हो, इसकी वजह क्या है?"

हाथ की पुस्तक आनन्द ने बन्द कर सिरहाने रख दी, और तकिया दोहरी करके बगल में दाबकर कामेश्वर की ओर करवट ले ली। हाथ में

पुस्तक लिये हुए आज आये रजना के पत्र पर विचार कर रहा था। "एकबार यही प्रश्न कई वर्ष पूर्व मेरे एक मित्र ने भी मुझसे पूछा था; लेकिन उस समय कोई स्पष्ट उत्तर नही दे सका था। बाद मे मैंने सोचा तो मैने पाया कि प्रेम-विवाहो और इस प्रकार की प्रेम-सम्बन्धी असफलता के मूल मे कई कारण होते हैं। जैसे परिचय के प्रथम क्षणो मे और प्रारम्भिक दिनो में दोनो पक्ष एक स्तर पर, अह की एक सी भाव-भूमि और बहुत कुछ अशो में शिष्टाचार के एक ही प्रकार के धरातल पर मिलते हैं। दोनो की दृष्टि उस पर रहती है, जो उनके पास है, उनकी समर्थता के घेरे मे है, उस पर नही, जो उनके पास नही है, भले ही वह भविष्य के लिये कितनी ही आवश्यक क्यो न हो, उस समय ऑखो का दायरा सकुचित हो जाता है। इस कारण इन अभावो पर दृष्टि ही नही पडती है और अगर पडती भी है तो बहुत ही हल्की।"

आनन्द ने देखा कि कामेश्वर बडे ध्यान से उसकी बात सुन रहा है, तो उसने आगे कहा— "और जो सबसे बडी बात होती है, वह यह कि एक को किसी भी क्वॉरी सॉसो का शहजादा और दूसरे को पलको पर बसने वाले इन्द्र-धनुषी स्वप्नो का स्वरूप दिये जाने के बाद भी, भले ही एक दूसरे के सामने अतर्वाह्य खोलकर रख दिये जाने का कितना ही दम क्यो न भरा जाय, अंदर-ही-अदर एक रहस्यमय, गोपनशील प्रवृत्ति को प्रश्रय दिया जाता रहता है। कुछ-न-कुछ मिथ्या आश्वासनो और असत्य आशाओ को प्रोत्साहन मिलता रहता है। धीरे-धीरे आगे चलकर या विवाह के बाद, जिन्दगी का वह यथार्थ, जो अभाओ के रूप में अभी तक उपेक्षित था या उपेक्षित बना दिया गया था, जब उभरकर अपनी सम्पूर्ण कठोरता और कुरूपता के साथ सीना तानकर सामने आ जाता है, तब दोनो में से एक-न-एक भौचक्का रह जाता है। आश्वासनो की तहे खसकने लगती हैं और अब तक समान अह की भावना का निर्वाह करते आ रहे दो प्रेमियो के बीच ज़रूरी हो जाता है कि एक का अहं कुछ दबे, दूसरे के सामने कुछ

झुके और मिलकर परिस्थितियो के निर्वाह का रास्ता खोला जाय। वैसे भी सुखमय जीवन की कामना रखनेवाले गृहस्थ दम्पतियो मे भी जब तक एक का अह दूसरे के अहं के सामने नत मस्तक होकर समझौता करने की प्रवृत्ति नही रखेगा तब तक प्रतिक्रियाओ से भरे जीवन में सुख और शाति के पुष्प नही खिल सकेगे। पर बहुधा यह नही हो पाता है। बहुत दिन जो बहुत दूर तक समान ऊँचाई पर चलने वाले दो अहं यकायक एक दूसरे के सामने कुछ नमित होने और समझौता करने में अपने को असमर्थ पाने लगते है। परिणामस्वरूप सपनो के रंग हल्के हो जाते हैं। काल्पनिक जीवन के उद्यान में असमय में ही पतझड आ जाता है। धीरे-धीरे रोष, झुँझलाहट और अमर्ष बढता है। अपने किये पर, अपनी सच्ची बाज़ी पर, दूसरे की नीति न समझ सकनेवाली अपनी बुद्धि पर क्रोध आता है, पश्चाताप होता है और तब तक प्रेम के देवताओ की आत्मा निकल जाती है, उनकी ऑखो का अमृत झर जाता है और वे आखे खोलती रह जाती हैं।"

"लेकिन अगर दो में एक का अह दूसरे को सचमुच आत्म-समर्पण कर दे तो?" कामेश्वर ने मुस्कराते हुए पूछा। बातें काफी स्वादिष्ट हो गई थी।

"वह समर्पण क्षणिक भी तो हो सकता है। दूसरे शब्दो में बातो का तूफान, वासना की ऑधी अहं को बलात् आगे ढकेलकर भी तो आत्म समर्पण करा सकती है। अब इस समर्थन में कितना स्थायित्व हो सकता है मै नही समझता कि यह भी कोई बताने की चीज़ है। और फिर आप क्या शारीरिक समर्पण को आत्म समर्पण का ही पर्याय मानते है?"

"लेकिन तुम क्या समझते हो कि किसी स्त्री के पास उसके कौमार्य से भी बढकर कोई मूल्यवान वस्तु हो सकती है जो उसके बाद भी दूसरे के चरणो में जल देने को शेष रह जाता है।

'खाओ पियो मौज करो' के अनुयायी और नितान्त व्यावहारिक आदमी के मुख से ऐसी बात सुनकर आनन्द को थोडा आश्चर्य ज़रूर हुआ। वह

जानता है कि कामेश्वर उन आदमियो में से है जिसके लिए समय पडने पर पाप-पुण्य, ईश्वर, आत्मा, नैतिकता और अनैतिकता की परिभाषाएँ अर्थ-हीन ही उठती हैं, लेकिन आनन्द यह भी जानता था । कि जब कभी इसान स्वयं ऐसी स्थितियो का शिकार हो जाता है, तब वह सदैव बहुत ऊँची व्यास-पीठ से बोलने की कोशिश करता है ।

"आपका कहना काफी अशो तक ठीक है, लेकिन कौमार्य का समर्पण जीवन का समर्पण नही होता है । इतना तो आप भी मानेंगे । फिर कौमार्य के समर्पण के पीछे कौन सी भावना है बात इस पर भी तो ठहरती है । सम्भव है, जिस कौमार्य को आप इतना अधिक महत्व दे रहे हैं वह आपकी अपनी दृष्टि में उतना महत्वपूर्ण और बहुमूल्य न हो और आपके समय में इसका कितना मूल्य आँका और समझा जाता है, यह आप से छिपा तो नही है ।"

"हूँ, यह बात तो है ।"

"फिर आगे चलिये । इस प्रेम-प्रसंग मे आकर मनुष्य अपनी कमजोरियाँ भूल जाता है । पर दीर्घकाल तक वह अपनी अनिच्छा एवं तमाम असहनीय बातो को, रोष से भर देने वाले प्रसंगो को, किसी भी दिशा से प्रेमी या प्रेमिका से सम्बद्ध होने के कारण तरह देता रहता है, सहता रहता है । उस पर उपेक्षा की धूल डालता रहता है, लेकिन धीरे-धीरे वह ऐसा करते रहने में असमर्थ हो उठता है और अत में जब वह स्पष्टरूप से सबका विरोध करता है, तो उसके माने होते है या नही भी होते हैं, तो समझ लिये जाते है, अपने साथी की इच्छाओ का उसकी आदतो, उसकी रुचियो का जानबूझकर विरोध करना । और यही से अंतर का कँटीला पौधा अपने अँकुर फेंक कर कुटिलता से मुस्कराने लगता है ।"

"तुमसे बहस करना बेकार है । जब तुमने प्रेम ही नही किया, तो तुम जान ही क्या सकते हो ! अगर तुमने कभी प्रेम किया होता, तो शायद इतनी कटु आलोचना नही करते ।"

"मैं आलोचना कर रहा हूँ ? आप मुझे गलत समझ रहे है। अगर हमारे सम्मुख असफल प्रेम और प्रेम-विवाहो की मिसालें हे तो सफल प्रेम के भी उदाहरण कम नही हैं। मैने तो केवल आपकी बात का उत्तर दिया था। अगर हमें एक दूसरे के प्रति गहरा विश्वास है और एक दूसरे के लिए हम अपने अह, अपने हठ, अपनी आदतो और अपनी रुचियो से समझौता कर सकते हैं, अगर किसी भी उलझन का विशेषकर सामाजिक उपेक्षा का, अन्य प्रकार की कठिनाइयो का, कन्धे से कन्धा और मन से मन मिलाकर सामना करने की अभिलाषा का श्रोत हमारे हृदयो में अबाध गति से प्रभावित होना हो, तो कोई कारण नही हमारे जीवन मे बहारे न हँसे, या सुख और शाति की निर्मल हास्य-ध्वनियाँ न गूँजें।"

इस बार कामेश्वर ने जवाब नही दिया। आनन्द ने देखा, वह छत पर आँखे गडाये चुपचाप पडा है। यकायक कामेश्वर ने उठकर खिडकी बन्द कर दी और आनन्द से कहा— "खैर छोडो! बताओ, आज तुम मोहिनी के यहाँ गये थे। क्या बातें हुई ?"

"बताया तो था! मैंने कह दिया कि वह काम मुझसे नही हो सकेगा। संयोग से वह सज्जन भी वही थे। हाँ, मैं उस दिन नाम भूल गया था। उनका नाम है ठाकुर दिगविजयसिंह। पहले जागीरदार थे। यहाँ ससद सदस्य हैं और किसी कालेज के मैनेजिंग कमेटी के चेयरमैन भी हैं।"

"जानता हूँ। उनसे क्या बातें हुई ? और हाँ, वह तो लेखक भी है।"

"हाँ, मोहिनी ने परिचय में बताया था। फिर उन्होने स्वय ही बताया। मैने कहा कि दुर्भाग्य से मैने आपकी कोई कृति नही पढी। अब तो जरूर एक-दो पढूँगा। चाहे खरीद कर ही क्यो न पढ़ना पड़े।"

"मैने सुना है कि उनकी दो-तीन पुस्तको के अनुवाद भी दूसरी भाषाओ में हुए हैं।"

"सब बताया उन्होने। हॉ, तो मैंने जब उनकी पुस्तकें न पढ़ने की बात कही तो कहने लगे— वाह, आप खरीद कर पढेगे। दो-चार दिन में मै अपने प्रकाशक से कह दूँगा, वह आपके पास मेरा पूरा सेट पहुँचा देगा। हॉ, हो सके तो एक-आध लेख दीजिएगा, उसे भी संतोप हो जायेगा।"

"बडी उदारता दिखाई।" कामेश्वर मुस्कराया।

"सो तो अच्छा स्वभाव जान पडा। दस हजार एकड़ जमीन दी है भूदान मे और कोई चार महीने विनोबा जी के साथ पैदल यात्रा भी की है। बडे सस्मरण सुना रहे थे। मोटे तौर पर उन्ही के बताने के अनुसार कोई अब तक पन्द्रह लाख रुपये दान कर चुके है। स्कूल, कालेज, धर्मशाला, अस्पताल, आर्ट कालेज, नाट्यशाला जाने क्या-क्या खोला है और न जाने कितनी सस्थाओ को दान दिया है।"

"पास में पैसा है, सब कर सकते हैं।"

"अरे पैसा तो बहुतो के पास होता है; मगर इतना कौन करता है? समर्थता तो ईश्वर ने दी है मगर स्वभाव भी गजब का दिया है। इतने नम्र और खुशदिल हैं कि बस पूछिये नही। मैंने कहा कि मै एक पुस्तक लिख रहा हूँ भारतीय पुनर्जागरण पर। सुनकर बडे खुश हुए। कहने लगे— बहुत अच्छी बात है। आप कभी मेरे यहाँ आइये। गुलाम की भी एक छोटी-सी लाइब्रेरी है, उसे देखिये। सम्भव है, आपके लायक कुछ सामग्री मिल जाय। फिर नेता-टाइप की बात करते रहे कि आज देश को आप ही जैसे नौजवानो की जरूरत है। आदि-आदि।"

"फिर क्या है, हो आओ न किसी दिन उनके यहॉ? एक बात तो है, बडा गहरा रंग डाला है उन्होने तुम्हारे ऊपर।"

"मुझ पर रंग क्या डाला है? लेकिन व्यक्तित्व जरूर प्रभावशाली है उनका। भारतीय रंगमच के उत्थान के विषय में भी कुछ बातें हो रही थीं। उनका विचार है कि अगर मोहिनी जी इसका काम सँभाललें तो जितना भी रुपया लगेगा, वह लगाने को तैयार हैं।"

"अच्छा ! बडे दूर की कौडी मारी है। मान लिया, बडा ज़िंदा दिल आदमी है भाई।"

"क्या मतलब ?" आनन्द ने कामेश्वर की बात समझते हुए भी कहा।

"मतलब समय बतायेगा। अच्छा, मोहिनी तो बडी खुश नज़र आ रही होगी ? वह किसी ऐसे ही काम की तलाश में भी थी।"

"मैने उसे उदास ही कब देखा है ?"

"वह भी देख लोगे कभी, नही तो सुन ही लोगे।" कामेश्वर ने करँवट बदलने पर कहा—"लाइट आफ करो आनन्द, बडी देर हो गई आज। अच्छा, तुम काश्मीर जाने की जो बात कह रहे थे, सो कब जा रहे हो ?"

"शायद परसो जाना पडे।"

"कितने लोग जा रहे हैं ?"

"अपने विभाग मे मैं, घनश्याम और रेबेका।"

"कितने दिन लगेंगे ?"

"बात तो अभी एक सप्ताह की है, वैसे कह नही सकता।" आनन्द ने लाइट आफ करते हुए कहा।

"काश्मीर की स्थिति देखनी है। यो कार्यक्रम तो सप्ताह भर का ही है। लेकिन चार-छै दिन और लग सकते हैं। वैसे अब तक चले गये होते, लेकिन उपमंत्री अस्वस्थ हो गये थे, अब ठीक हुए है।"

"ठीक है, सोओ अब।"

बात कह कर कामेश्वर ने रजाई में मुँह ढक लिया।

बिस्तर पर लेटकर आनन्द पुनः रञ्जना के पत्र पर जा पहुँचा। बड़ी देर तक वह सोचता रहा। फिर अपने आप से बोला— "नही, वह इलाहाबाद नहीं जायगा। कल एक पत्र रञ्जना को इसी आशय का लिख देगा।"

विचारो, भावनाओ और कर्तव्याकर्तव्य का जो अन्तर्मन्थन उसके मन में उमड-घुमड रहा था, उसने आनन्द की ऑख लगने नहीं दी ।

सोते हुए कामेश्वर की सॉस जब एकाएक दो-तीन बार पश्तो-सी बोल-कर चुप हो गयी तो आनन्द स्वयं ही ऊबकर उठ बैठा । बिजली जलायी और मेज़ पर आ रहा ।

मेज़ की ड्रार से उसने रजना का पत्र निकाला और सामने फैला दिया—

आनन्द,

मै जानती हूँ कि तुम मेरे पत्र को पढने भर का समय भले ही निकाल लो, लेकिन उसका उत्तर लिखने का समय तुम शायद ही निकाल सकोगे । मेरी समझ में नही आता है कि तुम मेरे दो-दो पत्रो को कैसे हज़म कर जाते हो और सॉस तक नही लेते हो ? पत्रोत्तर के सम्बन्ध में तुम्हारे इस मौन साधन से मेरी स्थिति कितनी निरीह और दयनीय हो उठती है, तुमने कभी सोचा है ?

मैं जानती हूँ आनन्द ! कि दिल्ली बहुत अच्छी है । वहॉ के लोग बहुत अच्छे हैं । लोग वहॉ के रगीन प्रकाश में यहॉ के शुभ्र आलोक की उपेक्षा कर सकते है, कर बैठते हैं, स्वाभाविक ही है; लेकिन तुम तो उन लोगो में नही हो । कि मैं भ्रम में हूँ । क्यो ?

अपनी इस चुप्पी का कोई तो कारण बताओ पाषाण ! तुम समझते नही, मैं इन दिनो कितना कमजोर हो गयी हूँ— शरीर से नही, मन से । इधर घर में तमाम बातें ज़ोर पकड रही हैं । एक ओर मैं अपने विनाश की चर्चा में लोगो को रस लेते पाती हूँ और अभी दूसरी ओर तुम मुझे याद आते हो । तुम मुझे याद आते हो और मैं उद्विग्न हो उठती हूँ, विकलाङ्ग हो जाती हूँ । मैं पूछती हूँ कि अगर तुम्हे मेरा ख्याल नही है, अगर तुम्हारी स्मृति में मैं नही हूँ, अगर तुम मेरे पत्रो का उत्तर नहीं दे सकते, तो क्यो मुझे

याद आते हो, क्यो सुधियो के बादल बनकर मेरे मन के अम्बर पर छा जाते हो ?

मेरे आँसुओ को इतना सस्ता तो न बनाओ आनन्द कि फिर कभी मौका पड़े तो मैं रो भी न सकूँ !

कभी-कभी कोशिश करती हूँ कि मैं भी तुम्हारी ही भाँति हो जाऊँ। लेकिन क्या करूँ, नही हो पाती हूँ। कभी कमरे के कोने में रखे सूटकेस पर दृष्टि जाती है, जिसे तुमने अपनी पसद के कारण ज़िद करके मुझसे ख़रिद-वाया था; कभी तुम्हारा ही लाया हुआ बैडमिण्टन का रैकेट दीवार पर टँगा नज़र आता है, तो कभी वे पत्र-पत्रिकाएँ सामने पड जाती हैं, जिनमें तुम्हारे निबन्ध और तुम्हारी कहानियाँ हैं—और तब तुम सामने आ खडे होते हो। कभी मेज पर रखी रैक में लगी तुम्हारी पुस्तकें देखने लगती हूँ। चाहती हूँ कि उन्हे वहाँ से हटाकर किसी आलमारी में भर दूँ, लेकिन भर नही पाती हूँ। क्या करूँ, साहस ही नही होता !

तुमको मन से दूर रखने की इतनी ज्यादा कोशिश की कि अलबम से तुम्हारा चित्र निकालकर टेबिल पर स्थापित कर देना पडा। इसका परि-णाम यह हुआ कि अपने कमरे में लोगो का आना-जाना बन्द कर दिया है। क्योकि लोग आयेगे, तुम्हारा चित्र देखेंगे और पचास तरह की बात पूछेगे। मै कहाँ तक उत्तर दूँगी ?

कभी-कभी अपने ऊपर रोना आता है और झुँझलाहट भी कम नहीं आती है। इच्छा होती है कि समस्त वस्तुएँ जो तुम्हारी हैं, तुमसे सम्ब-न्धित हैं, जिनमें तुम्हारी स्मृति जुडी है, फेक दूँ, नष्ट कर दूँ, किसी को दे दूँ, या जला दूँ। न रहेगा बाँस न बजेगी बाँसुरी ! जो नियनि को स्वीकार हो, वही हो। जब तुम्हें कुछ नही, तो मुझे क्या ! अगर तुम मधुमास के पहले ही मुझे विरानी-वीरानी दिखाने पर तुले हो, तो दिखावो आनन्द, मैं प्रस्तुत हूँ देखने को ! जब जीवन का कोई मोह ही नही, कोई मूल्य ही नही, कोई महत्व ही नहीं, तो क्या बसन्त और क्या पतझड !

उफ, मैं क्या लिखती जा रही हूँ आनन्द। अब भी पर्य्याप्त समय है। तुम किसी भाँति दो-चार दिन की छुट्टी लेकर आ जाओ तो शायद डूबते को तिनके का सहारा मिल जाय। पथ निश्चित कर लेने की इस अन्तिम बेला में तो कुछ सक्रियता ग्रहण करो।

पत्र के उत्तर में पत्र नही, तुम्हे देखने का विश्वास मेरे मन में है।

सदा तुम्हारी

राज

आनन्द ने कई बार पढा हुआ पत्र फिर से पढ़ा और फिर क़लम वह उठाकर उत्तर लिखने लगा।

राज,

तुम्हारा पत्र मिला; पढ़ा भी। तुमने ठीक ही लिखा है कि मुझे अवकाश नही मिलता कि तुम्हारे विषय में विचार करुँ, तुम्हारे पत्र का उत्तर दूँ; क्योकि दिल्ली वहुत अच्छी जो है, मेरा मन जो यहाँ रम गया है। बड़े अच्छे लोग हैं यहाँ के। बडी रंगीनी है यहाँ। मैं बडा खुश हूँ यहाँ। और क्यो न होऊँ? तुम्हे इतना और लिखना चाहिये था—मैं दिल्ली मे चैन की बंशी बजा रहा हूँ, ढाई सौ रुपयो की नौकरी पाकर मै बडा आदमी जो बन गया हूँ! बडे लोगो का साथ भी हो गया है। और नये वातावरण में पहुँच कर उसी का ही रहना मेरी प्रकृति और मेरा स्वभाव जो है। और यही नही, दिल्ली पहुँचकर मैंने अपनी रुचि का, अपनी आदतो का, अपने मन का, नया व्यापार जो करना प्रारम्भ कर दिया है, उसके कारण समय न मिलना स्वाभाविक ही है! क्यो? ठीक लिख रहा हूँ न?

राज, मैं तुम्हारे आक्षेपो का उत्तर दे सकने की स्थिति में नही हूँ। अगर मैं यहाँ तुम्हारी ही पंक्तियाँ उद्धृत कर दूँ—कि विश्वास करने की अधिक और देने-दिलाने की वस्तु कम होती है—तो कैसा रहेगा?

विश्वास की शीतल छाँह में बैठकर, अविश्वास की दूषित ध्वनि पर मुग्ध हो बैठना और उसी के स्वरो में स्वर मिलाकर गुनगुना उठना, किसी भी

स्थिति में श्रेयस्कर नही कहा जा सकता। इसे चाहे सारा विश्व क्षमा कर दे, लेकिन मै नही क्षमा कर सकूँगा। स्मरण रखना।

सचमुच मै बडा अभागा हूँ, दुनियाँ में आज तक मै किसी को खुश नहीं रख सका। अब पता नही कि मै ही लोगो को खुश नही रख सका था, या वे ही खुश नही हो सके। लेकिन तुमको मै उन लोगो की श्रेणी में नही रखना चाहता राज। तुम कभी अगर मुझसे नाराज भी हुई हो, तो जाने क्यो मुझे ऐसा लगता रहा है कि तुम्हारी वह तात्कालिक नाराज़ी भी भविष्य में पहले से कही अधिक खुश हो उठने की पूर्व भूमिका ही है। अब अगर तुम पूछो कि मुझे ऐसा क्यो लगता रहा है तो मै शायद ही इसका उत्तर दे सकूँ, लेकिन मेरे भीतर जाने कहाँ से कुछ ऐसा ही स्वर उठता रहा है, जिस पर अत्यधिक विश्वास करना मुझे अच्छा लगता रहा है।—लगता है और लगेगा, यह तो निश्चित ही है। क्या यह मेरी एक कमज़ोरी है? और अगर है तो मुझे स्वीकार है। मुझे अपनी इस कमज़ोरी से मोह है, इससे प्यार है, राग है।

पथ-निर्धारण की बेला में तुमने मुझसे सक्रिय होने की माग की है। अब मैं भी एक बात पूछना चाहता हूँ कि तो क्या अभी तक पथ-निर्धारण करना शेष रहा है? और यदि अभी तक मन के भीतर का ही रास्ता स्पष्ट नही है, तो क्या मेरे वहाँ आने से रास्ता अपने आप आसमान से टपक पड़ेगा !!

एक बात और। मैं परसो काश्मीर जा रहा हूँ। अपने विभाग के कार्य से। और चूँकि वह कार्य देश की हानि-लाभ से सम्बन्धित है, अतः मै राष्ट्र को व्यक्ति के ऊपर, और कर्तव्य को भावना के ऊपर, राष्ट्र-प्रेम को व्यक्ति प्रेम के ऊपर महत्व देने को विवश हूँ। मैं इस महीने इलाहाबाद नही आ सकूँगा, क्षमा करना।

पुनश्च—

राज मैं यह दूसरा पत्र तुम्हें लिख रहा हूँ। एक पत्र इसके पहले

लिखकर फाड चुका हूँ। उनके टुकडे मेरे पास सुरक्षित हैं। चाहोगी तो भविष्य में उसे दिखा भी दूँगा।

सदा तुम्हारा

आनन्द

आनन्द ने पत्र समाप्त किया। पत्र लिफ़ाफे में बन्दकर वही रख दिया और फिर बिजली बुझाकर वह पलँग पर आ रहा।

आनन्द के कार्यालय का जो विभाग काश्मीर की स्थिति के अध्ययन के लिए काश्मीर जानेवाला था, वह जाते-जाते रुक गया; क्योंकि इस बीच उपमत्री ने काश्मीर जाने के स्थान पर विदेश में होनेवाली एक कान्फ़रेन्स में जाने का निमत्रण स्वीकार कर लिया था।

आनन्द उस दिन आफ़िस से लौटा तो बहुत खिन्न था। उसकी नस-नस में एक दर्द था, एक थकान थी। मन में तमाम उलझी हुई बातो का ढेर सुलग रहा था। एक बार उसके मन में भी आया कि मोहिनी के छोटे भाई की वर्षगाँठ है। उसे वहाँ जाना चाहिये। लेकिन एक बात सोचकर उसका जी मितला उठता था। एक व्यक्ति का चेहरा उसकी आँखो में घूम जाता था और उसके ओठ अपने आप वक्र हो जाते थे। उसकी दृष्टि में रह-रहकर कामेश्वर की बुक-शेल्फ के नीचे के खाने में सजी दस-पन्द्रह चमकदार खूबसूरत पुस्तको की जिल्दो पर अटक जाती थी। उसने अपने हाथ की अगुलियाँ सामने कर ली। इन्ही अगुलियो से तो उसने उस पर एक प्रशसात्मक लेख लिखा था। वह इन्सान के रूप मे स्वार्थ और उच्च महत्वाकांक्षाओ का पुंजीभूत मूर्त रूप है, जो दूसरो की विवशता में अपनी आकाक्षाओ की तृप्ति देखने का अभ्यासी है, जो दूसरो के आँसुओ पर दया, करुणा और सहानुभूति का आवरण ओढ देवता-सा बन कर पिछल जाता है और मौके पर भयङ्कर सर्प बनकर डस लेता है। और व्यक्ति उसकी पूर्व कृपा और सहायता का स्मरणकर अपने शरीर में, अपने

परिवार में, यही नही, समाज मे उस विष का प्रभाव देखता हुआ भी विरोध का स्वर नही मुखर कर पाता और विष धीरे-धीरे उसके परिवार में, समाज में, फैलता चला जाता है। आत्मा की सच्चाई बेहोश हो जाती है, शक्ति घुँट जाती और साहस मुर्दा हो जाता है। ठठरी भर रह जाती है। बात कुछ ऐसी थी कि. !

आनन्द आफिस कुछ देर से पहुँचा तो उसे लगा कि आज कोई नयी बात हो गयी है। कुछ लोग मिस जान और कुछ लोग नागर की टेबिल पर एकत्र होकर धीरे-धीरे बातें कर रहे थे। वह जाकर अपनी टेबिल पर बैठा ही था कि तभी घनश्याम ने उसे देखा और पास आकर बोला—"तुम्हें कुछ पता लगा ?"

"न। क्या हुआ ?"

"नही मालूम ?"

"नही भाई।"

"अभी ज्वायस आयी थी। बडा उदास मुख, बाल बहुत कुछ बिखरे-बिखरे, लगता था कि रोकर आयी हो। आकर अपनी टेबिल पर चुपचाप बैठ गयी। हम लोग बडे चकित हुए कि आखिर बात क्या है! दो-एक लोगो ने पूछा भी। जबाब दिया कि कुछ नही; यो ही कुछ... तबियत नही ठीक है। फिर एक-आध कागज़ टाइप किया और हाथो से मुँह ढाँककर बैठ गयी। हम लोगो ने सोचा कि होगी कोई बात! लेकिन अभी बागची साहब उधर से निकल आये। आते ही बिगड गये—'मिस ज्वायस, यह कोई रोने की जगह नही, आफ़िस है। कल के कागज़ टाइप हो गये ?"

ज्वायस ने धीरे से कहा—"करती हूँ।" इस पर तो और बिगड गये—"इधर लाइये फ़ाइल।" और फाइल लेकर मिस जान की टेबिल पर फेंक दी। और—'इस तरह आपका वर्क होगा ? यह रोमाण्टिक मूड, अच्छा हो, आप घर पर बनाया कीजिये।' आदि बकते रहे।"

"ऐसा नही कहना चाहिये था बागची साहब को। यह तो डाइरेक्ट इन्सल्ट है किसी को।"

"अरे तुम क्या जानो! पहले यह बहुत पीछे पडा था ज्वायस के। फिर सुनने में आया कि एक दिन कही ले गया और शैतानी पर उतर आया। लेकिन ज्वायस ने वह चाँटा रसीद किया कि होश-हवास गुम हो गये। तभी से बडा जला-भुना रहता है और ये जो जान है, यह भी कुछ कम नही। इसने भी उन्हे खूब भर रखा है।"

"खैर। फिर क्या हुआ?"

"वही तो बता रहा हूँ। जैसे ही बागची साहब अपने कमरे की ओर गये, ज्वायस ने पेन निकाली और कागज खीचकर त्याग-पत्र लिख मारा और फिर वह आफिस से उठकर चली गयी।"

"त्याग-पत्र में क्या लिखा था?"

"अब पता नही क्या लिखा था! लिख रही थी तभी जान ने पूछा कि क्या लिख रही हो तो बोली—रिजिगनेशन और चपरासी को बुलाकर कहा—'फौरन साहब को दे आओ' और उठकर चल दी।"

"साहब हैं अन्दर?"

"नही। उसके जाने के पाँच मिनट बाद ही वह भी चले गये। बड़े बाबू से कह रहे थे कि चलो अच्छा हुआ। काम-धाम कुछ करना नहीं, नक्शेबाज़ी दिखाना। मैं खुद ही इसकी रिपोर्ट करनेवाला था।"

इसके बाद तमाम अटकल-पच्चू लगाया जाता रहा। किसी ने कुछ कहा किसी ने कुछ। आनन्द चुपचाप बैठा सुनता रहा। कोई आध घण्टे में बातें स्वयं ही समाप्त हो चली और लोग अपनी-अपनी जगहो पर अपने-अपने काम में लग गये।

दोपहर के इन्टरवल में एक बार फिर ज्वायस चर्चा का विषय बनी। आनन्द ने सोचा—'सही बात खुद उसके सिवा और कौन बता सकता है?'

आफिस समाप्त होने पर उसने ज्वायस का पता लिया और वह चल पडा। उस बस्ती में पहुँचकर, आनन्द को थोडा भटकना जरूर पडा, लेकिन दो-तीन जगहो पर पूछने के बाद ही उसे मकान मिल गया। मकान की चहार दिवारी के भीतर घुसने पर उसे पूछने की आवश्यकता नही पडी, क्योकि ज्वायस के नाम का नेमप्लेट सामने ही दिखाई दिया। आनन्द एक क्षण के लिये रुका। —आखिर क्या यह उचित है कि उसकी और ज्वायस की कोई खास घनिष्ठता नही, कोई खास मित्रता नही। यही नही, कभी अधिक बातचीत भी तो नही हुई। ऐसी स्थिति में अनाहूत रूप से उसके व्यक्तिगत मामलो के विषय में पूछताछ करने के लिये आना क्या गलत नही है? ज्वायस क्या सोचेगी?

आनन्द यही सोच रहा था कि दरवाजा खुला और ज्वायस बाहर आ गयी। शायद वह बाजार जा रही थी, क्योकि वह सायकिल निकाल रही थी और उसके कन्धे पर झोला लटक रहा था। अचानक आनन्द को देखते ही उसने सायकिल रख दी और भरसक मुस्कराते हुए उसने हाथ जोडकर नमस्ते करते हुए कहा—"आइये मिस्टर आनन्द बाहर क्यो खडे हैं?"

आनन्द मन में सकुचाता हुआ आगे बढा और कमरे में आगया। छोटा सा कमरा, पर बहुत ही कलात्मक ढंग से सजा हुआ। आनन्द के कुर्सी पर बैठते ही ज्वायस ने पूछा—"कहिए कैसे इधर आगये आज?"

"आज आफिस पहुँचा तो पता लगा कि आज आप आयी और त्यागपत्र देकर के चली गयी। इसके अलावा भी आप आकृति से बेहद उदास और परेशान नजर आरही थी। इसीलिये मन में आया कि जरा चलकर आपसे मिल लिया जाय कि आखिर क्या बात है। वैसे दूसरे के व्यक्तिगत मामलो में रुचि लेना है बहुत गलत चीज। फिर यह आपत्तिजनक भी हो सकता है।"

ज्वायस का मुँह उतर गया, जैसे वह नकाव, जो वह बलात् अपने ऊपर चढ़ाये हुये थी, अपने आप फिसलकर नीचे जा रही।

"तो आप कारण जानने के लिए आये हैं!"

"अगर कारण बिल्कुल व्यक्तिगत है तो मै आग्रह भी नही करता और जानना भी नही चाहता। आप साथ-साथ काम करती हैं। इसलिये आपके विषय में थोडी बहुत जानकारी तो हमें होनी ही चाहिये और आपको भी कम से कम हम लोगो पर इतना तो विश्वास करना ही चाहिये कि हम लोग आपकी परेशानियो में या आपकी खुशी में अगर ज्यादा नही तो थोडा भाग ले सकें। मुझे जो कुछ सुनने को मिला, उससे यही पता लगा कि बागची साहब के कहने पर आपने रोष में आकर त्यागपत्र दे दिया। मुझे केवल इतना कहना है कि वहाँ से आने के बाद आपने खुद भी इस पर सोचा होगा। लगी लगाई नौकरी पर लात मार देना, क्या आप समझती हैं कि ठीक है जबकि सर्विस लाइन की क्या स्थिति है, आप जानती हैं।"

ज्वायस आनन्द का मुहँ देखती रही। फिर उठक बोली—"अच्छा पहले आप यह बताइये कि आप क्या लेंगे, चाय या काफ़ी ?"

"आप बैठिये भी। मै कुछ नही लूँगा।"

"ऐसा कैसे हो सकता है" और ज्वायस लपककर अन्दर चली गयी।

लौटकर आयी तो आनन्द ने पूछा—"और कौन-कौन रहता है आपके साथ ?"

"केवल मदर"

"और कोई नहीं है आपके ?"

"नही, एक छोटी सिस्टर है जबलपुर में। मेडिकल कालेज में है फोर्थ इयर में।

"आपके यहा रामायण कौन पढता है ?" आनन्द ने कमरे के एक आले में रामायण देखकर चौकते हुए पूछा। वैसे दीवार पर उसने एक बडी ही मनमोहक कृष्ण की फोटो देख ली थी; लेकिन उससे उसे कोई आश्चर्य नही हुआ था। क्योकि उसने कई ऐसे लोगो के यहाँ कृष्ण की फोटो देखी थी, क्योकि बहुत से लोग कृष्ण को ही रोमान्स का भारतीय देवता मानते हैं।

"मदर पढ़ती हैं। क्यो, क्या हुआ ?"

"कुछ नही, ऐसे ही पूछा। आप लोगो का हिन्दूधर्म में इतना प्रेम !"

"अरे, अभी आपने वो जो आलमारी रखी है, बडीवाली, वह कहाँ देखी है ! उसमें पचासो सस्कृत और हिन्दी की पुस्तकें हैं। मेरी मदर ने तो एक बार रामायण का अनुवाद भी किया था; लेकिन फिर वह अधूरा रह गया। बी० ए० में मैंने भी सस्कृत ली थी।"

"आपके वर्ग के लोग इसको सहन करते हैं ?"

"सहन करते हैं ! और उनका बस चले तो हम लोगो को गोली मार दें। हम लोग कभी चर्च नहीं जाते। यदा-कदा कभी गये भी, तो लोग बडा नज़र गडा-गडाकर देखते हैं। आपको पता नही, इसकी वजह से हम लोगों को कितना सफ़र करना पड रहा है। जितनी क्रिश्चियन लडकियाँ मेडिकल में हैं, सबको स्कालरशिप मिलती है। लेकिन मेरी निकी को एक पैसा नही मिलता ! लोग सोचते होंगे कि मैं कही कजूस हूँ। अब अगर सादे ढङ्ग से न रहें, तो क्या खायें, क्या पहनें और क्या निकी को भेजें !"

"तनख्वाह के रुपयो में यह सब हो जाता है ? मेरा मतलब निकी और आप लोगो का— यहाँ का— दोनो का खर्च कैसे चल पाता होगा ?"

इसी बीच अंदर से आवाज़ आयी। 'एक मिनट' कहकर ज्वायस अंदर चली गयी। जब वह लौटी, तो उसके हाथ की ट्रे में चाय और टोस्ट थे।

"हाँ, क्या पूछ रहे थे आप कि कैसे चल पाता होगा ? आप को पता नही, इसी के लिए तो मैं पार्टटाइम वर्क भी करती हूँ।"

"आप पार्टटाइम वर्क भी करती हैं ?"

"करना पडता है। उसी का तो फल भोग रही हूँ।" ज्वायस ने चाय का प्याला अंदर की ओर खसकाया।

आनन्द की उत्सुकता बढी। मगर उसने प्रकट नही किया। केवल इतना कहा— "हॉ, परेशानी बहुत बढ़ जाती है और खासकर लडकियो के लिए। उनके लिए तो लोगो की ऑखो में प्राय: शैतान झलकता रहता है।"

"चलिए एक आप मिले तो, जिसने इस बात को स्वीकार किया। अब आप से क्या बताऊँ आनन्द जी! ये टाइम है कि मुझे यहाँ सर्विस करनी पड रही है। हमारा मुकदमा चल रहा है। हमारे पास सौ एकड ज़मीन है लखनऊ मे। दो बडे-बडे मकान है हम लोगो के पास। फ़ादर के मरने के बाद उनके भाई लोगो ने सारी जायदाद हडप करने में कोई कोर-कसर नही उठा रखी। हम लोगो की भी बडी बेइज्जती की। मजबूरन हम लोगो को लखनऊ छोड देना पडा।"

"अरे बडी परेशानी उठानी पडी होगी आप लोगो को!"

"और क्या? मदर की एक पुरानी परिचित थी यहाँ। पहले हम लोग उन्ही के यहॉ आये। उन्ही के हसबैण्ड ने मुझे यहॉ काम दिलाया। मैं एम० ए० करना चाहती थी; मगर क्या बताऊँ लखनऊ ही छोड देना पडा।"

"और अब क्या त्यागपत्र देकर दिल्ली छोड देने का विचार हो रहा है?"

"हॉ आनन्द जी, मैं तो तय करके आयी थी। अब दिल्ली में नही रहूँगी। आप जानते नही, आज सुबह मुझसे क्या व्यवहार किया गया!"

"मैं था ही नही। बाद में लोगो ने बताया था।"

"लोगो ने बताया? किसने बताया?"— ज्वायस चौकी बोली—

"घनश्याम ने बताया कि बागची साहब ने ·· ·· ?"

"ओः, अरे वो नही, मैं समझी कि · ··।" ज्वायस चुप हो गयी।

"क्या कोई दूसरी बात है ? अगर आप मुझ पर विश्वास करके बताने योग्य समझें, तो बतलाइये; नही तो रहने दीजिये।"

"नही, कोई वैसी बात नही है। और फिर हम लोग आप लोगो के बीच कितने बदनाम होते हैं! इस दृष्टि से तो यह घटना और भी महत्वहीन है। मैं तो इसे बताने में इसलिये और डरती हूँ कि कही लोग इसे अन्यथा न समझ बैठे।"

"नही-नही, ऐसी भी क्या बात !"

"बात यह है कि जब से हम लोग यहाँ आये, बडी मुसीबत से गुजारा कर रहे है। निक्की की समस्या और भारी है। एक दिन मेरी एक परिचित ने मुझसे कहा कि यहाँ एक सज्जन हैं, उनको एक स्टेनो चाहिये। काम करने में कुशल हो। करीब दो घण्टे का काम है। अस्सी रुपये देगे। मैंने मदर से पूछा। पहले वे हिचकी; लेकिन रुपये देखे तो ना नही कर सकी। मैं जाने लगी। काम भी कोई खास नही था। कहने को दो घण्टे थे, लेकिन काम घण्टे भर का भी न था। एक दिन आज्ञा हुई कि आप सुबह आया कीजिये। मै सुबह जाने लगी। साहब भी काफ़ी अच्छे आदमी लगे। केवल काम से काम और दो-चार फुटकर बातचीत, बस। एक दिन बोले—'ज्वायस, तुम काजल नही लगाती। मैंने बहुत से इसाई लोगो को काजल लगाते देखा है।' मैं हँसकर टाल गयी। एक दिन बोले—'ज्वायस, मुझे पता लगा है कि तुम्हारी कोई सिस्टर मेडिकल में पढती है।' मैने स्वीकार किया, तो कहने लगे—'मुझसे एक साहब ने तुम्हारी स्थिति बताई है। मुझे पता नहीं था कि तुम नवगाँव-स्टेट के दीवान के भाई की लडकी हो। वे मेरे मित्र थे। पहली बार हम दोनो साथ ही इंग्लैण्ड गये थे। मुझे यह जानकर बडा दुःख हुआ कि मेरे मित्र की लडकी मेरे यहाँ इस तरह काम करे! सुनो, मैने तय किया है कि साठ रुपये महीने मैं अपनी ओर से बतौर

स्कालरशिप तुम्हारी सिस्टर को भेज दिया करूँगा। दो-तीन स्कूल-कालेज चलते हैं। तमाम लोगो को वजीफे दिये जाते है। एक और सही।' मैं बडी खुश हुई कि चलो एक हितैषी तो मिला।" अपने प्याले में यूँही चम्मच चलाती हुई ज्वायस आँखें नीची किये कहती रही—

"फिर वे दो महीने के लिये सारे भारत की यात्रा पर निकल गये। लेकिन रुपये सिस्टर को भेज दिये और मुझको भी मिलते रहे; क्योंकि उनकी डाक आदि यहाँ मैं ही देखती थी। इधर पन्द्रह दिन हुए, लौटकर आये हैं। आज मै आठ बजे पहुँची तो पता लगा कि अपने रूम में हैं। तबियत कुछ ठीक नही है और वही बुलाया है। मै वहाँ गयी। चपरासी टाइपराइटर भी वही रख गया। मै जाकर 'गुडमार्निंग' करके बैठ गयी। इसी बीच चपरासी चाय ले आया। साहब लेटे थे। बोले—'आज कुछ तबियत ठीक नही है। ज्वायस, जरा चाय तो बनाकर मुझे दो।' मैंने उठकर चाय बनायी और प्याला उनकी ओर बढाया तो वे पलँग पर उठकर बैठ गये। मेरे हाथ से प्याला लिया और वही ट्रे रख दिया। अपनी कलाई मेरी ओर बढाकर बोले—'देखो, फीवर है क्या?' मैने कलाई अपने हाथ मे ली और कहा—'नही तो'।' इस पर उन्होने कलाई पकड ली और अपनी ओर खीचा। मै पीछे हटी, लेकिन उन्होने जोर लगाया तो मै उन्ही के ऊपर पलँग पर जा रही। बस, मुझे बाँहो मे कस लिया। जबरदस्ती मेरे होठ चूम लिये और कहने लगे कि ज्वायस, इतने दिनो तक मैं चुप रहा, कुछ कहता नही रहा, तो इसके माने यह तो नही कि मेरे दिल मे कोई धडकन ही नही उठती। आखिर ये बेकरार जवानी, ये नशीली आँखें, ये रसभरे होठ! ज्वायस, मेरा कोई दोष नही है। मेरे संयम और मेरी प्रतीक्षा की सीमा समाप्त हो चुकी है। जवानी का आलम और मौजो की घडियाँ बहुत चन्द होती हैं। ज्वायस, मैं तुम्हारे लिये सब कुछ कर सकता हूँ!"

"आनन्दजी, मेरा दिमाग खराब हो गया। सिर से पैर तक मेरे आग लग गयी। यह नीच आदमी अपने को मेरे पिता का मित्र कहता है और मेरे

साथ इसका यह व्यवहार! आनन्दजी, मैंने उसकी बॉह में कसकर काट लिया। उसके मुँह पर थूक दिया! इस पर उसने मुझे ढकेल दिया। मै पलँग के नीचे आ रही! फिर उसने मुझे चार-पॉच झापड मारे, तीन-चार लातें मारी और वह ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाने लगा—"बद्ज़ात, कमीनी, हरामज़ादी कही की! कोई लुच्चा-लफगा बजारू आदमी समझ लिया है! अपना जाल फैलाती है, ज़बरदस्ती ऊपर गिरती है। निकल जा यहॉ से! नही तो मारे-मारे हण्टरो से खाल खीच लूँगा। जाती है कि नौकर बुलाकर लात मारकर बाहर करवा दूँ!"

ज्वायस की ऑखो में ऑसू आगये थे।—"आनन्दजी, मैं भाग खडी हुई सामने एक टैक्सी मिली। उसी पर बैठकर घर आयी। पर्स वही भूल आयी थी। मदर से लेकर उसका पेमेण्ट किया। घर पर अपने कमरे में बैठकर चुपचाप रोती रही। बस, यही मन में हो रहा था कि दिल्ली छोडकर कही भाग जाऊँ या ज़हर खालूँ! बडी देर ऐसे ही बैठी रही। फिर मन में आया कि चलूँ, आफ़िस ही हो आऊँ, शायद मन कुछ हल्का हो जाय। वहॉ पहुँची तो फिर वही ...क्या करती! आनन्दजी आप ही बतलाइये? हालॉकि बाद मे ज़रूर अफ़सोस हुआ कि बडी गलती हो गई।

"गल्ती तो बहुत बडी की आपने, इसमें क्या शक। बागची वैसे भी आपसे नाराज रहता है। कही उसने उसे स्वीकारकर आगे न बढा दिया हो।"

"अब चाहे जो कुछ हुआ आनन्दजी। मैंने मदर से कह दिया है कि मेरी एक फ्रेन्ड है, उसकी मदर एक कालेज में प्रिन्सिपल हैं। उनके कालेज में जगह मिल जायगी। उन्होने एक बार कहा भी था—ज्वायस, जब तक मैं हूँ, कालेज में तेरे लिए हमेशा जगह खाली है। तू जब भी चाहे आ जाना। रह गई निक्की, उसे वहॉ न रख सके तो वापस बुला लेंगे" बहुत ही डूबते और क्षीण स्वरो में ज्वायस ने कहा।

तभी ज्वायस की मॉ आ गयी। श्वेत साडी में शालीनता और शान्ति की प्रतीक एक गौर प्रतिमा की तरह वह आकर खडी हो गयी। आनन्द ने उठकर गुडइवनिंग किया। मॉ ने उत्तर दिया—"प्रसन्न रहो बेटे।"

आनन्द लज्जा से गड गया। ज्वायस हँस पडी—"बडा मजा आता है आनन्दजी, जब कोई परिचित आता है मदर से गुडइवनिंग या गुडमार्निंग आदि करता है, तो मदर कभी तो अंग्रेजी में ही उत्तर देती हैं और कभी जब यहाँ वालो की तरह आशीर्वाद देने लगती हैं, तब उनका मुँह देखते बनता है।"

तीनो हँस पडे थे। ज्वायस ने आनन्द का परिचय कराया और यह भी कहा कि उस दिन मैं आपकी बात ही बता रही थी। आनन्द ने समझ लिया कि उसकी चर्चा अभी घर में हो चुकी है।

माँ ने कहा—"ज्वायस, खाना तैयार हो गया है। आनन्द को खिलायेगी नही ?"

"हाँ आनन्दजी।" ज्वायस उछलकर खडी हो गयी। —"खाना ले आऊँ खाइये न आज यही ? कि कुछ एतराज होगा ?"

"नही-नही। एतराज की बात नही ज्वायस। लेकिन आज रहने दीजिये।"

"एतराज नही, तो फिर क्या ? आनन्दजी, हम लोग क्रिश्चियन जरूर हैं, लेकिन मीट तो दूर, प्याज भी नहीं खाते हैं। आप लोगो से ज्यादा पक्के ब्राह्मण हैं हम लोग, समझ लीजिये। आज तो आप को खाना ही पडेगा, चाहे एक कौर ही क्यो न खाइये।" ज्वायस उछलती हुई अन्दर चली गयी।

माँ बोली—"बडी पागल लडकी है। आफिस में भी इसी तरह बड़बड करती उछलती घूमती रहती होगी।"

"नही मदर। वहाँ तो बिल्कुल गुडिया की तरह मुँह सीकर जाती है। चुपचाप काम रहती है। और उठकर चली आती है।"

पानी से भरे गिलास लेकर लौटकर आती हुई ज्वायस ने उत्तर दिया—"मदर, ये अपनी बात मुझ पर लाद रहे हैं।"

माँ हँसपडी। "अरे तुम सब लोग एक से हो।" फिर आनन्द से उसके घर और परिवार के विषय में पूँछती रही। आनन्द रामायण और संस्कृत में उनकी रुचि के विषय में बातचीत करता रहा।

तब तक ज्वायस ने टेबिल पर दो थालियो में खाना लाकर रख दिया। और कहा—"टेबिल छोटा है। इसी लिए मैने दो थालियाँ लगाई हैं मदर! हम और आप एक में खालें और आनन्दजी दूसरे में। शुरू कीजिये आनन्द जी, काम और बात एक साथ-साथ चले तो अच्छा रहे।"

आनन्द ने थाली की ओर देखा। उसमें पराठे और गोभी-आलू और मटर की तरकारी थी। ज्वायस ने कहा—"आनन्दजी, आज एक ही तरकारी से काम चलाइये। फिर कभी आइयेगा, तो पाँच तरह की बनाकर खिलाऊँगी।" कहकर वह कुछ संकुचित हुई। फिर मुस्करा उठी। आनन्द ने उसकी ओर आँखे तरेर कर देखा और कह दिया—"अब बस भी तो कीजिए आप" और थाली स्वयं अपनो ओर रखकर खसका ली।

खाना खाकर मदर कुछ देर बाद अपने कमरे में चली गयो। ज्वायस और आनन्द बातें करते रहे। ज्वायस इस शर्त पर राजी हो गई कि वह खुद बागची से कुछ नही कहेगी। हाँ, अगर आनन्द या और कोई उससे कहकर त्याग-पत्र लौटवा दें, तो ठीक है।

चलने के लिए उठकर जब वह दरवाजे के बाहर आया तो बोला—"उस समय आप कही बाहर जा रही थी न?"

"हाँ, दो एक चीजें खरीदनी थी, अब कल खरीदूँगी।"

"हाँ ज्वायस, एक बात तो तुमने बताई ही नही कि साहब का क्या नाम था।"

"क्या कीजियेगा? मेरी ओर से बदला लीजियेगा क्या? जाने भी दीजिये। ऐसे आदमी का नाम न जानिये यही अच्छा है।" ज्वायस ने

हँसने की कोशिश करते हुए कहा। उसे आनन्द का तुम कहना कुछ अच्छा लगा।

"जानता रहूँगा तो जरा बचकर रहूँगा।"

"तो सुन लीजिए, ठाकुर दिगविजयसिंह"

"ठाकुर दिगविजयसिंह!"

"हाँ, क्यों, आप जानते हैं क्या?"

"यूँ ही जरा सा परिचय है। अच्छा।" और वह हाथ उठाकर चल दिया था।

२०

इधर कामेश्वर का तबादला इन्दौर को हो गया था। जिस दिन कामेश्वर कार्यालय से अपने स्थानान्तरण की सूचना लेकर आया था, उस दिन उसने आते ही कहा था— "देखा तुमने, तुम्हारे ही कहने पर मैंने मुहम्मद इस्लाम को माफ़ कर दिया था। अब उसी ने अपने उन रिश्तेदारो से मिलकर, जो एम० पी० हैं, कैसा पीठ में छुरा भोका कि रोका-रुकाया तबादला आखिर बेकार हो गया! अब मुझे अगले सप्ताह ही इन्दौर पहुँच-कर काम सँभाल लेना है।"

आनन्द हक्का-बक्का रह गया था। उसकी स्मृति में, उसके पैर पकडे इस्लाम का दीन चेहरा, उसके आँसू, अपने बीवी बाल-बच्चो की दुहाइयाँ जाग उठी थी।

तभी कामेश्वर ने फिर कहा था—"और कोई बात नही, तुम्हारा नाम जो आनन्द है। तबादले की बात तो चल ही रही थी। वह आज न होता, कल हो जाता, लेकिन अभी साल-डेढ-साल तो मै रुकवा ही लेता, फिर दुःख इसलिये होता है कि उस व्यक्ति ने विश्वासघात किया जिसकी एक नही पचीस गलतियो को मैने माफ़ किया था, असावधानियो को क्षमा कर दिया था।

कामेश्वर क्षण भर चुप रहा। फिर वह धीरे से बोला था—"साल-डेढ साल यहाँ बना रहता तो अच्छा था। अगली जुलाई से आरती भी यही आ रही थी। इसी से मन और डूब जाता है।"

आनन्द को कामेश्वर के वाक्य भुलाये नही भूलते थे। और न उसे वे वाक्य ही भूलते थे जो कामेश्वर ने उस दिन सबके सामने,मुहम्मदइस्लाम की

बात चलने पर कहे थे, जिनसे आहत होकर ही उसने अपने कार्यों का क्षेत्र पुनः विस्तृत करना प्रारम्भ कर दिया था। समसामयिक विषयो पर लेख लिखना प्रारम्भ कर दिया था, अपने आफ़िस के लोगो से मेल-मिलाप बढ़ाना, उनके दुःख सुख में रुचि लेना प्रारम्भ कर दिया था। वह जन-जीवन में पैठने की चेष्टा करने लगा था। अपने बँधे हुए जीवन में वह जो कुछ भी कर सकता था, करने की कोशिश करने लगा था।

इस सप्ताह उसने कही किसी को पत्र नही लिखा था। अत: टेबिल के सामने कुर्सी पर बैठकर, लेटरपैड के नीचे दबे, इधर के आये तीन चार पत्र निकाले और पढ़ने लगा।

पहला पत्र ज्वायस का था जो लखनऊ से आया था। बावजूद आनन्द की तमाम कोशिशो के ज्वायस का त्याग-पत्र मिस्टर बागची ने लौटाया नही। और इतना ही नही, उसके साथ और कई मनमानी शिकायते लिखकर ऊँचे अधिकारी के पास भेज दिया था। आनन्द ने ज्वायस को राय दी कि वह चाहे तो चलकर ऊँचे अधिकारी से मिला भी जा सकता है। लेकिन ज्वायस ने इसे स्वीकार नही किया था और वह दिल्ली छोड़कर लखनऊ चली गयी थी।

पत्र था—

प्रिय आनन्दजी,

यहाँ आये मुझे पन्द्रह दिन से ऊपर हो रहे हैं; लेकिन कुछ कारणो से व्यस्त रहने के कारण मैं आपको पत्र नही लिख सकी, अतः क्षमा चाहती हूँ।

दिल्ली में वैसे भी कोई अपना कहा जानेवाला नही था; लेकिन जब कभी आपकी याद आती है तो लगता है कि कोई बहुत ही प्रिय घनिष्ठ दिल्ली में छूट गया है। दिल्ली छोड देने के बाद आपकी ही स्मृति ऐसी है जिससे लगता है कि नाहक ही क्रोध में आकर त्याग-पत्र दे दिया। खैर।

हम लोग यहाँ सकुशल हैं। चाचाजी से आधे-आधे पर समझौता हो जाने की पूरी सम्भावना है। ज्यादा झगडा बढ़ाने के स्थान पर मदर ने सन्तोष कर लेना उचित समझा है। शहरवाला बडा मकान, पूरा–का–पूरा हमें रहने को मिल गया है। नीचे के हिस्से में दुकानें है, ऊपर एक भाग में एक रिट.यर्ड तहसीलदार रहते है। दूसरे भाग के कुछ कमरे अभी खाली हैं। आज विश्व-वियालय के कुछ वियार्थी उन्हे देख गये है, दो-तीन दिन में शायद वे लोग आ जायँ।

अगर ज़मीन-जायदाद का झगडा किसी भाँति शान्ति से निपट गया तो आगामी सत्र मे मै एम० ए० मे प्रवेश लेने का विचार कर रही हूँ। नही तो सचिवालय में नौकरी के लिये आवेदन-पत्र दे ही दिया है। आपने मुझे दिल्ली में रखने का जो भी प्रयास किया, क्या उसके लिये धन्यवाद दूँ ? नही, अब तो आप अपने हैं, मित्र हैं, स्नेही हैं। धन्यवाद कैसा ? मदर आपकी बहुत याद करती है और आशीर्वाद कह रही हैं।

एक वचन आपसे माँगती हूँ। यदि कभी आप लखनऊ आये तो मेरे यहाँ ही रुके। आफिस के लोगो को नमस्ते—वहाँ के समाचार लिखियेगा। पत्र के उत्तर की आशा तो करती ही हूँ। आपकी स्नेहाकांक्षिणी—

ज्त्रायस।

दूसरा पत्र रमेश का अभी डाकिया दे गया था।

पूज्य भैया,

सादर चरण-स्पर्श।

मै यहाँ सकुशल हूँ। अध्ययन सुचारु रूप से चल रहा है। इलाहाबाद से माया का पत्र आया है। वह वहाँ मजे में है। एक पत्र शिवा का भी आया था, जिससे ज्ञात हुआ था कि बाबू के पैर मे ठोकर लग जाने के कारण दाहिने पैर के अँगूठे का नाखून निकल गया था; लेकिन अब ठीक हैं वे। उसके पत्र से मालूम हुआ था कि गाँव में इन दिनो बडी सरगर्मी है।

ठाकुर महीपाल और सुलतानसिंह में झगडा होगया है। महीपाल के यहाँ चोरी होगयी है। उनका काफी नुकसान होगया था। कहते है इसमें मोहन और सोनी का हाथ है। आपके पास भी तो उसका पत्र पहुँचा होगा।

कुछ असुबिधाओ के कारण मैंने अपना पुराना निवास छोड दिया है और मैं अब नगर के केन्द्र मे आगया हूँ। जिस मकान मे मैने कमरा लिया है, वह नवगॉव स्टेट के दीवान की कोठी है। एक ऐंग्लोइण्डियन महिला उसकी स्वामिनी हैं। कहने को वे ईसाई अवश्य हैं, लेकिन वेशभूषा और बात-व्यवहार मे नितान्त भारतीय ही हैं। स्वभाव बडा नेक है। मिस ज्वायस नाम की उनकी एक पुत्री हैं। उनसे बातचीत के दौरान में कल ज्ञात हुआ कि वे आपको जानती हैं। दिल्ली में वे आपके आफ़िस मे ही काम करती थी। बडा मधुर और आकर्षक व्यक्तित्व है मिस ज्वायस का।

इधर दो एक पत्रो में आपके लेख पढ़ने को मिले हैं, उनमें दो-एक बातें है जिनसे मै सहमत नही हूँ। सम्भव है कि उचित रूप से उनपर विचार न कर पाया होऊँ। मिलने पर ही बातें करूँगा। पत्रोत्तर की प्रतीक्षा में

आपका आशीर्वादाभिलाषी—

रमेश

पुनश्च—

भैय्या, एक बात तो लिखना भूल ही गया—करीब साठ रुपये चाहिये मुझे, सो शीघ्रातिशीघ्र भेज दीजिये।

पत्र पढ़कर आनन्द ने मेज़ पर रख दिया। उसे ज्वायस की याद आगयी थी। ऑखो के सामने ज्वायस मुस्करा रही थी। अचानक उसके कंधे पर किसी की अगुलियॉ नजर आयी। कौन है यह ? तभी ज्वायस ने एक बार आनन्द की ओर देखा और लज्जा से मुस्कराती हुई, पलके नीची करके उसने कन्धे पर रखा हुआ हाथ अपने हाथ में लेकर सामने खीच लिया....

बाल मत्था ''आँखें ''नासिका ' मुख अधर 'कौन ? रमेश रमेश की आँखें उठी और गिर गयी। जैसे किसी संकोच में गडा-सा जारहा था। बरबस फूटपडी मुस्कराहट को स्वतन्त्र करते हुए आनन्द ने तीसरा पत्र सामने कर लिया। यह पत्र दो-तीन दिन पहले आया था। आनन्द पढ़ चुका था। फिर भी दृष्टि दौडाने लगा।

पत्र गाँव से आया था। वह रजन का था।

प्रिय आनन्द,

सस्नेह वन्दे।

काफी दिन बीत गये जब तुम्हे पत्र लिखा था। इधर कुछ पारिवारिक उलझनो के कारण तुम्हे पत्र नही लिख सका। क्षमाकरना। पन्द्रह दिन हुए, तुम्हारे भतीजे की मृत्यु होगई। पाँच वर्षतक हँस-हँसाकर आखिर धोखा दे ही गया। परिवार और मन में अँधेरा होगया। तुम्हारी भाभी उसके शोक में अभीतक चारपायी से नही उठी है। मै तो खैर खाता-पीता, काम करता ही हूँ। क्या करूँ ? जब तक जीवन है, शरीर का धर्मपालन करना ही पडेगा।

मुझे पास के हाईस्कूल में अध्यापक का स्थान जैसे ही मिला था, वैसे ही तुम्हारे कहने से मै ने बी० ए० का फ़ार्म भर दिया था। परीक्षाएँ सिर पर आगई हैं। देखो क्या होता है। वर्षो के पढने का अभ्यास छूट गया है। इसलिये अधिक पढा नही जाता है।

गाँव में बडी उथल-पुथल चल रही है। पुस्तकालय और वाचनालय के लिये, गाँव के बीच में, पुत्तू भैय्या ने अपनी खाली पडी छोटी से जमीन दे दी थी, सो वहाँ एक लम्बा कमरा बनगया है। उसका सारा प्रबन्ध चन्दर को सौप दिया है। बडा उत्साही लडका है। लेकिन पागल ऐसा कि एक दिन किसी बात पर महीपाल से लडाई कर बैठा। पहले गाली-गलौज हुई फिर हाथापाई पर उतारू होगया। इसी बीच महीपाल के कहने पर मोहन ने उसे तीन-चार तमाचे जड दिये। फिर क्या था, वहाँ से चुपचाप चला

आया। शाम को महीपाल के पके तैयार खेत में आग लगा आया। वह तो कहो लोगों ने देख लिया, नही तो पूरा खेत ही साफ हो जाता। लोगो ने डाँटा-डपटा, तो कहने लगा— मुझसे बहस मत करो, नहीं तो साले का मकान खाक करके रख दूँगा। समझे कि नही? लडका समझकर लोगो ने टाल दिया। एक दिन मुझसे कहने लगा कि ये साला इतना नीच है कि भैया क्या बताऊँ, साले के कोई छोटी लडकी नही है। नही तो मै उसी को फँसाकर भगा ले जाता। तब और मज़ा मिलता दुष्ट को कुकर्मो का। बहुत दूसरो की बहू-बेटियो पर आँख लगाता है।

महीपाल के यहाँ चोरी हो गयी है। यह तुम्हे शिवा ने अपने पत्र में लिखा होगा। मोहन पकड लिया गया है। थाने में उसने जो बयान दिया है, उसके अनुसार इस चोरी में सुल्तानसिंह के आदमियो का हाथ सिद्ध होता है।

महीपाल के यहाँ की चोरी का अनुमान करीब बीस हज़ार का लगाया जाता है। बेचारे की बडी दयनीय स्थिति हो गयी है। दस-बारह दिन में ही उम्र दस बारह वर्ष बढ़ गयी मालूम होती है। जब तब हर किसी के सामने रो देते हैं। अब तो रो-रोकर घोषणा करते हैं कि बडे पाप कमाये थे मैने; उन्ही का दण्ड मिला है। अब गाँव में नही रहूँगा, साधू हो जाऊँगा।

दौड-धूप कराकर गॉव में, सरकारी कागजों के भीतर ही चलनेवाली प्रौढ़ पाठशाला और समाज कल्याण केन्द्र के लिये मिलनेवाली रकम का पता लगाया तो मालूम हुआ, दोनो सस्थाओ के नाम पर अब तक साढे पॉच हजार रुपये से ज्यादा रामलाल और सुल्तानसिंह ने मिलकर खा लिया है।

परसो जब लडको का एक दल, दो-चार बडे आदमियो के साथ सुल्तान-सिंह के यहाँ, इस विषय में बातचीत करने गया, तो सयोग से रामलाल भी वही थे। थोडी देर तो बातचीत बडी शान्तिपूर्वक होती रही, लेकिन इसके बाद ही सुल्तानसिंह बिगड खडे हुए—"तो आप लोग मेरे घर ही मेरा

अपमान करने आये हैं ? मैं बेईमान हूँ, स्वार्थी हूँ, जो सार्वजनिक हित का पैसा खा जाऊँगा, क्यों ! मुझे किसी बात की कमी है क्या ? तुम लोगों ने मुझे समझा क्या है ? निकल जाओ मेरे घर से अभी !"

लड़कों ने कहा—"पहले आप पूरा हिसाब देने का बचन दीजिये।"

सुल्तानसिंह के यहाँ उस समय उनके और दो-तीन साथी एम० एल० ए० थे, अतः इस अपमान को वे सहन नहीं कर सके। क्रोध में चीख उठे—"कैसा हिसाब-किताब ? पहले आप लोग कमरा तो खाली कीजिये कि बुलाऊँ नौकर को !"

इस पर लड़कों का भी दिमाग गरम हो गया—"बुलाइये नौकर को। एक तो बेईमानी करते शर्म नहीं आती और ऊपर से इस प्रकार का अभद्र व्यवहार करते हैं।"

इसके पहले कि ठाकुर सुल्तानसिंह नौकर को आवाज दे, चन्दर खुद ही चिल्ला उठा—"सहदेवसिंह, अरे ओ सहदेवसिंह, चलो, यहाँ तो आओ।"

सहदेवसिंह आया तो चन्दर बोला—"सहदेव, ठाकुर साहब को कान पकड़कर बाहर तो निकाल दो। इनका दिमाग़ खराब हो गया है। ये गालियाँ बक रहे हैं। पागल हो गये हैं !"

बस फिर क्या था। ठाकुर साहब चीखते हुए चन्दर पर झपट पड़े—"बदमाशो, एक-एक की हड्डी तुड़वा दूँगा। चमड़ी खिचवा लूँगा ! समझते क्या हो, षडयन्त्र करके गुण्डागर्दी करने आये हो ! रामलाल, मुँह क्या देखते हो, खीच लो जबान ! सहदेव, निकाल बाहर करो इन लुच्चों को !"

और मारपीट प्रारम्भ हो गयी। लड़के तो बिगड़े ही थे। मैं और दूसरे बड़े लोग जब तक समझायें-समझाते, प्रलय आ गया। ठाकुर साहब ने अपनी छड़ी से पुत्तू भैया का सिर फोड़ दिया था। पन्द्रह-बीस मिनट बड़ी धमा-चौकड़ी रही। लड़कों ने ठाकुर साहब का मार डण्डे और मार लातों सिर फोड़ दिया ! चन्दर ने तो दायाँ हाथ ही तोड़ दिया। तमाम लोग आ गये। जब झगड़ा शान्त हुआ, तो मुझे पता लगा कि रामलाल की बल भर

कुटम्मस करके, चन्दर सुल्तानसिंह के मकान के पिछवाड़े खड़ा आग लगाने की कोशिश कर रहा है! यह तो कहो, वह जलती हुई आग पिछवाड़े के छप्पर पर फेंकने ही जा रहा था कि मैं पहुँच गया, तो समझा-बुझाकर लौटा लाया।

पुलिस में रिपोर्ट हो गयी है। ठाकुर सुल्तानसिंह कानपुर अस्पताल पहुँचा दिये गये हैं। तीन लड़कों की गिरफ्तारी हुयी थी, सो जमानत पर छूट आये हैं। चन्दर बहुत उत्तेजित है।

गाँव भर में चर्चा है। इस सारी घटना के पीछे रजन का हाथ है। आनन्द, मैं स्वयं नहीं कह सकता कि इसमें मेरा कितना हाथ हैं। लेकिन मेरे दिल में तुम्हारे शब्द गूँज रहे हैं—"तुम मुर्दा हो, कायर हो, नपुंसक हो।" सो मैं दिखा देना चाहता हूँ कि मेरे गाँव की नयी पौधों में भी जीवन है। वह भी कुछ कर सकती है। उसमें भी जागृत चेतना है। अगर वह अपना अधिकार चाहती है, तो अपने कर्तव्य के प्रति उदासीन भी नहीं है। शेष दूसरे पत्र में।

तुम्हारा—

रजन त्रिपाठी

पत्र समाप्त कर, उसने एक सन्तोष की साँस ली। इसके बाद उसने तीनों पत्रों का उत्तर लिखा। जब तीनों पत्रों के उत्तर लिख चुका तब उसे ख्याल आया कि आफ़िस के पते से एक कार्ड महेश का भी आया था। उसके द्वारा ज्ञात हुआ कि वह आजकल वकालत में जुटा हुआ है। बहुत आग्रह के साथ उसको बुलाया है।

महेश को भी उसने पत्र लिखा। फिर पत्र लिख चुकने के बाद उसने अपने अधूरे लेख को सामने कर लिया।

२१

रजना अभी युनिवर्सिटी से आयी ही थी कि रानी आ पहुँची। आते ही उसने कहा—"क्या दीदी, तुम भी दिन-रात पढो-पढो लिखो-लिखो लगाये रहती हो। मुझे तो इस बात का डर हो गया है कि कही तुम अवधि के पहले ही थीसिस लिखकर समाप्त न कर दो और डिपार्टमेण्ट वाले अवधि की समाप्ति तक प्रतीक्षा करने को कह दें।"

"अरे नही रानी, मुझे तो लगता है कि पॉच साल में भी पूरी नही होने की! पता नही क्यो, मन ही नही लगता है। कभी कभी उद्दाम उत्साह आ जाता है। आठ-दस दिन खूब डट के काम करती हूँ। फिर वही उदासी, वही आलस्य घेर लेता है और ऊल-जलूल बातें दिमाग में चक्कर काटने लगती हैं। मेरा तो मन होता है—कही महीने-दो-महीने के लिये घूम आऊँ। माया का क्या हाल-चाल है?"

"माया! अरे उसकी कुछ मत पूछो दीदी! गजब की लडकी है। दिन रात पढती, गाती और काम करती है। एक दिन अकेले कमरे में मीरा का कोई भजन गा रही थी और पापा कही सुन रहे थे। बाद में मुझसे बोले कि माया को भी अपने साथ म्यूजिक-स्कूल क्यो नही ले जाती? वह भी कुछ सीख लेगी। सो उसने स्कूल में एडमिशन ले लिया।"

"यह तो तुमने बताया था। आजकल क्या चल रहा है?"

"वही तो बता रही हूँ। सप्ताह भर बाद स्कूल का वार्षिकोत्सव होने जा रहा है; उसमें एक नाटक भी होगा। सो उसमें भाग लेने की बात उठी। लोगो ने उससे कहा, तो वह मुझसे बोली कि पापा से कहो। अगर वे मान

जायँ तो मैं पार्ट कर लूँ । मैंने पापा से पूछा, तो वे बडे खुश हुए बोले—यह भी कोई पूछने की बात है ? जरूर भाग लो । सो आजकल उनके रिहर्सल चल रहे है । परसो ड्रामा है । चलेंगे देखने ?"

"अच्छा, तो अभिनेत्री बन रही है !"

"मास्टर साहब की बहिन है कि तमाशा ! विमल तो उससे ऐसा हिल-मिल गया है कुछ पूछो मत । हॉ दीदी, मास्टर साहब का कोई पत्र आया कि नही ?"

"मेरे पास तो नही आया । तेरे पास आया है क्या ?"

"मेरे पास नही आया । हॉ, पापा के पास जरूर एक कार्ड आया है । अगले महीने में शायद आयें । उनके भी हाल बडे बिचित्र है । महीने भर पत्र नही लिखेंगे । फिर लिखा भी तो आधा पत्र क्षमा-याचना और असमर्थता के प्रकाशन मे ही भर देगे । .. लेकिन तुम्हारे पास तो आता ही होगा ।"

"क्यो, मेरे पास क्यो आयेगा ?"

"अब बनने लगी न मुझसे दीदी ! अच्छा, एक बात बताओ । वह आगरेवाली बात उन्हे मालूम है ?"

"क्यो, कोई चोरी है ? जरूर मालूम होगी ।"

"किसके द्वारा मालूम हुआ होगा ?"

"किसके द्वारा ! अब मैं क्या जानू ? आखिर तू चाहती क्या है ?"

"मैं ! मैं कुछ नही चाहती बाबा । मैं क्या चाहूँगी ? तुम्ही तो बता रही थी कि कामेश्वर भाई साहब किस से कह रहे थे कि कोई माथुर हैं, जिनके साथ खूब पट रही है । आजकल खूब मोटर में घुमाती हैं शाम को । अपने राम तो दर्शक है । दूर से देखते हैं—क्या-क्या गुल खिलता है ?"

"तुम बडी बेवकूफ हो रानी । गुल क्या खिलेगा ?"

"कुछ नही, यही कि मास्टर साहब उधर, राज जी इधर । कौन जाने

किस पर क्या बीत रही है । हाँ ! हाँ गुस्सा न हो। मैं जा रही हूँ बाबा। आज शाम को मेरा मैच है बैडमिन्टन का । चलना, अच्छा।"

"नही रानी, मै वहाँ जाकर क्या करूँगी ?"

"नही नही, आज तुम्हे चलना पडेगा। क्या मनहूसों की तरह घर में पडी रहती हो। मै चार बजे आऊँगी, तुम तैयार रहना। अच्छा, देखो हीला-हवाला मत करना।"

रानी चली गयी।

रानी चली गयी; लेकिन शान्त जल में जो कंकडी फेंकती गयी उससे जल की सतह पर एक छोटा-सा घेरा बना और लहरो पर तैरता चला गया। लहरें मचलती गयी और घेरा बढ़ता गया। थोडी देर बाद राज उस घेरे में डूब-उतरा रही थी।

—'अजीब लडकी है। जब मिलती है, बिना छेडे नही मानती। लेकिन ठीक ही तो कहती है—किस पर क्या बीतती है ! उसने कई बार सोचा है कि इस विषय पर ज्यादा नही सोचेगी। लेकिन आनन्द की स्मृति उसे सदैव अस्त-व्यस्त कर देती है।'

—'जाते-जाते खुद आनन्द ने ही तो कहा था कि राज, वहाँ पहुँचने पर केवल तुम्हारे पत्रो का ही भरोसा रहेगा। उसे बनाये रखना। वहाँ मेरा मन लगेगा नही। और अब हाल यह है कि पहले कितने लम्बे पत्र आते थे ! वह कितनी खुशी से भर उठती थी ! वह भी पत्र के उत्तर कितने मन से लिखती थी ! भले वह आनन्द की भाँति लम्बे पत्र नही लिख पाती थी। धीरे-धीरे आनन्द के पत्र कम होते गये और इधर तो महीना होने को आ रहा है और फिर भी कोई पत्र नही आया ?

—'भैय्या बता रहे थे कि कोई मोहिनी हैं। उन्ही का चक्कर चल रहा है। एक बार आनन्द ने भी तो लिखा था—"राज, यो माथुर के बारे में तमाम बातें सुनने को मिली हैं, लेकिन मैं उनपर पूर्ण विश्वास करने की स्थिति

में नही हूँ। खुले मन से हँस हँसकर बेतकल्लुफी से बातचीत करनेवाली प्रत्येक औरत के विषय में, उसके नाम के साथ, उसके अधिक सम्पर्क में रहने वाले का नाम सम्बद्धकर, पचीसो अफवाहो और मनमानी सूचनाओ को जन्म दे देने की परिपाटी पुरानी है—जबकि आजकल तो यह एक आम रवैया हो गया है। बडा ही आकर्षक व्यक्तित्व है मोहिनी का, अगर कभी तुम उनसे मिली, तो निश्चय ही खुश होगी।' यह शुरूआत के किसी पत्र में में था। फिर आनन्द के पत्रो में उसका नाम भी गायब हो गया। और क्यो न हो जाय ? क्या आवश्यकता है उसकी ?

—'इधर भैय्या भी गये हैं कि पहले राज की शादी निपटा दूँ, तो अगले मौसम मे अपनी देखूँगा। उस दिन घण्टो अम्मा से घुट-घुट कर न जाने क्या-क्या बातें हुई हैं!

—'सच बात तो यह है कि जब से घर में शादी की बात उठी है—और विशेषकर आगरेवाली चर्चा ने तूल पकडा है, वह बहुत घबडा सी गयी है। वह सोचती थी कि आनन्द को पत्र लिखकर इस विषय में कुछ पूछा जाय। लेकिन तभी आनन्द का पत्र आ गया। ' की बात मैने कामेश्वर से सुनी। मै सोच नही पाता कि परीक्षा की इस आखिरी बेला में पहुँचकर मुझे क्या करना चाहिए। तुम्हे जो कुछ करना है, वह तुम्हारी बात है। तुमने कुछ तो सोचा ही होगा। राज, जाने क्यो, कभी-कभी लगता है कि हमारी तुम्हारी मित्रता मे अन्तर है, जिसके रास्ते अलग-अलग है, जिसकी दुनियाँ अलग-अलग है, जिसकी सारी बाते अलग-अलग है। और अब तक तो शायद एक सयोग था कि हम और तुम उस दुराहे के पूर्व ही, एक रास्ते पर चलते हुए, भटके-भटके से एक दूसरे के रास्ते को अपना ही रास्ता मान रहे थे।

अचानक माँ ने आकर कहा—"राज, रानी आयी थी क्या ?"

"हाँ आयी थी, चली गयी। चार बजे फिर आयेगी।"

",मैं जरा ' ' दो-एक कपडे थे, सो उन्ही में साबुन लगा रही थी—आवाज़ से लगा कि ानी आयी है। और मंगल कहाँ है ?"

"पीछे कुछ क्यारियाँ ठीक कर रहे हैं।"

"उनको कभी काम से फुरसत नही रहती। याद दिला देना, शाम तक बाज़ार से राशन और अन्य सामान लाना है।" कहकर माँ फिर अन्दर चली गयी।

माँ के जाने बाद राज पुनः आत्मलीन हो गयी।

मिलेगा, तो चार-छे लेख मैं लिख दूँगा। आनन्द सोचता था कि इतना व्यस्त आदमी अगर किसी प्रकार सरस्वती की आराधना के लिए थोडा भी समय निकालकर बडे मनोयोग से साहित्य की रचना करता है, तो क्या यह प्रशसा और प्रोत्साहन मिलने की बात नहीं है ?

उन दिन सयोग से मोहिनी के यहाँ भेट हो गयी। वे दक्षिणभारत का दौरा करने जा रहे थे। आनन्द से भी छुट्टी लेकर साथ चलने का आग्रह करने लगे। लेकिन आनन्द टाल गया।

आज मोहिनी ने कहा भी—"घूम आते जाकर क्या हर्ज था।"

'कहाँ घूम आता जाकर ? एक बात बताऊँ मोहिनी जी। क्षमा कीजियेगा। पता नही क्या बात है कि मै ठाकुर साहब के विषय में अच्छी धारणा नही बना पाया। हाँ, परिचय के प्रारम्भिक दिनो में भले ही मेरे मन में उनके प्रति थोडी श्रद्धा उमडी थी। इससे मुझे इन्कार नही। लेकिन धीरे-धीरे उनके बारे में जो सुनने को मिला ।"

"क्या-क्या सुनने को मिला, उसको जाने दीजिये। मेरा ख्याल है, मुझसे ज्यादा आपको मालूम है, ठाकुरसाहब के बारे में मोहनी जी ।"

"मैं परेशान हूं आनन्द तुमसे ! यह वैदिक युग नहीं, बीसवी शताब्दी है। तुम आदर्श बघारते हो। और दुनियाँ कभी आदर्शों पर नही चली। ज़िन्दगी का ढग देखकर बातें किया करो। ज़माने की रफ्तार देखो, समय की गति देखो, आदमी की मनोवृत्तियाँ देखो, दुनियाँ की निगाहे देखो, तब बात किया करो। फिर कोई भी इन्सान देवता नही होता। कुछ कमज़ोरियाँ हर एक आदमी मे होती हैं। ठाकुर साहब में भी अनेको कमज़ोरियाँ हो सकती हैं। लेकिन अपने लोगो को उससे क्या ? जिसके लिए खराब होगे, होगे। तुम्हारे साथ तो उनका कोई आपत्तिजनक कार्य नही है न ?"

"आपकी बात ठीक है। लेकिन मै यह और कहना चाहूँगा कि नैतिकता और अनैतिकता की बातें मै नही करता। लेकिन इतना निश्चित है कि

स्वार्थरत और आत्म-केन्द्रित व्यक्ति की इच्छायें न तो कभी मेरी हो सकती हैं न मैं उनका हो सकता हूँ।"

मै जानती हूं आनन्द, तुम कभी किसी के हो नही सकते, भगवान जाने तुमने ऐसा स्वभाव किससे पाया है! लेकिन एक बात जानती हूँ कि अगर तुम कभी किसी के हुए तो बुरी तरह उसी के हो बैठोगे। जो खतरनाक भी होगा और अच्छा भी।"

मोहिनी चुप हो गयी। आनन्द भी चुप रहा। फिर मोहिनी ने ही कहा—"मुझे उसी दिन का इन्तज़ार है आनन्द।"

इसबार भी आनन्द ने कोई उत्तर नही दिया।

मोहिनी को आनन्द की यह चुप्पी हमेशा खल जाती है।—"आनन्द, कभी सोचा है तुमने कि ऐसे मौको में तुम्हारा मौन किसी के लिये कितना महँगा हो जाता है?"

आनन्द ने सामने से अखबार हटा दिया।—"मोहिनी जी, जब लक्ष्य भिन्न होते हैं, तब रास्ते के चन्द महीनो या वर्षों का मोह कोई महत्व रखता है? बताइये मुझे।"

मोहिनी को जैसे कोई गहरा अस्त्र मिला। कुर्सी पर आगे की ओर झुकती हुई वह बोली—

"आप महीनो और वर्षो की बात करते हैं। एक मोटी सी बात लीजिये। ट्रेन में, बस में, या कही भी, चन्द घन्टो के लिये साथ-साथ यात्रा करनेवाले यात्री भी परस्पर कितने दुःखो, कितनी परेशानियो और कितने सुखो का विचार-विनिमय कर लेते हैं! आपने कभी एक बात पर विचार किया है कि दूसरे के खून का प्यासा और यही नही, अपने निकट-से-निकट व्यक्ति का सम्भव है बध कराकर, उसके परिवार के लोगो को भूखा तडपता हुआ देखकर भी जो उपेक्षा कर जाता है, वह सहयात्री के समक्ष क्यो अपना दिल खोल देता है? सहज भाव से अपने पाथेय में

उसे साझेदार बनने का आग्रह करता है। पानी, बीड़ी-सिगरेट का आग्रह करता है। दूसरे के साथ चलनेवाले संघर्ष विषयक अपनी वे समस्त चालें, अपने वे सारे कृत्य, बता देता है, जो शायद वह अपनी पत्नी, और पत्नी क्या किसी भी विश्वस्त आदमी को भी न बताये। क्या कारण है इसका ?

"इसलिए कि वह सोचता है कि वह आदमी उसे कभी और किसी दृष्टि से कोई नुकसान नही पहुँचा सकता।"

"क्यो नही पहुँचा सकता ?"

"क्यो कि उनके गन्तव्य स्थानो में अन्तर है। वे दोनो दो भिन्न राहो के राही होते हैं और संयोग से चन्द मिनटो के लिये मिलते हैं। और उन मिनटो के समाप्त हो जाने के बाद ही वे एक दूसरे से पृथक् हो जाते हैं। और अक्सर होता यह है कि उस छोटे मे सहयात्रा-काल में कितनी ही घनिष्टता क्यो न बढ जाय, अलग होने के चन्द घन्टो या चन्द दिनों बाद ही वह व्यक्ति स्मृति-पटल से या तो उतर जाता है—या स्मृति के किसी एक कोने में धूल खाता पड़ा रहता है।"

"ठीक कहा तुमने। वह व्यक्ति दूसरे के सामने अपना दिल अपना रहस्य इसलिए खोल देता है कि उन दोनो के साथ मे कोई स्थायित्व नही है। और जब स्थायित्व ही नही है तब बहुत दूर तक वे एक दूसरे के हितो पर कोई आघात भी नही कर सकते हैं। और जब हितो के संघर्ष की बात ही नही उठती, तब मन-ही-मन एक दूसरे के प्रति विशेष संकुचित, शंकालु और सावधान रहने की भी बात नही उठती। और दिल खोलकर बाते करने का मूल उद्देश्य तो यात्रा-काल का अकेलापन, उदासी दूर करना या मन का कोई गुबार निकालना ही होता है। समझे आनन्द ? सहकारिता की अत्यधिक दीर्घता ही हितो के परस्पर टकराने की सम्भावनाओ को जन्म देती है। आनन्द, मैं तुमसे सच बताती हूँ कि मुझे उन लोगो से बडा डर सा लगता है, जो जिन्दगी के सफ़र में गतिभंग कर किसी के साथ डेरा डाल देने की बात सोचने ……

"अरे कहीं घूमने भी चलियेगा कि प्रवचन ही चलेगा ? आप तो बहुत ऊँचे प्लेटफार्म से बोलती हैं। मेरी कुछ समझ में नहीं आता है।"

"चलती हूँ अभी। पाँच मिनट में आयी।" —वह आनन्द के पीछे से गुजरी। और आनन्द के बडे बालों को अँगुली से उडाती हुई बोली—कभी बाल कटाने का भी मौका निकाल लो। या किसी के ऊपर रखा रहे हो ?"

आनन्द ने एक दम झुककर जाती हुई मोहिनी का हाथ पकडकर जोर से खीच लिया —"क्या कहा आपने ?"

मोहिनी चौंककर आनन्द के ऊपर आरही। फिर उसने आनन्द के गले में अपनी बाहें डाल दी और आँखों का नशा उडेलते हुई बोली—"तुम इतने भोले क्यों बनते हो आनन्द ?"

तभी दरवाज़े पर से स्वर आया—"मैं आ सकता हूँ मोहिनीजी ?"

दोनो चौंक उठे। मोहिनी कुछ झुँझलायी भी। फिर उठकर खडी हो गयी।

तभी परदे को खसकाकर हँसते हुए ठाकुरसाहब कमरे के अन्दर आ गये।

आनन्द ट्रेन से इलाहाबाद आरहा था।

इधर गर्मी मज़े की पड रही थी। आनन्द आफिस से लौटता, तो अपनी टेबिल पर जम जाता। इधर वह अपनी पुस्तक के अन्तिम अध्याय लिख रहा था। मोहिनी काश्मीर गयी थी, उसका पत्र आया था। शायद महीने भर में लौटे तो कुछ दिन मंसूरी रहे, क्योंकि ठाकुर साहब उन दिनो वहीं रहेंगे। रमेश का पत्र आया था, उसके द्वारा उसे मालूम हुआ था कि उसकी परीक्षायें समाप्त हो गयी हैं और वह गाँव पर ही है। गाँव में आज-

कल हैजा फैला हुआ था। आधार चाचा की लडकी और पुत्तू भैय्या की स्त्री की मृत्यु हो गयी थी। रमेश ने यह भी लिखा था कि वकील साहब नैनीताल जाने वाले थे शायद चले गये हो। मैं माया को लेने गया था पर रानी ने नही आने दिया। बडे गॉव का कालेज जुलाई से डिग्री कालेज हो गया है, रामनरेश त्रिवेदी ने अपनी पॉच लाख रुपये की जायदाद उसके नाम कर दी है और कालेज का नाम भी उन्ही के नाम पर हो गया है। आप कोशिश कीजिये कि यहाँ आपका एपाइन्टमेण्ट हो जाये क्या हर्ज है? बापू की तबियत ठीक है वे आपको बहुत याद करते हैं। आखिर आपने क्या सोचा है कि सात महीने हो गये और आपने इधर का नाम ही नही लिया। माया के लिये आप क्या सोच रहे हैं? क्या वकील साहब के सहारे सौंप कर निश्चिन्त हो बैठना ठीक है। ...."

सात महीने!

आनन्द को बडा आश्चर्य हुआ था कि सात महीने बीत गये इस बीच उसने कितनी बार सोचा है कि चल कर घर हो आये, लेकिन पता नही वह क्यो हिचकिचाता रहा है। वह हमेशा शंकित रहा है कि वहाँ जाने पर कोई नई समस्या न खडी हो जाये और खासकर राज! जब भी उसे राज की याद आती है उसका मन भटक जाता है। राज के पत्र भी तो इधर नही आ रहे हैं। उधर एक आया था अजीब पत्र था। कुछ समझ में ही नही आता कि उसका क्या उत्तर दूँ। .. .. घर में उठने वाली अनेक बातो के विषय में सोच-सोचकर मैं उद्विग्न हो जाती हूँ। तुम पर भरोसा था, एक विश्वास था सो तुम्हे पता नही क्या होता जा रहा है। आजकल भइया भी वहॉ नही हैं, लेकिन जब पत्र लिखने बैठती हूॅ तो लिखा नही जाता। आनन्द, मैंने सब कुछ सोचा था लेकिन कम से कम इन दिनो के लिये ठीक-ठीक कुछ नही सोचा था। यह मत समझना कि मुझमें हिम्मत नहीं है। तुम कुछ आगे बडो तो मैं ऑख मूँद कर तुम्हारे चरण चिन्हों पर पैर उठा दूँगी लेकिन खुद कैसे आगे बढूँ, कुछ समझ में नही आता है।

मुझसे तो कुछ पूछा ही नही जा रहा है, कुछ पूछा जाये तो बात भी करूँ। ऐसे क्या करूँ। आनन्द सच-सच बताना तुमने क्या मेरे विषय में सोचना बिल्कुल छोड दिया है। आनन्द मै सब कुछ सहने को तैयार हूँ, लेकिन धोखे में रहने को कदापि प्रस्तुत नही हूँ इतना समझ लो, आगे जैसी तुम्हारी इच्छा ··· '।

बर्थ पर बैठे-बैठे आनन्द तमाम बाते सोचता रहा, सिगरेट पीता रहा। दूसरे दिन वह नौ बजे केकरीब बॅगले पर पहुँचा तो वहाँ कोई नजर नही आया। क्या बात है, सब लोग चले गये क्या ? लेकिन भरोसा तो होगा। रिक्शा रोक कर उसने बँगले का चक्कर लगाया। भरोसा पीछे के नल पर स्नान करके धोती पहन रहा था। आनन्द को देखते ही बोला—"जैराम जी की साहब। आपने तो ऐसा बिसार दिया कि आने का नाम ही नही लिया।"

"नही भरोसा ! कही तुम लोगो को भूल सकते हैं। घर में कोई नही है क्या ?"

"है क्यो नही, सभी लोग हैं। आज गगा जी नहाने गये हैं सब लोग अब आते होंगे, सबेरे के गये है। आइये' और चाभी का गुच्छा लेकर भरोसा दौड कर गया और उसने कमरे का ताला खोल कर सामान रखा।

आनन्द ने रिक्शे वाले को बिदा किया और कमरे में आकर बैठ गया कमरा देखा, बिल्कुल वही, उसी तरह का सजा, हॉ पुताई जरूर हो गयी थी और बायी दीवाल पर रानो और माया का एक सम्मिलित चित्र अवश्य बढ़ गया था। आनन्द ने कपडे उतार कर शेव किया। शौच गया, और स्नान करके फिर कमरे में आ गया। घडी देखी, साढ़े दस बज रहे थे। पखा चलाकर वह एक कुर्सी पर पडा-पडा ऊँघ गया।

अचानक उसकी तन्द्रा टूटी।

"दीदी, कौन आया है कमरे में ?" माया की आवाज थी वह दरवाजे से ठिठक कर लौट गयी। आनन्द ने ऑखें खोल दी।

रानी ने झाँका फिर वह कमरे में घुस गयी—"अरे मास्टर साहब आप! नमस्ते।" और आनन्द के बगल में बैठती हुई बोली—"कब आये आप? अरे माया, तुम्हारे भैया हैं, डरपोक कहीं की। चल इधर"

माया सकुचाती हुई आयी और 'नमस्ते' करके बैठ गयी। उसके नमस्ते करने पर रानी और आनन्द दोनो हँस पड़े।

आनन्द ने देखा इन सात महीनो में ही माया कितनी बडी हो गयी है। बिल्कुल रानी के बराबर है।

"पापा कहाँ हैं रानी?"

"आते हैं। अरे चौरस्ते से आ रहे हम लोग। पापा तो खरामा-खरामा आ रहे हैं। अम्मा नही हैं साथ? उनसे चला जाता है! हम लोग तो आगे-आगे भाग आये।"

"और कहो, यहाँ के क्या हाल-चाल है?"

"मास्टर साहब, हाल-चाल मत पूछिये। आपसे तो बस लडने की इच्छा है। आपको क्या चिन्ता कि रानी मरी या जिन्दा है। मैने तीन पत्र लिखे, तब आपने एक का उत्तर दिया। यही हाल है और क्या?" रानी ने मुँह फुलाते हुए कहा—"आप बड़े वैसे हैं मास्टर साहब। ऐसा नही होना चाहिये आपको।"

"कैसा हूँ पगली?" आनन्द ने रानी के सिर पर चपत मारते हुये कहा—

"उई! लगता है मास्टर साहब! दिल्ली जाकर आपके हाथ बड़े कड़े हो गये है।"

"तुम बस बहस करोगी और कुछ नही। जरा यहाँ के हाल-चाल तो बताओ"।

"हाल-चाल क्या? इम्तहान खतम, पडाई हजम। दिन भर खूब

सोवाई होती है, शाम को घुमाई। कभी राज-दीदी यहाँ आ जाती हैं, कभी हम लोग वहाँ चले जाते हैं।"

"तो राज-दीदी यही हैं ?"

"ओह, तो आप इतनी देर से हाल-चाल क्या पूछ रहे थे। सीधे क्यो नही पूछ लिया कि राज कहाँ हैं। यही है साहब। आजकल तो जी तोड़कर रिसर्च हो रही है।

जब तक आनन्द इसका उत्तर दे, वकील साहब और रानी की माँ आ गयी।

आनन्द ने उठकर प्रणाम किया।

"सुखी रहो, सुखी रहो, कब आये आनन्द ?"

"अभी देहली ऐक्सप्रेस से"

"बड़ा अच्छा किया। तुमको तो बीच में ही आना चाहिये था। दिल्ली बहुत अच्छी लगी क्या ?"

"नही पापा, बल्कि मेरा तो मन ऊबता है वहाँ। इधर कहीं बुला लीजिये।"

"इधर कई दिनो से तुम्हारी याद हो रही थी आनन्द। बड़े दुबले हो। क्या बात है ? खाने-पीने का इन्तजाम ठीक नही था क्या ?" रानी की माँ ने बीच में ही कहा—

"होटल में खाता हूँ अम्मा।"

"तभी, तभी। अच्छा मैं जरा पूजा करलूँ"। और वह अन्दर चली गयी।"

"यही तो मैं सोच रहा हूँ। अभी कोई बीस दिन हुये, नरेन्द्र आया था। वह बता रहा था कि जो जगह खाली हुई थी उस पर एक मिनिस्टर का भतीजा भी उम्मीदवार था। अतः वह कुछ कर ही नही सका। हालाँकि वह थर्ड डिवीज़न बी० ए० भर था। इस बार फिर एक जगह निकल रही है

अक्टूबर में, उसमे तुम्हारे चान्सेज फेयर हैं। तो सीधे दिल्ली से आ रहे हो कि गॉव से ?

"नही दिल्ली से। गॉव भी जाऊँगा।"

"जरूर जरूर। अच्छा माया, कुछ खाने-पीने का इन्तजाम तो करो बेटी, अपने भैया के लिये भी और मेरे लिये भी। अपने भैया से कुछ बातें की ?"

रानी ने हँसते हुए कहा— "अरे पापा, जब से आई है बिल्कुल बुद्धू बनी बैठी है। मुँह से आवाज ही नही निकली।"

"चुप शैतान कही की। तुमसे छोटी है और उसे चिढ़ाती है। जाओ बेटा माया, रानी तुम भी जाओ उसकी मदद करो।"

रानी भी माया के पीछे-पीछे चली गई।

इसके बाद वकील साहब और आनन्द तब तक बातें करते रहे, जब तक रानी ने आकर सूचना नही दी कि खाना तैयार हो गया है, चलिये।

खाना खाकर आनन्द अन्दर एक कमरे मे खडा आले में रखे वकीलिन के पान-दान से पान लगा रहा था कि माया जा पहुँची।

आनन्द को पान लगाता हुआ देखकर माया बोली—भैया !"

"कौन ! माया, आओ" घूमकर देखते हुए आनन्द ने कहा।

माया कमरे में घुसकर चुपचाप खडी हो गयी।

"कहो माया ? क्या हाल है ? तुम्हे यहाँ कोई कष्ट तो नही हुआ।"

"नही भैया !"

"यहाँ अच्छा लगता है ?"

"लगता क्यो नही।"

"तब ठीक है। माया, बात यह है कि अम्माँ रही नही, घर

में तुम्हारा अकेले रहना ठीक नही था। फिर जब तुमने हाईस्कूल कर लिया है और तुम्हारी आगे पढने की इच्छा है तब उसका प्रबन्ध मुझे करना ही चाहिये था। इसलिये मै तुम्हे यहाँ ले आया था। माया, तुम यहाँ बडी अच्छी जगह हो। ये लोग बहुत सभ्य और सम्भ्रान्त है। वकील साहब मुझसे पुत्रवत् स्नेह रखते है। मुझे विश्वास है माया, तुम्हे यहाँ कोई कष्ट नही होगा। और सुनो, कोई कभी यदि असुविधा हो भी, तो ख्याल न करना, अच्छा। अम्मा का-सा स्नेह और ममत्व कोई दूसरा नहीं दे सकता, यह सत्य है। लेकिन बिटिया, सबके माता-पिता जीवन भर थोडे ही रहते है। फिर तुम्हे क्या, तुम कभी किसी बात की चिन्ता न करना। समझी ? अम्मा नही हैं तो क्या हुआ ? मैं तो हूँ। फिर रमेश है, बड़ी बहन की भाँति तुम्हे रानी मिल गयी है। आँ ?"

माया को पता नही क्यो, आज सुबह से ही अम्मा की याद आ रही थी। आनन्द ने भी जब उनकी याद दिला दी तो बरबस उसकी आँखे भर आयी—"भैया। अम्माँ तो ।"

"यह क्या माया ? अरे, पागल कही को, रोती है!' आनन्द माया के पास आ गया।

माया आनन्द के कन्धे से लगकर सिसक उठी।

आनन्द ने धीरे से माया की पीठ थपथपायी। फिर बडी देर तक उसे समझाता रहा।

इसी बीच रानी ने आकर कहा—"चलिये मास्टर साहब, पापा बुला रहे हैं।"

इसके बाद आनन्द, वकील साहब, रानी और माया की फिर बैठक लगी। बाद में जब वकील साहब ऊँघने लगे तो आनन्द ने कहा "चलूँ मैं भी सोऊँ। आज रात भर नही सोया।"

रानी बोली—"बगल के कमरे में पलँग पडा है, जाइये सोइये। हम लोग भी चलें आराम करें।"

कमरे के बाहर आकर रानी ने कहा—"मास्टर साहब शाम को राज के यहाँ जाइयेगा न !"

"सोचता तो हूँ ।"

"आज हम लोग भी जायेंगे । साथ ही चलिये न ?"

"रानी, बात यह है कि मै जरा दो-एक और लोगो से मिलता-जुलता जाऊँगा । आज जरा जीवन से मिलूँगा । काफ़ी दिन हो गये, उसका कोई समाचार नही मिला ।"

"अरे उनका क्या समाचार । आजकल हर महीने एक-न-एक कल्चरल शो करते हैं । कोई मिनिस्टर आया, कोई गवर्नर आया या कोई भी बड़ा आदमी आया, जीवनजी का ड्रामा हो रहा है, वैराइटी प्रोग्राम हो रहा है । बडा नाम कमाया है इधर उन्होने ।

"अच्छा !"

"हाँ मास्टर साहब । आजकल बडे रंग है उनके । इधर दो-तीन ड्रामों में उन्होने खुद भी अभिनय किया और ग़ज़ब का किया । अभी हाल में गवर्नर आये थे । जीवन जी का ड्रामा देखा तो उन्होंने बडी तारीफ़ की । वो तो पेपर में भी आयी थी । म्यूज़िक कालेज में एक ड्रामा हुआ था । माया ने भी उसमें पार्ट किया था तो अपनी 'रंगमच' संस्था की ओर से उसे एक गोल्ड-मेडल दिया था उन्होने । फिर एक दिन मिले तो कहने लगे कि क्या बताऊँ, आनन्द नही है यहाँ, नहीं तो उससे पूँछ कर माया की ज़रूर अपनी स्टेज पर एक बार उतारता ।"

"अच्छा, शाम को मिलूँगा उससे ।" कहकर आनन्द अपने कमरे में चला गया ।

२३

आनन्द जब आज इलाहाबाद की सडको पर चक्कर काट रहा था तब उसे लगा कि आज सचमुच वह महीनो बाद जैसे किसी जेल से निकल कर मुक्त स्वच्छन्द वातावरण में आ गया है। सूनी-सूनी चौडी सडकें आज उसे बिल्कुल नयी लग रही थी। उसे ऐसा लग रहा था, मानो इलाहाबाद में वह कभी रहा ही नही था; बल्कि सारा-का-सारा नगर उसने सपने में देखा था। और वह सपना अभी तक उसकी स्मृति में इतना साफ़ और स्पष्ट है कि वह हर एक मोड पर उसी के आधार पर मुड जाता है, हर एक जगह पहचान जाता है।

जब वह जीवन के यहाँ पहुँचा तो जीवन नही था। उसके भाई ने बताया कि परसो यहाँ शिक्षा-मन्त्री आ रहे हैं। उन्ही के स्वागत में जीवन ने एक ड्रामे का आयोजन किया है। उसी में व्यस्त कही घूम रहा होगा। पन्द्रह दिन बाद बहिनो की शादी है, लेकिन उन्हें अपने काम से जब फ़ुर्सत मिले तब तो ' '।

आनन्द वहाँ से चल ही रहा था कि जीवन आ पहुँचा। आनन्द को देखते ही उसने सायकिल फेंककर उसे अपनी बाहो में भर लिया—"कहो आनन्द, कब आये ?"

"आज सुबह।"

"आओ बैठो" उसने तुरन्त अन्दर घुसकर बैठक के दरवाजे खोले। "यार परसो हम लोग एक ड्रामा खेल रहे है, रंगमंच की ओर से। बडी दौड-धूप करनी पड रही है। अभी तो तुम रुकोगे कुछ दिन ? और कहो, दिल्ली में मन लगता है ?"

"लगता क्या है, लगाना पडता है। हाँ, अगर कोई खास काम-काज न हो तो फिर दिल्ली स्वर्ग है। नित्य ही कोई-न-कोई विदेशी आता रहता है, नित्य ही समारोहो, कान्फ्रेन्सो और अधिवेशनो के धुवॉधार आयोजन होते रहते हैं। पहले कुछ दिन तो बडा अच्छा लगता है, फिर तो मन ऊब जाता है। और सीधी बात तो यह है कि इलाहाबाद में रहनेवाले व्यक्ति को दिल्ली शायद ही अच्छी लगी। इलाहाबाद की शान्ति, शालीनता और खुला हुआ जीवन्त वातावरण आपको वहॉ नही मिलेगा। एक बात और है, दिल्ली पहुँचकर आप अपने अभावो की दुश्चिन्ताओ से इस बुरी तरह इतनी जल्दी ग्रस्त हो उठेगे कि दूसरे दिन ही भाग खडे होने को मन करने लगेगा। तुम बताओ, क्या हाल-चाल है, क्या कर रहे हो आजकल ?"

"बताता हूँ, जरा पहले तुम्हारे लिये कुछ लस्सी वगैरह ।"

"नही-नही, पहले बातें करते है। फिर चलेंगे। कही रास्ते में पी ली जायगी।"

"यह भी ठीक है ।"

"हॉ तो, तुम बताओ अपना हाल ।"

"क्या हाल बताऊँ आनन्द ! किसी तरह सब चला जा रहा है।"

"अगले महीने में तो बहिन की शादी है, तुम्हारे भैया बता रहे थे।"

"हाँ पहले श्यामा की, फिर आठ दिन बाद आशा की।"

"अच्छा ! तो दोनो को एक साथ निपटा रहे हो। चलो, यह अच्छा है। एक दम निश्चित हो जाओगे।"

"क्या निश्चिन्त हो जाऊँगा। यार तुम जानते नही कैसे निपटेगा सब। बड़ी कठिन समस्या है।"

"क्यो, क्या बात है ?"

"बात क्या होगी, भैया ने लीवर ब्रदर्स में नौकरी कर ली है। तीन

सौ पर । और बहिनो की शादी में कम से कम बीस हजार का खर्चा है ।"

"सो तो है ही ।"

"इसीलिये अम्मा और भैया ने मिलकर तय किया है कि राजापुर वाला मकान, जिससे करीब सवा सौ रुपया किराया आता है, इसी महीने बेच दिया जाय । पहले मकान रेहन रखने की बात चली थी, लेकिन भैया का कहना है कि रेहन रखने से बेच देना अच्छा है ।"

"हाँ, मेरा भी यही ख्याल है, भैया ठीक सोचते है । लेकिन तुम क्या कर रहे हो ? कही कुछ काम-धाम देखा कि बस यही ड्रामा करते रहोगे जीवन ?"

"आनन्द, अब मैने यही काम-धाम बना लिया है। देखो शायद यही काम दे जाय ।"

"क्या काम देगा ?"

"दे सकता है। तुम्हें मालूम नही । इधर चार महीनो से मुझे कितने रेडियो-प्रोग्राम मिल रहे हैं । इन छै महीनो में मैने आठ ड्रामें खेलें है एक से एक अच्छे और सभी बडे आदमियो के लिये । रेडियो में एक ड्रामा प्रोड्यूसर की जगह खाली हुई है । मुझे उम्मीद है कि रख लिया जाऊँगा, अगर किस्मत ने जरा भी साथ दिया ।"

"हाँ, तब बडा अच्छा है ।"

यही नही आनन्द । प्रान्तीय सरकार की ओर से एक ड्रामा एंड साँग्स आफ़िसर की वान्ट निकली थी । मैने अप्लाई कर दिया है । बस अब थोडा सा सोर्स ज़ोर लगाना भर बाकी रह गया है ।"

"तो लगाते क्यो नही ?"

"कहाँ से लगाऊँ यार । अगर मेरे पास कोई सोर्स ही होता, तो मैं इस तरह होता । लेकिन मैने एक रास्ता सोच लिया है ।

"क्या सोचा है ?"

"अगले महीने के मध्य तक उसका सेलेक्शन होगा। और परसो शिक्षा मन्त्री यहाँ आ रहे हैं। और मेरा ड्रामा उनके ही स्वागत में हो रहा है। वे मेरा ड्रामा दो बार और देख चुके है। एक बार कन्वोकेशन टाइम में और एक बार पहले। अब वे मेरा नाम जानते है, मुझे पहचानते हैं। परसो ड्रामा करके नरसो मै उनसे एक अच्छासा सार्टिफिकेट लिखवाता हूँ। और साफ साफ कहता हूँ कि साहब अमुक जगह के लिए मैं उम्मीदवार हूँ। आप मेरी मदद कीजिए। और यह कोई गलत काम नही होगा। मैं तो डिजर्व करता हूँ भाई।

"वाह, बडे दूर की कौडी मारी है तुमने!"

"भई आज नही, पिछले सात महीनो से मार रहा हूँ।

"और बताओ, तुम्हारी मित्र मण्डली के क्या हालचाल है।"

"मालूम नही।"

"क्यो ?"

"मुझे अपने काम से छुट्टी से नही मिलती और उन्हे अपने काम से। हाँ, जब शो होने को होता है तब जरूर दो-एक मिल जाते हैं। पास माँगने के लिए। और मै इनकार कर देता हूँ कि भाई मजबूर हूँ। तुम्हे पहले बताना चाहिए था। या अगर पहले कहा तो बाद में कहदिया कि क्या बताऊँ दोस्त मैं भूल गया। अब अगले ड्रामो में ले लेना। आनन्द, अब मैंने सबकी चिन्ता छोड दी है। अपनी ही चिन्ता से मुझे छुट्टी नही दुनियाँ को कहाँ तक देखूँ!

"और तुम्हारे उन दोस्तो का क्या हाल है ?"

"बताया न आनन्द! इस समय मुझे चाहे जो-चाहे जो कुछ कहले। लेकिन मेरा चक्कर ही दूसरा है। मिल गये, बातें कर ली। उलाहने मिले, सुन लिया।

बुराइयाँ सुनने को मिली, वह भी एक कान से अन्दर दूसरे कान से बाहर। अपने बारे में गलतफहमियाँ फैलने की सूचना मिली, सह ली। हाथ जोड कर माफ़ी माँग ली। जेब से पास निकालकर दे दिये। आने का आग्रह कर दिया और राम राम।"

"तो उन्हे पास दे देते हो, क्यो ?" आनन्द मुस्कराया।

"अब इतना तो करना ही पडता है" जीवन हँसा—"आओ चलें।"

"कही जाना है क्या ?"

"हाँ, उसी का सारा प्रबन्ध करना है। आनन्द, मैं परसो तक तुमसे डट कर बात नही कर सकूँगा। बताये देता हूँ। तुम बुरा नही मानना। ड्रामा देखने आना। पास मैं भिजवा दूँगा। कितने भिजवा दूँ ? एक तुम, एक माया, एक रानी—बस तीन न ! लेकिन यार, अब तो तुम्हे खरीद कर देखना चाहिये।"

"ठीक है मैं खरीद लूँगा। लेकिन तुम वहाँ शकल मत दिखाना समझे।" आनन्द ने हँसते हुए कहा—"चार भेजना। शायद राज भी आये।"

"राज कौन ? राज से तो मै नगद पैसे ले आया हूँ टिकट के। अब तुम आगये हो; नही मैं तो रानी से भी ले आता। तुमने आकर कुछ नही तो छे रुपये का तो नुकसान करा ही दिया, समझ लेना। सोचता हूँ कि कैसे वसूल होंगे।" कमरे से बाहर निकलकर जीवन ने कहा।

"वहाँ हम लोगो को जलपान और करा देना, सब वसूल हो जायँगें।" हँसकर आनन्द जीवन के साथ हो गया।

सडक पर आकर रिक्शा पकडकर बाते करते हुए वे दोनो थोडी दूर ही गये थे कि अचानक एक लडके को सायकिल से आते देखकर जीवन ने उसे हाथ के इशारे से रुकने का सकेत किया। और रिक्साबाले से बोला—ज़रा रोकना तो।"

रिक्शा रुका और वह लडका सायकिल लिये रिक्शा के पास आ गया।

"क्यो बलवन्त, सब ठीक है न ?"

"सब ठीक है।"

"उनको सब समझा दिया।"

"अरे आप निश्चिन्त रहे। पहले सीन के बाद ही दूसरे सीन पर पटाखा, फिर लाइट आफ और वो हो हुल्लड कि स्टेज के पर्दे नीचे और एक्टर उनके नीचे। आप देखते भर रहिये।"

"हाँ, किसी को कानो कान खबर न हो। लाइट वाले को रुपये दे दिये न ?"

"उतने तो दे दिये, लेकिन वह पॉच और मॉग रहा है।"

"उससे कह देना कि काम होगया तो दस मिलेंगे। समझे ? और अपने आदमियो को भी समझा देना अच्छा।"

"जीवन जी, आपसे कह दिया न कि आप तमाशा भर देखते रहिये।"

"ठीक है। चलो रिक्शेवाले।"

रिक्शा आगे बढा। आनन्द ने पूछा—"क्या बात थी जीवन।"

"कुछ नही, कल भी एक ड्रामा है। उसी का इन्तजाम करना था।

"इन्तजाम !"

"हॉ इन्तजाम। बिना इसके अपना मतलव नही हल होता।"

"लेकिन अगर उन्होने तुम्हारे ड्रामें के लिए भी यही इन्तजाम किया तो ?"

"तो क्या तुम समझते हो कि वे नही करेंगे ? लेकिन मै कच्ची गुड्डियॉ नही खेला हूँ आनन्द ! ड्रामे का सारा प्रबन्ध मैं अकेले दम करने की कोशिश करता हूँ। लाइट का कनेक्शन एक नही तीन तीन जगह से रखता हूँ। आखिर कितनी जगह आफ करेंगे। और मेन स्विचो पर अपनी सस्था के आदमियो को अकेले नही रखता, उन पर भैया के दोस्तो को

मिलाकर रखता हूँ। हर पन्द्रह-बीस लोगो के बीच में एक ऐसा आदमी बैठाता हूँ, जो ज़रा सी हलचल पर उन लोगो की खबर ले सके। जितना रुपया आता है उसका एक अच्छा खासा भाग ड्रामा को खराब होने से बचाने के साधनो पर खर्च करता हूँ। फिर अगर कुछ हो ही जाय तो उसे कौन रोक सकता है? अपने चीफ गेस्ट से, अन्य उपस्थित बडे लोगो के सामने मैं स्वयं कह देता हूँ कि साहब, देखिये, मेहनत तो बहुत की है लेकिन क्या बताऊँ, बहुत से लोग ऐसे भी आ गये हैं जो शायद नाटक खराब करने की चेष्टा करें। अपनी जान में मैं उस दोष से बरी होने का पूरा प्रबन्ध कर लेता हूँ।"

"लेकिन यह सब उचित तो नही है जीवन। यह तो अनैतिकता है। इससे व्यक्तिगत स्वार्थ भले सिद्ध हो जाय; पर जिस रंगमंच की उन्नति करना तुम लोगो का ध्येय है वह तो नितान्त समाप्त ही हो जाता है।"

"कैसा ध्येय और कैसी उन्नति? आनन्द, आज मुझे कोई पाँच हज़ार रुपया दे, तो मैं खुद ही अपना ड्रामा ऐसा चौपट करा दूँ कि फिर इलाहाबाद में जल्दी कोई ड्रामा खेलने की हिम्मत न करे! और कोई करे भी तो दर्शको में कोई जाने का साहस न करे!"

"बड़े भयानकविचार हैं तुम्हारे।"

"बहुत भयानक? आनन्द, मैं सब जानता हूँ। तुम यह मत समझना कि ये सारी बातें कहने में मुझे कोई खुशी होती है। लेकिन दूसरा कोई रास्ता नही है। जब तक मेरा कही कुछ स्थायी प्रबन्ध नही हो जाता, अपने सीने पर पत्थर रखकर मैं वह सब करूँगा, जो किसी भी शरीफ आदमी को न तो करना चाहिए, न सोचना चाहिए। आनन्द तुमको मालूम नही, जब मैंने महीने भर खून-पसीना एक करके पहला ड्रामा खेला था, तो मुझे बीच में ही बन्द कर देना पडा था। लाइट आफ़ करके लोग स्टेज पर चढ़ आये थे। एक पर्दे में तो आग लगाने की कोशिश की गयी थी। और जानते हो, किसने कराया था सब? कल जिन लोगों का ड्रामा हो रहा

है उन्हीं लोगो ने। तो जब यही चल रहा है तो क्यो मै ही पीछे रहूँ ? आनन्द, वो जो दूकान है, चलो, वही चला जाय। फिर मुझे ज़रा जस्टिस हुक्कू के यहाँ जाना है।"

"क्यो, क्या टिकट बेचने हैं ?"

"नही, उनकी मिसेज़ से मिलना है। कुछ बातें करनी हैं। वो हमारे रंगमच की सरक्षिका हैं। तुम्हे एक बात बताऊँ ? उन्होने आठ हज़ारकी ग्राण्ट ली है इस संस्था के नाम पर। और किसी को पता नही। परसो केवल मुझे बताया था। मैंने कहा—आप रखिये मैं क्या करूँगा। जब जरूरत होगी तब बतलाऊँगा।' यह हाल हैं आनन्द। वे अपने मतलब में हैं। मैं अपने मतलव में हूँ। क्या समझे ? ये राजकाज हैं, यूँ ही चलते हैं। बस बस, रोको।"

दोनो उतरकर दूकान में गये। लस्सी का आर्डर देकर जीवन ने कहा—"आनन्द, तुमसे एक बात और पूछनी थी।"

"क्या ?"

"माया ने अपने कालेज के नाटक में पार्ट लिया था न ? बडी प्रशसा हुई है उसकी। मै चाहता था कि एक बार किसी अच्छे अवसर पर उसे अपने ड्रामें में स्टेज पर उतारूँ।"

आनन्द चुप रहा।

"बोलो, क्या कोई एतराज़ है ?"

"नही, एतराज की बात नही। वैसे मैं यह सब पसंद नही करता। लेकिन चूँकि तुम्हारा मामला है इसलिए बात दूसरी है। भाई, तुम वकील साहब से पूछना। माया के विषय में सब कुछ वही हैं। मेरा ख्याल है, वह शायद ही राज़ी हो। यह तो उसके कालेज का मामला था। अतः कुछ नही कहा, लेकिन और जगह नही मानेंगे।"

"तो जाने दो।"

इसी बीच एक व्यक्ति और आगया और जीवन को देखते ही बोला—"वाह साहब, आप यहाँ जमे हैं और मैं कहाँ-कहाँ—ढूँढ़ आया आपको !"

जीवन ने कहा था—"आओ, लस्सी पियो।'—भाई एक गिलास बनाना।"

इसके बाद लस्सी पीकर जीवन उससे अपने ड्रामे के विषय में बातें करने में ऐसा मशगूल हो गया कि उसे आनन्द के वहाँ बैठे रहने की कोई खबर ही न रही।

"अच्छा तो जीवन, तुम बातें करो। मैं चलता हूँ। अभी और लोगों से मिलना है।"

आनन्द ने उठते हुए कहा।

"हाँ आनन्द, तुम चलो। कुछ जरूरी बातें करनी हैं। पास मैं भेज दूँगा। तुम आना ज़रूर। अच्छा, बाई–बाई"

आनन्द रिक्शे पर बैठकर चल दिया।

२४

आनन्द जब रंजना के घर के निकट पहुँचा तो मंगल कही बाहर जा रहा था। आनन्द ने मंगल को देखा, तो कहा —"कहाँ मंगल काका ?"

"जै राम जी भैया ! आप गयेन तो इलाहाबाद कर नामै न लिहेन। कब आयेन ?"

"आज सुबह आया मंगल काका।"

"नौकरी में यही होता है" —मंगल ने चौंककर पलटते हुए कहा।—

"भैया, नौकरी में तो आदमी परबस हो जाता है। अबही तो रहिहैं दस-पाँच दिना ?"

"हाँ, अब तो रहूँगा। घर में मौसी है ?"

"बहूरानी तो कहूँ गयी हैं। बिटियारानी हैं। आप चलै, हम अबही आइत है।"

"अच्छा।" रिक्शा छोडकर आनन्द अन्दर गया तो किवाड खुले हुए थे। वह धडधडाता हुआ अन्दर घुस गया। क्षीण गुनगुनाहट के स्वरो से उसने जान लिया था कि राज किस कमरे में है। कमरे के दरवाजे पर पहुँचकर उसकी इच्छा हुई कि पहले आवाज दे। लेकिन सोचा—नही। एकदम अन्दर घुस चलना चाहिए। देखें राज कैसी चौंकती है, और वह दरवाजा पीछे ढकेलकर अन्दर घुस गया।

राज कुछ लिख रही थी। बाहर रिक्शा रुकने और पग-ध्वनियो से उसने समझा —'कोई आया होगा। रानी तो नहीं आयी ?' आने को कह गयी थी। अतः वह उठ ही रही थी। कुर्सी खसकाकर जो वह घूमी तो देखा, आनन्द है।

एक झटके से उसके हाथ उठे और साड़ी की किनारी उसके माथे पर आ रही। —"नमस्ते।"

"नमस्ते राज।" आनन्द ने साडी का माथे पर आना लक्ष्य किया। वह स्वयं चौंक सा पडा।

"कहो राजा, क्या कर रही थी?" और वह खुद ही किनारे बिछी पलँग की पाटी पर बैठ गया। राज ने कुर्सी पर बैठते हुए कहा था—कुछ नही, पत्र लिख रही थी एक मित्र को। बेचारी का पत्र आये हुए बीस दिन हो रहे हैं और मैं अबतक टालती गयी। आज सोचा कि लिख ही डालूँ! आप कब आये?"

"आज सुबह।"

"किससे किससे मिले?"

"मिलता किससे किससे! घर से तुम्हारे लिये निकला। बीच में जीवन से भेंट करता आया। परसो उसका ड्रामा है। उसने कहा है कि पास भेज दूँगा। मगर तुमने तो टिकट खरीद लिया है?"

"हाँ खरीद लिया है; मगर जाऊँगी नही।"

"क्यो? अगर जाना नही था, तो खरीदा क्यो था?"

"यूँही खरीद लिया था। जीवन जी खुद आये थे। इसलिए टाल नही सकी। लेकिन क्या करूँगी नाटक देखकर? यहाँ जिन्दगी खुद ही नाटक हो रही है!"

"क्यो, क्या बात है राज?"

"कुछ नही। सब अपने आप मालूम हो जायगा। आप बताइये। दिल्ली में खूब चैन से कट रही है न?"

"चैन से क्या कटेगी? सच कहता हूँ राज, बिल्कुल मन नही लगता। ये तो कामेश्वर जी वहाँ थे। अतः कुछ अच्छा भी लगा। लेकिन इधर तो बस किसी तरह दिन गुज़ारे हैं।"

"दिन गुज़ारे हैं ! तभी तो इतने दिनो बाद इधर नज़र की है।"

"नही राज ! मैने पचासो बार सोचा —लेकिन क्या बताऊँ ...... !"

"दिल्ली का आकर्षण ही कुछ ऐसा था कि क्या करूँ, सोचकर रह गया ! क्यो ?"

"अब तुम्हारी बात का क्या जवाब दूँ !"

"जबाब मै कहाँ माँगती हूँ ? हाँ, तो इतने दिनो तक दिल्ली में ही रहे कि कही और भी गये थे ? भैया के यहाँ नही गये ?"

"नही राज। कही नही गया। वहाँ भी जाना चाहता था, लेकिन जाया ही नही गया। मगर तुमको यह क्या हो गया है ! क्या शकल बना ली है। रानी कह रही थी कि बडी मेहनत कर रही हो ! अरे ज़रा शरीर देखकर चलो। संस्कृत की कहावत है —शरीर माध्यम खलु धर्म साधनम्। इसका मतलब समझती हो कि समझाऊँ ?"

"सब समझती हूँ।"

"आज तुम बोल कैसे रही हो राज ! क्या बात है आखिर ? बहुत नाराज़ हो। ये लो, पैर छू लूँ, माफ़ी माग लूँ।" आनन्द उसके घुँटनो की ओर झुका।

राज ने हाथो से उसके हाथों को रोकते हुए कहा —"क्या लडकपन करते हैं आप ! मैं क्यो नाराज़ होऊँगी !"

"तो तुमने इधर कोई पत्र क्यो नही लिखा ?"

"आपने ही कौन सैकडो पत्र लिख भेजे !"

"आखिर मैंने किस पत्र का उत्तर नही दिया ?"

"आखिर आपने मेरी किस बात का, मेरे किस प्रश्न का, उत्तर दिया ? मैं कुशल से हूँ, कल वहाँ गया, अमुक मित्र ऐसे है, परसो यह घटना घटी। इन सब के विवरण मैं चाहती थी कि अपनी बात का उत्तर ? आपके मित्र

लाख अच्छे हों, तो मुझे उनसे क्या ? वे आपको बहुत अच्छे लगते हैं तो इससे मेरी किस समस्या का हल निकलता है ? बताओ मुझे। आपको पता है, इधर के कुछ महीने मैंने किस तरह काटे हैं ? आपको पता है इधर घर में क्या-क्या बाते उठ रही हैं ? अभी तक मैं आपके सहारे सब कुछ झेलने को तैयार थी। लेकिन अब बताइये, अकेले मैं सिर पटक दूँ, या जहर खा लूँ ! आपको किसी की चिन्ता है नही। यहाँ किस तरह की बातें करते थे आप, कुछ ख्याल है आपको ? और जब अवसर आया है, तब यह मौनसाधना क्या मेरी शव-साधना के लिये की जा रही है !"

आनन्द अप्रतिभ था। क्या हो गया राज को ? बात ही नही सुनती हैं। हद है इस नाराजी की। नाराजी है कि तमाशा ? वह सोच रहा था, जिस समस्या का हल निकालने में अकेले वह अटक जाता है, उसे राज से विचार-विनिमय करके सुविधा से निकाल लेगा। लेकिन यहाँ तो…!

"क्या बात कर रही हो राज ?

"कुछ ग़लत कह रही हूँ ?"

"तुम होश में तो हो कि नही ?"

"खूब होश में हूँ आनन्द बाबू।"

"खाक होश में हो। राज, मैं तुम्हारी सारी बातें मानता हूँ। लेकिन तुम विश्वास नही करोगी, अकेला रहकर मैं खुद ही इस समस्या को लेकर उलझ जाता हूँ। कोई ठीक रास्ता ही नही मिलता। इसी से मैं सोचता था…।"

"सोचते रहिये ! कौन मना करता है आपको ? आप सोचते रहिये, किसी की जिन्दगी ऑसू पीते बीत जायगी, किसी के सपने बिखर जायंगे, किसी के अरमानो में आग लग जायगी। और आप उसके उठते हुए धुएं का, उसकी उठती हुई लपटों का सौदर्य निहारते रहियेगा।" कहते-कहते राज का गला भर आया।

'आप सोचते रहियेगा। और कहते रहियेगा!' राज मैं आजकल की लडकियो की मनोवृत्ति जानता हूँ। ठीक है, क्यो न सोचिये! इलाहाबाद और दिल्ली में अन्तर जो है।"

"आपने ही लिखा था, दिल्ली एक व्यावसायिक नगर है। वह व्यवसाय चाहे जिस प्रकार का हो। लेकिन यहाँ की हर निगाह में व्यावसायिकता झलकती है। तुम जानती हो कि दृष्टि के व्यावसायिक होते ही आदमी की मनोवृत्ति भी व्यावसायिक हो जाती है। उसका प्रत्येक कार्य व्यावसायिक हो जाता है। उसका जीवन-दर्शन व्यवसायिकता की सीमाओ में कस उठता है। और जीवन-दर्शन के व्यावसायिक होते ही सांस्कृतिक पक्ष में घुन लगने लगता है। मै देखता हूँ, यहाँ आनेवाला हरएक आदमी पहले अपनी निगाहो में एक भोलापन, एक सरलता, एक निश्छलता समेटे हुए आता है। उसकी पलको के नीचे एक खूबसूरत मादक सपना पलता रहता है। कितनी अच्छी लगती है दिल्ली की चकाचौंध! भीड-भाड और जनख से चकित उसकी फ़ैली-फैली आँखो की निर्मल, सरल और मनोमोहक दृष्टि। लेकिन धीरे-धीरे उन आँखो की सफ़ेदी मरने लगती है। उनका रस सूखने लगता है। और उनमें एक दीनता, एक व्यथा, एक निरोहता झलकने लगती है। फिर इसके बाद ही उन निगाहो में एक चमक, एक सतर्कता और एक विचित्र प्रकार की कुरूपता फैल जाती है। और तब पहले के और अब के आदमी में ज़मीन और आसमान का अन्तर नज़र आने लगता है।"

"आनन्द, तुम मेरा मुँह मत देखो। मैं तुम्हारे तमाम पत्रों की एक-एक पंक्ति—एक-एक अक्षर—सुना सकती हूँ। मुझे सब कुछ याद हैं। लेकिन मैं कभी यह नही सोचती थी कि इन पंक्तियो का लेखक भी इसी का शिकार हो जायगा। उसकी दृष्टि में भी दिल्ली की तडक-भडक और चकाचौंध कर देनेवाली रोशनी समा जायगी। उसकी दृष्टि में भी व्यावसायिकता खेलने लगेगी।" कहती-कहती राज खडी हो गयी। वह रो पडी तपाक से।

"क्या बकती हो राज ? आनन्द ने जोर से पुकारा। उसे लगा कि राज अब सीमा के बाहर जा रही है। उसने उठकर उसे बाँह पकड़कर कुर्सी पर बैठाने की कोशिश की।—"बैठकर धीरे से बात करो।"

"छोड़िये" राज ने हाथ झटक दिया। बकती हू कि सच कहती हूँ। आनन्द, दिल्ली जाकर तुम्हारी निगाहें बदल गयी हैं। माथुर के साथ किसकी शामें रंगीन होती है ? मुझसे झूठ बोलते हो! माथुर के साथ कलकत्ते कौन गया था ? मैं गयी थी ? शर्म आनी चाहिए आपको मुझसे झूठ बोलते हुए। मैं साफ़ कहती हूँ, एक दिन तुमने अपनी बात से रुलाया था। आज इच्छा हो तो हाथ उठाकर · !"

"राज !" तैश में आनन्द का हाथ उठा और राज के गाल पर चटाक से जा रहा।—"हाँ मैं गया था, कहो—और कुछ कहो !"

"आनन्द !!" चीखकर राज खामोश रह गई। उसकी आँखें खुली की खुली रह गयी। और गालो पर हथेलियाँ रखे वह दो-एक क्षण खड़ी खड़ी काँपती रही। फिर कुर्सी पर गिर सी गयी।

आनन्द मारने को तो उसे मार गया। लेकिन उसे लगा कि उसने कुछ अच्छा नही किया। राज नाराज़ थी, परेशान थी, इसलिए इतना कह रही थी। और ठीक भी था—घर में पचासो बातें उठती ही होगीं। राज के कानो में पड़ती ही होगी। बेचारी कहाँ तक उपेक्षा करेगी ! और मैंने भी तो सचमुच उसकी बात का ज़बाब नही दिया था। यही लिख देता कि मैं आरहा हूँ। मिलकर कोई रास्ता निकालेंगे। तब तो कोई बात थी। कलकत्तेवाली बात भी सच ही है। वह तो मैंने इसलिए नही लिखा था कि कही यह न सोचे कि इलाहाबाद होकर निकल गए, एक दिन के लिए रुक नही सकते थे ! लेकिन शायद कामेश्वर ने लिख दिया होगा। मैंने यह अच्छा नही किया। और कह लेने देता, कितना कहती ! जब दिल का यह गुबार निकल जाता, खुद ही शान्त हो जाती। तब मैं समझा देता।'... उसने राज की ओर

देखा। वह चुपचाप बैठी हिचकियो पर हिल रही थी। आँखें खुली थीं और उनमें आँसू छलछला रहे थे।

आनन्द ने कुर्ते के जेब से रूमाल निकाला और राज की पलको पर रखा। जब पलकें गिर गयी तो आँसू पोछता हुआ बोला—"मुझे गुस्सा आगया राज ! राज, मैं उतना बुरा नही हूँ जितना तुमने मुझे समझ लिया है। यों राज, मैं बहुत बुरा हूँ। तुम्हे मैंने हरदम रुलाया है, लेकिन · ··।"

सहानुभूति के स्वर पाकर हिचकियाँ ज़ोर पकड गयी—"रोने की बात नही आनन्द। किस्मत में जब रोना लिखा होता है तब उससे कैसे बचा जा सकता है ! लेकिन जब आदमी दूसरे के लिए आँसू मोल लेता है, तब वही अगर उसे सहानुभूति और सहृदयता के नाम पर अँगूठा दिखलाये तो बुरा लगता ही है। तुम्ही बताओ—नही लगता है ?"

"राज, मैं तुम्हारे साथ हूँ। मेरा विश्वास करो। अच्छा, आँसू रोको।"

आनन्द ने राज का चेहरा हथेलियों पर उठाते हुए कहा। और फिर लोग जैसे बच्चो को मनाते हैं उसी तरह राज की हथेली अपने गाल पर मारता हुआ बोला—"लो, तुम भी मार लो ! जोर से मारो। हाँ, ज़रा कस के ! उहँ ! ये सब तो दुलारवाले हाथ हैं। अच्छा राज, वे हाथ दिखाओ जो तुमने युनिवर्सिटी में ड्रामा देखकर लौटती बार दिखाये थे।"

राज के ओठो पर मुस्कराहट आगयी। एक बार वह युनिवर्सिटी ड्रेमेटिक हाल से बाहर निकल रही थीं। सडक पर अँधेरा था। पेड के नीचे कुछ लडके थे। पहले लडकियाँ कुछ सहमी, फिर आगे बढ़ी। अचानक एक लडका आगे आया और एक लडकी को धक्का मारकर आगे बढ़ गया। दूसरा आया, वह भी इसी तरह निकल गया। तीसरे को सुषमा ने पकडा और राज आदि मिलकर उसे धुन चली। इतने में प्राक्टर आ गये थे।

आगे बढते ही आनन्द मिल गया था।—"कहाँ चले गये थे आनन्द ? पान खाने ? वाह-वाहरे तुम्हारा पान खाना ! यहाँ अभी दूसरा नाटक होगया। उस का अन्तिम सीन बडा मजेदार रहा !" फिर आनन्द के

पूछने पर उसने बताया तो आनन्द ने कहा—"न बाबा, मैं तुम्हारे साथ" रिक्शे पर बैठ कर नही चलूँगा। तुम मारपीट भी कर सकती हो, मुझे नही मालूम था।" इसी तरह देर तक परेशान करने के बाद कही आनन्द राज़ी हुआ था।

"मुझे यह सब अच्छा नही लगता आनन्द।" राज ने आनन्द के हाथ से अपनी हथेली खीचते हुए कहा।

"अच्छा जो अच्छा लगे वह करो।"

बाहर मंगल की आवाज आ रही थी। राज उठी आँचल से मुँह पोछा और मंगल को बुलाकर बोली—"काका ज़रा चौरस्ते से कुछ समोसे, मिठाई और पान ले लेना। मैं तब तक चाय बनाती हूँ। क्या बात है, अम्मा अब तक नही आयी!

"अब तक तो आय जाय क चही। पता नही, काहे देर कर दिहेन।" कहकर मंगल जाने लगा तो आनन्द ने रोका—"नही, मगल रहने दो। अभी अभी जीवन के साथ जलपान करके आ रहा हूँ। चाहो तो कपडे बदल लो। चलो, कही घूम आयें।

"नही, अम्मा घर पर नही हैं। बिना पूछे कैसे चल सकती हूँ! घर पर किसी को तो रहना ही चाहिए। मंगल तुम जाओ बाज़ार।"

"नही-नही, रहने दो मंगल। तुम जाकर अपना काम करो।"

"तो फिर घर में तुम्हारे लिये कुछ नही है। फिर न कहना कि इतने महीने बाद आया और खालिस चाय पर टाल दिया" राज ने कुछ झुँझलाते हुए कहा।

आनन्द को वह मुद्रा बडी भली लगी—"क्या बात करती हो!"

"बात नही, डर लगता है आनन्द। आजकल तुम बहुत बडे आदमी हो गये हो। दिल्ली में बडे लोगो के बीच उठना बैठना होता है।"

"हाँ, महज़ ढाई सौ रुपयो पर नौकर जो होगया हूँ। इसीसे बडा आदमी

बन गया हूँ। यही न ? राज, मैं हाथ जोडता हूँ। अब बस करो। जितना कह लिया है उतना काफी नही है ?"

"मैं तुम्हें क्या कहूँगी ! तुम बडे हो, हाथ उठाकर मार सकते हो ! मेरी क्या हस्ती ! मैं तो खिलौना हूँ। जब चाहा हँसा लिया, जब चाहा रुला लिया !"

"राज, तुम मजबूर कर रही हो कि मै चला जाऊँ।"

"हाँ तुम्हें क्या ! समझ लेना इलाहाबाद आया ही न था।"

"ओफ" ! हाथो से सिर पकडकर वह पलॅग पर बैठ गया।" पहले तुम जी भर कर सब कह डालो राज ! तुम्हे कसम है आज। कोई गुबार बाकी न रखना।" आनन्द के चेहरे पर सचमुच एक व्यथा की छाया उभर आयी। ऑखो में एक अव्यक्त पीडा घिर आयी—"जब तुमने विश्वास ही छोड दिया तब मुझे क्या कहना है !"

राज पास आ गयी। आनन्द के एक हाथ को पकडकर बालो से विलग करते हुए उसने कहा—"मैंने विश्वास छोड दिया !"

"और क्या ?"

"आनन्द, यही तो बात है। तुम अनुभव करो चाहे न करो। लेकिन मैं अपने को इतना कमजोर पाने लगी हूँ कि मैं चाह कर भी अविश्वास नही कर पाती। अगर अविश्वास करने में ही अपने को समर्थ कर पाती, तो शायद मुझे वह सब नही कहना पडता जो अब कह गयी हूँ। लेकिन एक बात जरूर है, जिसकी गम्भीरता तुम नही समझते। यह मैं कैसे कह दूँ कि तुम समझना नही चाहते ! लेकिन तुमने कभी समझने की कोशिश की हो, ऐसा भी मैं नही देखती। आनन्द, अब यही अवसर है ...।"

"राज, मैंने भरसक इस पर सोचा है। लेकिन कोई सूत्र मेरे हाथ नहीं लगता है। कारण यह है कि मुझसे तो किसी से बातें होती नही। मेरी बात होती तो मैं खुलकर कोई बात कह भी सकता था। लेकिन तुम्हारी बात में मैं

कैसे आगे बढ़ूँ ? बिना प्रसग के अपने मन की बात कैसे कह दूँ ? तुम्हीं सोचो, हाँ, अगर तुम बढ सको तो मैं हर कदम पर तुम्हारे साथ हूँ।"

"आनन्द, कह देना बहुत आसान होता है।"

"इसी से तो मैने कहा था कि जब विश्वास ही नही······।"

"नही आनन्द, ऐसी बात नही है। जब तुम मेरा साथ देने के लिए तैयार हो तो मुझे कोई चिन्ता नही है।" राज की आखें बन्द हो गयी। 'कोई चिन्ता नही; मैं सारे विरोध, सारी झिडकियाँ, सारी बातें हँसकर टाल दूँगी।'

"अच्छा आनन्द, तुम बैठो। मैं चाय अभी बनाकर लायी—कि शरबत बनालाऊँ ?"

"नही, आज तुमने बहुत सी चाय ऐसे ही पिला दी है।" आनन्द ने हँस कर कहा—

"बिना गरमी के एक हाथ इतने जोर का मारा। चाय पीकर भी शायद गरमी आ जाय। क्यो" राज हँस दी। चाय पीने के काफ़ी देरबाद तक वे बैठे बातें करते रहे। लेकिन राज की माँ नही आयी थी। और चूँकि राज को भोजन बनाना था, अतः वह उठ खडी हुई। आनन्द भी खडा हो गया। बोला "तो परसो तय रहा। नाटक देखने चलोगी न ?"

"हाँ, रानी से कह देना—मुझे ले लेगी। और रानी क्यो, तुम्हीं ले लेना। साथ ही चलेंगे सब लोग।"

"ठीक है। लेकिन एक बात मैं और कहूँगा राज। शरीर बिगड जाय, तो ऐसी मेहनत और रिसर्च किस काम की ?"

"अरे कहाँ की मेहनत ! यह सब रानी की बदमाशी है। अब की जरा मिलने तो दो। ऐसी खबर लेती हूँ शैतान की कि····। तुम्हें पता नहीं

आनन्द, वह इतनी दुष्ट है कि उसने माया को भर रखा है— राजदीदी को राजभाभी कहा करो !"

आनन्द और राज दोनो खुलकर हँस पडे ।

आनन्द जब घूमकर चलने को हुआ तो राज ने पूछा—"कल आओगे न ?"

"आऊँगा क्यो नही ? कल भी कही घूमने चलेंगे । रानी को भी लेता आऊँगा ।"

"अच्छा ।"

२५

आनन्द जब रानी और माया को साथ लिये हुए राज के बँगले पर पहुँचा तो राज की माँ खुद कही बाहर जाने की तैयारी में थीं। आनन्द को देखकर भी उन्होने अनदेखा-सा किया। आनन्द ने प्रणाम किया तो बुदबुदाकर कुछ कहकर चुप हो गयी। आनन्द अचम्भे में आ गया।—'आखिर क्या बात है? मौसी का ऐसा स्वभाव तो नही था! इतनी उपेक्षा, इतनी उदासीनता किस लिये—किस कारण?' उसने बड़ी दबी जबान से पूछा—"राज, कहाँ है मौसी? उसने ड्रामा देखने चलने के लिये कहा था। बाहर रानी, माया—सब इन्तजार कर रही हैं।"

"क्यो, तुम्हारे यहाँ नही गयी क्या?"

"नही तो। हमलोग तो सीधे घर से आ रहे हैं।"

"पता नही कहाँ गयी है। कही, मुझसे बता के जाती है? बिना नकेल के ऊँट की तरह घूमती है।" फिर फाटक की ओर बढ़ती हुई चिल्लाई—"मंगल!"

"आया बहूरानी"—मंगल ने दौड़कर आते हुए कहा।

"तुम भी बिल्कुल सठिया गये हो मंगल। तुमसे रिक्शा लाने को कहा था कि नही?"

मंगल भागा—"अभी लाया।"

राज की माँ आनन्द से कहने लगीं—"अरे मैं कौन होती हूँ! मैं तो मूर्ख हूँ मूर्ख! सुन लो आनन्द, मैं चाहती हूँ कि राज जिन्दगी भर बड़े-बड़े

आँसू रोये। मै चाहूँगी—माँ अपनी बेटी के लिये ऐसा चाहेगी। यही सुनने को खून-पसीना एक करके पाल-पोसकर बडा किया था!"

कहते-कहते उसका गला भर्रा गया।

"बात क्या हुई मौसी!"

रिक्शा आ गया था। उस पर बैठती हुई मौसी बोली—"तुम नहीं जानते आनन्द! मुझसे बनते हो। परसो घण्टो सलाह मशविरा करके गये हो और मुझसे पूछते हो कि क्या हुआ? चलो रिक्शेवाले!"

"मौसी!"

लेकिन रिक्शा आगे बढ गया।

आनन्द को काटो तो खून नही था। उसका दिमाग जैसे घूमा जा रहा था। पास खड़े मगल से उसने पूछा—"क्या बात हुई मगल काका? राज कहाँ गयी है?"

"मै नही जानत भैया। थोडी देर भय बजार से लउटे तौ बहूरानी अलग रोबन रहै, अउर बिटियारानी अलग। हम पुछबो भये, मगर कौनो कुछ नै बतायन। फिर हमहूँ खामोश हुइ गयेन। इतने में बिटिया रानी कपडा पहन के निकरी; रिक्शा बुलायेन और कहूँ चली गयी। उनके जाये के बाद बहूरानी निकरी। हम पूछा—बिटिया कहा गई? तो बोली—मुझसे पूछ के नही गयी। आनन्द भैया हम तो दंग रह गये। बिटिया रानी इत्ती बडी हुइ गयी, मुला का मज़ाल कि बिना पूछे कहूँ जायँ! लेकिन आज न जाने का बात रही!"

आनन्द चुपचाप चलता हुआ गाडी तक आ गया।

रानी बोली—"दीदी नही हैं क्या? मौसी तो अभी रिक्शे से इधर गयी हैं।"

"पता नही कहाँ गयी है! शायद मौसी से लड़कर कहीं गयी हैं।"

"जायँगी कहाँ ? अपने घर गयी होगी। लेकिन हम लोग भी तो सीधे ही घर से आ रहे है। पर उनका रिक्शा नही मिला !"

"समय हो रहा है, कही सीधे न चली गयी हो। सोचा—हो देर हो गयी है। ये लोग भी सीधे ही निकल गये हो। ये देखो, दस मिनट हो गये हैं। अभी पाँच मिनट से ज्यादा रास्ते मे लगेगा।" रानो की घड़ी में देखती हुई माया बोली—"चलो भैया, हम लोग सीधे वही चलें। देख लेना, वही मिलेगी।"

बिना जवाब दिये आनन्द ने बैठकर गाडी आगे बढायी। रास्ते में रानी ने कहा—"मास्टर साहब चल तो रहे है। लेकिन कल के नाटक का-सा हाल न हो। आज का समाचार देखा है न आपने ? काफी लम्बा विवरण आया है। बीच नाटक में ही भगदड हो गयी !"

आनन्द ने उत्तर नही दिया। चुपचाप गाडी ड्राइव करता हुआ वह ड्रामेटिक हाल जा पहुँचा। भीड बहुत थी। जीवन दो-तीन मिनट के लिये मिला और साथ के एक नवयुवक को संकेत कर कि इन्हे गेस्ट-रो मे जाकर बैठा दो—और माफी माँगकर—अपने प्रबन्ध मे व्यस्त हो गया।

आनन्द ने देखा—राज नही आयी थी। रानी और माया को बिठाकर वह बाहर आ गया। लेकिन जब समय हो गया और राज नही दिखाई दी, तब उसकी चिन्ता बढ गयी। लौटकर वह अपनी जगह पर आ बैठा।

हाल खचाखच भर गया था। शिक्षा-मन्त्री भी आ गये थे। चूंकि समय हो गया था, हाल में तमाम सीटियाँ और हँसी-कहकहो आदि की कई समवेत ध्वनियाँ जोर पकड रही थी। आनन्द ने लक्ष्य किया कि जीवन कई बार घबडाया हुआ अन्दर आया था। फिर वह आनन्द के पास आकर बोला—"तुमने कुछ देखा आनन्द ?"

"क्या हुआ ?"

"जया को विरोधी लोगो ने किसी तरह फँसा ही लिया। मुझे सूचना मिली थी कि इस तरह की कोशिश की जा रही है। सूचना पाकर मै खुद उसके पास गया था। उसने कहा—नही जीवन जी, ऐसी कोई बात नही है। आपको गलत सूचना मिली है। खैर, मै चला आया। अभी एक लडका भेजा था तो कहला दिया कि तबियत खराब है। फिर मैं खुद गया तो पता लगा कि घर पर नही है, ड्रामा देखने गयी है। और यहाँ कोई पता नही।"

"क्या कोई मुख्य अभिनय था उनका?"

"अभिनय नही, पर्दे के पीछे एक गाना था और उसी गाने पर एक नृत्य था। वह नृत्य ही तो इस ड्रामे की जान है।"

"तो अब क्या प्रबन्ध करोगे?"

"कुछ समझ में नही आता। नही होगा तो मै खुद गाऊँगा। क्या किया जाय? ओः ये देखो, हाल में कितना शोर होने लगा है!"

"कौन-सा गीत था?" रानी ने पूछा। उसे बडी दया आ रही थी जीवन के ऊपर।

जीवन ने गीत की पहली पंक्ति बतायी।

"यह गीत तो माया को याद है। क्यो माया?" रानी ने माया की ओर देखकर कहा।

"याद है तुम्हे माया?" जीवन को जैसे डूबते को तिनके का सहारा मिला।

"याद तो है, लेकिन तैयारी तो कुछ है नही।" माया ने धीरे से कहा।

"तैयारी की कोई बात नही है माया। बस, तुम गा भर देना। हाँ, बीच में भूलना नही। फिर वह गीत तो तीसरे सीन मे है; तब तक कुछ तैयारी भी हो जायगी। और शायद तब तक जया आ ही जाय।"

माया आनन्द का मुँह देखने लगी।

"आनन्द", जीवन ने बडी आजिज़ी से कहा—"आज मत इन्कार करो भैया। मेरा सारा ड्रामा चौपट हो जायगा। सारी मेहनत पर पानी पड जायगा। केवल एक गीत के लिये—वह भी पर्दे के पीछे से गाना है—आनन्द, तुम सोच क्या रहे हो?"

अचानक पीछे से तालियाँ बजने लगी।

"आनन्द, मुझे भी मेकअप करना है।"

"जाओ माया।"

"चलो माया। जल्दी करो। आनन्द, तुम बहुत अच्छे हो। आनन्द तुम्हारा इलाहाबाद आना काम कर गया।" और जीवन माया को लेकर फ़ौरन वहाँ से चला गया।

घण्टी बजी और लाइट आफ़ हो गयी। पार्श्व-सगीत की लहरो पर पर्दा दायी ओर खसकने लगा। हाल में होते हुए कोलाहल के ओठो पर जैसे किसी ने अँगुली रख दी। पर्दा हटा और वृत्ताकार घॉघरे मे हाथ जोडे, झुकी हुई बैठो एक सौन्दर्य प्रतिमा अँगडाई सी लेकर उठी और कतिपय भाव-मुद्राओ के बाद ही, सगीत और नूपरो की अविरल छमाछम की ध्वनि हाल में छाकर रह गयो। नृत्य और सगीत के जादू ने दर्शको को मंत्र-मुग्ध कर दिया। हाल की निस्तब्धता ऐसी थी, मानो दर्शको की आँखें बन्द हो गयी हो। इसी समय रगमच पर दूसरा पात्र आया और उसके एक वाक्य की चिल्लाहट 'बन्द करो' से नर्तकी के चरण ठिठुककर थम गये। दर्शक चौककर जैसे होश में आ गये और रगमच पर सवाद के मोड से नाटक की कथा आगे बढ चली।

नाटक बहुत अच्छा था। पूरे हाल मे खामोशी थी। बीच में एक स्थान पर लोगो ने आवाज़ाकशी की। परस्पर बहस के स्वर सुनायी पड़े और लगा कि झगडा हो गया, लेकिन जब तक लोग पीछे घूमकर

देखे और अपनी जगहो पर खडे हो, तब तक शोर दब गया और नाटक चलता रहा।

आनन्द ऑख खोले नाटक देख रहा था। लेकिन रगमच पर क्या हो रहा है, वह ठीक-ठीक नही बता सकता था।

'गयी कहाँ होगी तुम्हारे यहॉ गयी होगी और कहॉ जायगी मुझसे बनते हो परमो सलाह-मशविरा करके गये हो । क्या राज ने आज स्पष्ट कह दिया ? लेकिन क्या कहा होगा । मान लो, उसने वही कह दिया जो मै सोच रहा हूँ, तो मुझे अब क्या करना चाहिये ? मौसी वकील साहब के यहॉ गयी होगी, पर बाते क्या करेंगी ? मै क्या कहूँगा ?—मुझे क्या, मैं स्पष्ट कह दूँगा ?—हॉ, मै राजसे प्रेम करता हूँ कोई चोरी तो नही है और राज ? राज भी अब बच्चा नही है। अरे कामेश्वर जब आरती से शादी करने की सोच रहे हैं तब इसमे उन्हें क्या एतराज़ हो सकता है।'

आनन्द कोशिश करता कि सारी बातें वह एक सिलसिले में पूरी सम्भावनाओ के साथ सोचता चले, लेकिन विचार-धारा अपने आप उखड जाती थी। एक हवा सी आती और विचारो का समूह आपस मे उलझता हुआ उड जाता। उसे लगा कि माथे के एक कोने में चिलकन सी शुरू हो गयी है। अतः वह उठकर बाहर चला आया। पन्द्रह-बीस मिनट के बाद वह फिर अन्दर गया।

रानी बोली—"कहॉ गये थे, मास्टर साहब ?"

"ज़रा बाहर गया था। क्यो ?"

"जीवन को स्टेज पर आपने देखा था।"

"नही, आया था क्या ?"

"केवल पॉच मिनट के लिये, लेकिन मेरा ख्याल है कि कमाल की ऐक्टिंग कर गये।"

गाया कि मजा आ गया। अब जीवनजी से मिठाई माँगी जाय। क्यो ?"

"पहले बाहर भी तो निकलो"—आनन्द ने कहा।

सब लोग निकलकर बाहर आये। बाहर ये लोग मोटर की ओर बढे ही थे कि जीवन दौडता हुआ आ पहुँचा।—"अरे आप लोग यहाँ हैं, मैं वहाँ ढूँढ रहा था।"

आनन्द ने कहा—"बोलो।"

"अरे बोलना क्या, वहाँ जलपान का प्रबन्ध है। मन्त्रीजी भी वही हैं। चलो उतरो!"

"अरे ठीक है। अब खाना खाने का समय हो रहा है जीवन। चलने दो।"

"अरे वाह! और फिर माया ने तो पार्टिसिपेट किया है। वह खाली मुँह कैसे जायगी। उतरो भाई, आओ आनन्द!"

"नही-नही जीवन, चलने दो, देर हो रही है।"

"आज रहने दीजिये जीवनजी। हम लोग तो और किसी दिन फुर्सत से खायगे, जब केवल हम ही लोग होगे। आज तो वहाँ बडी भीड होगी।" रानी ने कहा।

"तो आज भी और दूसरे दिन भी सही! क्या हर्ज है ?"

"नही, आज देर हो गयी है। अच्छा नमस्ते। मिठाई तो खानी ही है। छोडूँगी नही, याद रखियेगा।"

"अच्छा" और जीवन घूमकर दौड गया।

रानी बोली—"चलिये मास्टर साहब।"

२५

आनन्द जब घर पहुँचा तो वकील साहब बाहर लान में टहल रहे थे। गाडी गेराज में खडी करके जब वह अन्दर जाने लगा तो वकील साहब ने पुकारा—"आनन्द !"

आनन्द लौट पडा।—"जी !"

"बडी देर कर दी ?"

वह चौक पडा—'देर कर दी, अभी दस तो बजे है, ड्रामा तो बहुत जल्दी खत्म हो गया। वैसे तो वह करीब ग्यारह तक लौटने की बात कह गया था। लेकिन यह तो वकील साहब के लेटे रहने का समय है।'

"अभी ड्रामा खत्म हुआ है और हम लोग सीधे चले आ रहे हैं।"

"अच्छा जाओ, खाना खाओ।"

तभी रानी की आवाज आयी—"पापा, चलिये खाना परस गया है।"

आनन्द ठिठक गया—'तो अभी तक वकील साहब ने खाना भी नही खाया है !'

"बेटी, आज मेरा पेट ठीक नही है। खट्टी डकारे आ रही है। तुम लोग खाओ, मै जरा टहल रहा हूँ, जाओ आनन्द !"

कपडे बदलकर, जब आनन्द अन्दर गया तो रानी बोली—"राज दीदी आयी थी मास्टर साहब ! अम्मा बता रही है।"

आनन्द ने उत्तर नही दिया, चुपचाप जाकर चौके में बैठ गया। चौके से रानी की माँ ने थालियाँ बढ़ाते हुए कहा—"बहिन भी तो आयी थी।

रानी के पापा से कुछ बातें कर रही थी। मैं चौके में खोया बना रही थी। सोचा—अभी चलकर मिलती हूँ। थोडी देर बाद गयी तो बहिन रोती हुई मिली, और ये कह रहे थे कि कोई बात नही, आप चिन्ता न कीजिये। मै भरसक समझा कर देखूँगा। आप जाइये, निश्चिंत रहिये। लडके हैं, गलती करते ही हैं। मैने पूछा—क्या बात है ? तो बहिन ने उत्तर नही दिया, बल्कि आँसू पोछती हुई उठ खडी हुई। इन्ही से पूछ लो। मैंने इनसे पूछा तो झिड़क दिया—कुछ नही जी, जाकर अपना काम करो। मैं चली आयी। 'नही बताना चाहते तो मत बताओ'। तुम नही बताओगे तो मेरा खाना नही हजम होगा ! अरे आनन्द, तुम खा चुके ! कही कुछ खाकर आये थे क्या ? क्यो रानी, कुछ जलपान किया था कही क्या ?"

"नही तो चाची।" उत्तर माया ने दिया और रानी की ओर देखने लगी।

"क्या बात है मास्टर साहब ! खाते क्यो नही।" रानी ने घबराकर आनन्द को देखा। वह पानी पी रहा था। आनन्द हमेशा खाने के बाद ही पानी पीता था, बीच में नही।

"भूख नही है।" गिलास रखकर आनन्द उठ गया। बाहर जाकर देखा—वकील साहब अब भी टहल रहे थे। वह अपने कमरे में घुसकर बैठ गया। भरोस आया और बिस्तर ले गया। बिस्तर लेकर वह लान में लगा भी आया। आनन्द बैठा रहा। वह अपने से लडता रहा। उलझता रहा और अन्दर उठनेवाली भँवर मे डूबता रहा, उतराता रहा। वह तब तक इसी स्थिति मे रहा कि जब तक सब लोगो को ऊपर करके रानी माँ ने आकर नही कहा—"अरे, अब सारी रात घूमते ही रहोगे कि सोओगे भी, कुछ शरीर का भी ख्याल है कि यो ही ! चलते क्यो नही ?"

"आता हूँ। रानी-माया सब ऊपर गयी ?"

"कभी की।"

"आनन्द क्या ऊपर है?"

"नही तो। शायद वह अपने कमरे मे कुछ लिख-विख रहा है।"

"अच्छा तुम चलो, मैं अभी आया।"

"मै तो जाती ही हूँ। नही बताते तो न बतायें, मैं नही पूछती पचास बार।" वकीलिन चली गयी। वकील साहब कमरे के द्वार पर आये—"आनन्द!"

सारी बातें आनन्द के कानो मे पड रही थी। "जी" कहता हुआ वह तुरन्त खडा हो गया।

"क्या कर रहे थे? कछ लिख रहे थे क्या?" वकील साहब कमरे में आ गये।

"लिख रहा था! नही तो।"

"तब गर्मी में यहाँ क्या कर रहे थे?"

"कुछ नही, खाना खाकर आया था। बैठा तो अलसा गया।"

"अच्छा ज़रा मेरे साथ आओ।" कहकर वकील साहब अपने कमरे की ओर मुडे। आनन्द उनके पीछे हो लिया।

कमरे में पहुँचकर वकील साहब कुर्सी पर बैठ गये।—"पंखा चला दो आनन्द! दोनो। हाँ अब ठीक है। बैठ जाओ।"

आनन्द एक कुर्सी पर बैठ गया।

वकील साहब कुछ क्षण चुप रहकर सोचते रहे। फिर एकाएक सिर उठा कर बोले—"हाँ आनन्द! आज राज की माँ मेरे पास आयी थी।"

"जी।"

"उन्होने जो कुछ कहा—क्या मै विश्वास करूँ, वह सत्य है?"

"क्या कहा उन्होने?"

"तुम अनुमान नही कर सकते कि उन्होने क्या कहा होगा।"

"मैं क्या जानूँ, उन्होने क्या कहा !"

"उनके पहले राज आयी था।"

"आयी होगी। वैसे ड्रामे में उसे घर से ले लेने की बात थी। पर चूँकि हम लोगो को यही देर हो गयी थी, अतः वह खुद ही चली आयी होगी।"

"वह नाटक देखने के लिये नही, तुमसे मिलने आयी थी।"

"अच्छा ! मैं नही जानता।"

"तुम्हें पता है, वह अपनी माँ से लडकर आयी थी।"

"पता नही, लेकिन घर पर मौसी का जो मूड था, उससे आभास जरूर मिला था।"

"तुम जानते हो, इसके मूल मे क्या है ?"

"मैं क्या जानूँ पापा ! मेरे सामने तो कोई बात हुई नही।"

वकील साहब के प्रश्न उसे अच्छे नही लग रहे थे।

"तुम परसो राज से मिले थे ?"

"जी। परसो गया था, मौसी से मिलने।"

"मौसी मिली थी ?"

"नही, वे कही गयी हुई थी। मै थोडी देर राज से ही बातें करके चला आया।"

"क्या-क्या बातें हुई थी उससे ?"

आनन्द समझ नही पा रहा था कि वकील साहब आखिर क्या कहना और क्या कहलाना चाहते है। वे जिन सहज स्वरो में बहुत ही लापरवाही से धीरे-धीरे बाते कर रहे थे, उससे वह बडी ऊब महसूस करने लगा।

"क्या बतायें आपको पापा! दुनियाँ भर की बातें हुईं, नौकरी की, दिल्ली की, उसकी रिसर्च की आदि-आदि। आखिर बात क्या है पापा? आप क्या समझते हैं कि मैं कोई बात आपसे छिपाऊँगा जो आप ऐसे चक्करदार ढंग से प्रश्न पूछ रहे हैं। आप सीधे-सीधे पूछिये न!"

"आनन्द, तुम सीधे जानना चाहते हो तो सुन लो। आज, राज की माँ पंडित के यहाँ गयी थी, सगाई का मुहूर्त निकलवाने। लौटकर आयी तो राज ने स्पष्ट कह दिया कि माँ तुम बेकार दौड़-धूप कर रही हो। मैं शादी नहीं करूँगी। मैं साफ-साफ अभी से बताये देती हूँ। बाद में मुझे दोष मत देना कि पहले क्यों नहीं बताया।

"माँ ने पूछा—"क्यों क्या बात है? आखिर उस आगरेवाले लड़के में क्या कमी है? स्वस्थ सुन्दर है, डाक्टर है, पिता हैं सिविल सर्जन। और क्या चाहिये?" राज ने उत्तर दिया—"कमी वमी की बात मैं नहीं जानती, लेकिन अभी मैं शादी नहीं करूँगी।

"माँ ने कहा—"तो आखिर क्या करोगी? जिन्दगी भर कुवारी रहोगी! मेरी छाती पर मूँग दलोगी! लोगों के ताने सुनवाओगी कि कुवारी लडकी घर मे बैठाल रखी है! आखिर किससे करोगी? स्वर्ग के देवता तो तुम्हारे लिये आयेंगे नहीं?

"शादी जिससे करनी होगी, बाद मे देखी जायगी।

"आनन्द, बात बढती गयी। माँ ने चिल्लाकर कहा कि आखिर मै भी तो सुनूँ कि वह कौन है, जिसमे सुरखाब के पर लगे हैं।

"राज ने तडाक से जबाब दिया—"सुनना चाहती हो तो सुन लो। मै आनन्द से प्रेम करती हूँ। शादी भी आनन्द से करूँगी।" इसी तरह की और बातें हुईं। क्या यह सच है आनन्द कि राज तुमसे प्रेम करती है और तुम भी राज से प्रेम करते हो?

"प्रेम करना कोई पाप या अपराध तो नहीं है पापा!"

"नही बेटा—मैं कब कहता हूँ कि पाप है ।" उनका स्वर बेहद कोमल था ।—"तो तुम भी राज से प्रेम करते हो न ? मैं केवल यही जानना चाहता था ।"

"जी ।"

"सच्चा प्रेम ?"

"सच्चे-झूठे की बात मै नही जानता पापा ! यह तो बहुत ही हल्के और बाजारू शब्द हो गये हे कि तुम्हारा प्रेम सच्चा है कि झूठा ! तुम पवित्र प्रेम करते हो या अपवित्र ? तुम्हारा प्यार वासनात्मक है कि आत्मिक ? मै तो केवल इतना जानता हूँ कि राज से मै अपने समूचे अस्तित्व, समूची आस्था और समूची सामर्थ्य से प्रेम करता हूँ, करना चाहता हूँ । इस कारण अपने और उसके सम्बन्धो के स्थायित्व की भी बात सोची हो तो वह अनुचित तो नही है । और मेरा ख्याल है कि हम लोग बच्चे भी नही है कि आँखो पर पर्दा डाले, एक आकस्मिक जोश और तरग में कोई निर्णय कर ले, जिसका निर्वाह हमारी सामर्थ्य से बाहर हो । और मै तो यह भी समझता हूँ कि हम लोगो के बीच कोई ऐसी बात शेप नही है, जिसको लेकर हमें भविष्य मे पछताना पडे । हमारे बीच कोई रहस्य, कोई दुराव, कोई छिपाव नही है । हम लोग बाहर से लेकर भीतर तक एक दूसरे के सामने उस खुली हुई पुस्तक की भाँति है जिसके एक-एक पृष्ठ, पृष्ठ नही, एक-एक पक्ति और एक-एक शब्द हमारे पढे हुए है ।" आनन्द आवेश के झोके में इतनी देर से अपने मन में सचित बातो को एकबारगी कह गया ।

"आनन्द, मै तुम्हारी बातो का आदर करता हूँ । लेकिन मैं कुछ कहना चाहूँगा और चाहूँगा कि तुम सब्र से उसको सुन लो । फिर तुम स्वतन्त्र हो, जो चाहना करना ।" वकील साहब बहुत ही सीधे स्वरो में धीरे-धीरे बोल रहे थे—"आनन्द, तुम्हारी बात के अलावा साथ में ही—और तमाम बातें भी देखनी पडती है, जिनको तुम नही समझोगे ।

क्योकि वे तुम्हारे सामने नही होगी, तुम्हारे कानो में भले ही पडें, लेकिन मुँह पर शायद ही कोई कहे।

"आनन्द मै तुम्हारे मन की स्थिति समझता हूँ, क्योकि मै भी कभी युवक था और मैने भी प्रेम किया था। लेकिन निभा नही सका था। क्योकि मैने जिस विवाह से इन्कार कर दिया था उसमें पिता जी ने बहुत अपमान सा अनुभव किया था और चूँकि उन्हे दिल का दौरा आता था, इस कारण वे इस धक्के को सँभाल नही सके और महीने भर में ही उनकी मृत्यु हो गयी थी! बाद मे रोकर मुझे अपना निश्चय बदल देना पडा था। अपनी उस ज़िद का मुझे आज भी बहुत अफ़सोस है और वह लडकी, जिसके बारे में कहा जाता था कि अगर मनमोहन ने उसे निराश कर दिया तो वह ज़हर खाकर जान दे देगी, आज अपने पति और पाँच बच्चो के साथ बहुत सुख से है। उसका बडा लडका नेवी मे कैप्टन है, एक आई सी. एस. है। एक ने अभी-अभी ला प्रैक्टिस शुरू की है। बडी लडकी .युनिवर्सिटी में लेक्चरर है। वह बहुत सुख से है आनन्द। शायद उतना सुखी मेरे साथ कभी नही रह सकती थी। अभी पिछले वर्ष वह सारा योरप घूमकर लौटी है। आज जो कभी सयोग से कही मिल जाती है तो देखकर मुँह घुमाकर चल देती है। अपनी शादी के दो-तीन साल बाद ही उसने अपनी एक मित्र से जानते हो क्या कहा था? उसने कहा था—बडा अच्छा हुआ जो मनमोहन ने ही अपना इरादा बदल दिया। नही तो मेरी ज़िन्दगी सड जाती! आनन्द, मैं तुम्हारे और राज के सम्बन्धो पर अविश्वास नही करता और न तुम्हारे प्रेम का अपमान करता हूँ; क्योकि प्रेम मान और अपमान के परे होता है।"

"इससे आपका मतलब क्या है? कहना चाहकर भी आनन्द कह नही सका। वकील साहब कहते रहे—

"आनन्द, तुम राज की माँ का स्वभाव नही जानते। वह आज मुझसे क़सम खाकर कह गयी हैं कि अगर यह विवाह न हुआ तो मेरी लाश

ही घर से निकलेगी। मेरी तेरही के बाद ही राज और आनन्द का विवाह सम्भव है। मेरी ऑखो के सामने यह सब नही हो सकेगा। नही तो राज पहले मेरा गला घोट दे, फिर अपना विवाह रचाये।

"आनन्द, मै भी पिता हूँ। इसलिये उसकी स्थिति समझता हूँ। सन्तान चाहे जितनी बडी हो जाय और चाहे जितनी तरक्की करले, लेकिन कुछ काम ऐसे होते है जिनके उत्तरदायित्व से उनके माता-पिता को बिल्कुल अछूता नही रखा जा सकता। सन्तान चाहे जितना मन में सोचे कि मै इतना बडा हूँ, इतना ऊँचा अधिकारी हूँ, अपने प्रत्येक कार्य के लिये मैं स्वय उत्तरदायी हूँ, माता का नाम इस सम्बन्ध मे क्यो घसीटा जाय? लेकिन वे नही जानते कि वे घसीटे जाते है। दुनिया की बहुतेरी ज़बाने उस काम में, उस सन्दर्भ में उनका नाम घसीटेगी, उस काम में उनका हाथ बटायेगी। उनके द्वारा प्रदत्त प्रोत्साहन की कल्पना की जायगी और उस समय जब कि माता-पिता सचमुच ही अपने जी-जान से सन्तान के कार्य के विरोधी हो, उनकी क्या स्थिति होगी, तुम सहज ही अनुमान लगा सकते हो।

"दूसरी बात आनन्द, जो सबसे बडी बात है, यह है कि इस मामले में मै आ फॅसता हूँ!" हाथ घुमाकर मेण्टलपीस पर रखे शिव-पार्वती के ऊपर हाथ रखते हुए वे बोले—"आनन्द, मैं अपनी आत्मा से कहता हूँ कि मैने तुम्हे नरेन्द्र से कम नही चाहा है और इसीलिये मै नही चाहूँगा कि कोई आदमी मुझसे कहे या मेरे पीठ पीछे कहे कि मैने एक गलत आदमी को प्रश्रय दिया, जैसा कि आज राज की माँ आकर कह गयी है कि वकील साहब, मै नही जानती थी कि आप आस्तीन का साँप पाल रहे हैं, उसे इसलिये दूध पिला रहे हैं कि वह मुझी को डस ले! आखिर मैने आपका क्या बिगाडा था, जो आपने ऐसी दुश्मनी निकाली! तुम आनन्द के साथ रानी को इधर-उधर भेज देते थे। तुम्हारी देखा-देखी मैंने भी आनन्द को राज के साथ मिलने, उठने-बैठने, बात करने और यहाँ

तक कि जब कभी घूम आने की भी स्वतन्त्रता दे दो। लेकिन मैं क्या जानती थी कि वह अपनी सुन्दर और भोली शकल में विष भरा विश्वासघाती नाग है! सुन रहे हो न आनन्द! अब तुम्ही बताओ, वह दुनिया भर में प्रचार करेंगी कि नही कि वकील साहब ने अगर आनन्द को प्रोत्साहन न दिया होता तो आनन्द की इतनी हिम्मत कभी नही पड सकती थी। नही तो क्या आनन्द ऐसा काम भी करता और वकील साहब का स्नेह-पात्र भी बना रहता! जवान बेटी घर में बिठाकर किसी नवयुवक की मदद करने का यही फल होता है। हालाँकि इन सब बातो का जवाब पचास तरह से दिया जा सकता है, लेकिन दुनियाँ की जबान तो कभी बन्द नही की जा सकती।

"लोक-मर्यादा और प्रेम का साथ-साथ निर्वाह बडा कठिन होता है आनन्द! हालाँकि मैं मानता हूँ कि आज की मर्यादाएँ कितनी संकुचित और इन्सान को कितना सीमित, जर्जर और उपहासप्रद बना देने वाली है। साथ ही आज का समय, जो सक्रान्तिकाल का है, नयी और पुरानी मर्यादाओ के सघर्ष का है, नये और पुराने आदर्शों के सघर्ष का है, बाप-बेटे और माँ बेटी के सघर्ष का है। यह हर एक आदमी को इतना हतबुद्धि कर देने वाला है यह कि वह किसका-किसका साथ दे! क्योकि नये और पुराने दोनो ही तो प्रतिक्रियावादी है, जो बहुत ही भयंकर वस्तु है। जहाँ तक मैं अपनी बात जानता हूँ, मैं बहुत दूर तक नये के साथ हूँ। इसीलिये जब नरेन्द्र ने मुझसे अपने अधिकारी की लड़की से, जो बॅगाली है, विवाह की स्वीकृति माँगी तो मैने इन्कार नही किया था। अब यह बात दूसरी है कि उसी बीच उनके सम्बन्ध में पता नही क्या हुआ कि वह बात ही दब गयी। यही नही आनन्द, मैं तुमसे एक बात और कहता हूँ कि आज अगर राज के स्थान पर रानी की बात होती, तो शायद मैं सारी चीजे और समाज मे उठनेवाली समस्त उल्टी-सीधी बातो को पीकर तुम लोगो की इच्छा में अपनी स्वीकृति मिला देता। लेकिन राज की बात ही दूसरी है बेटा!" कहते-कहते वकील साहब का गला भर आया था।

"तो आप मुझसे क्या चाहते है ?" आनन्द अपने अन्तर्मन्थन से घबडाकर कह बैठा।

"अब यही रास्ता है आनन्द ! चाहो तो अपनी ज़िद पर अपना प्यार आबाद कर लो राज की माँ के कथन की उपेक्षा कर दो, मेरे सारे किये-कराये पर पानी फेरकर मेरी इज्जत पर कीचड उछाल दो, अपने को बदनाम कर लो और चाहे अब और क्या कहूँ आनन्द !"

आनन्द चुप था। जैसे उसे लकवा मार गया था।

आनन्द मै समझता हूँ कि तुम ऐसा नही करोगे। तुम अपने बूढे पापा की टोपी नही उछालोगे। तुम उन्हें इस बात को सोचने पर मजबूर नही करोगे कि उन्होने एक ग़लत आदमी को अपना मोह, अपना प्रेम और अपनी आत्मीयता दी। आनन्द ! मुझे बिश्वास है कि तुम अपने बूढ़े बाप के सीने पर पैर नही रखोगे।"

"वकील साहब की आँखो में आँसू आ गये। उन्होने उठकर आनन्द के कन्धे पकडकर हिला दिये। आनन्द की आँखे खुली थी, उनमे स्याह-सफेद की आँख-मिचौनी चल रही थी। वकील साहब ने उसकी ठुड्डी पकडकर हिलाया—"बेटा मैं जानता हूँ, मै आज तुमसे तुम्हारे सारे सपने, सारे अरमान, या यों कहो कि दुनिया छीन रहा हूँ, लेकिन बाप बाप होता है बेटा।—वह चाहे जितना क्रूर, निर्दयी और हिंस्र क्यो न हो ! आशा है तुम मुझे निराश नही करोगे आनन्द ! आज मैं अपनी इज्जत, झूठी लोक-मर्यादा और राज की माँ के प्राणो के नाम पर तुमसे तुम्हारे प्रेम के उत्सर्ग की भीख माँगता हूँ !" उनकी आँख का आँसू जब आनन्द के पैर पर आ रहा तो जैसे उसे बिजली का करेण्ट मार गया।

"आप रोते हैं पापा ! आप रोयें नही। आनन्द आपकी आशाओ पर पानी नही फेरेगा। आप जो चाहेंगे, वही करेगा।" आनन्द ने एकाएक उठते हुए कह दिया।

वकील साहब ने उसे सीने से लगा लिया। वे बोले—"मैं जानता था आनन्द, तुम मुझे इस संकट से उबार लोगे।" लेकिन सीने से हटते ही आनन्द धम्म से कुर्सी पर आ रहा। —"आनन्द! आनन्द!! क्या हुआ बेटा? भरोस! जरा एक लोटे मे पानी लाना। ज़रा जल्दी।" और वे आनन्द के शिथिल शरीर को हिलाने-डुलाने लगे। भरोस के आने से पहले ही आनन्द ने आँखें खोल दी।

"क्या हो गया था आनन्द?" वकील साहब की मुद्रा बिषाद से धुआँ हो गयी थी।

आनन्द ने धीरे से उठते हुए कहा—"कुछ नही पापा, मै ठीक हूँ। छोडिये छोडिये। मै अपने आप खडा हो जाऊँगा।" और खडे होकर अन्दर की ओर से बाहर निकलने को बढ़ा। कमरे के बाहर आते ही सिसकियो के साथ ज़ीने की ओर हाथ में लोटा लिये कोई बढ़ गया। आनन्द जान गया कि रानी है। लेकिन भरे हुए कदमो से चलता हुआ वह लान में आकर चारपायी पर गिर पड़ा।

उसके दिमाग में हज़ारो चीखें, हज़ारो तूफान, झंझावात, विशाल सागर की हजारो क्रुद्ध लहरें एक साथ उठ रही थी। कभी दूर बहुत दूर तक तडपते हुए बालू के मैदान आते और उन पर करवट बदलती उत्ताल तरगें खो जाती। कभी दहाडते हुए पागल तूफान उठते और उसकी बन्द आँखें उसी से ढक जातीं। कभी दूर क्षितिज तक अँगडाई लेती हुई हरीतिमा का साम्राज्य आता, कभी कुछ कर गुजरने को सोच बैठा खूँखार अन्धड आता और हरीतिमा सिसक उठती। कभी हज़ारो चीखें उठती, फिर उन्हे कोई एक इशारे से ही कत्ल कर देता। ऐसी ही भारी और अर्धचेतन अवस्था में आनन्द के कानो में वकील साहब की आवाज़ पडी।

"भरोस, बाहर से ताला बन्द कर देना और आनन्द के पास ही मेरी चारपायी लाकर डाल देना। मै भी आज नीचे ही सोऊँगा।"

२६

लान के किनारे रजनीगधा महँक रही थी। वकील साहब के मसहरी-दार पलँग के सिरहाने एक स्टूल रखा था, जिस पर सुराही के ऊपर शीशे का गिलास ढका हुआ था। दो पलँगो के बीच में एक छोटी टेबिल थी, जिस पर दो खाली तश्तरियाँ रखी हुई थी और दो गिलास औंधे रखे हुए थे। देर हो जाने के कारण भरोस उन्हे उठाना भूल गया था। पलँग के चारो ओर मसहरियो का आवरण पडा हुआ था और बिजली का घूमता हुआ पखा चल रहा था।

वकील साहब आनन्द की बाते भूल नही पाये थे। बारम्बार घूम-फिर कर उसके कथन, एक गुरु-गम्भीर मुख और ज्वलन्त भगिमा के साथ, सामने आ जाते थे।

—'कुछ नही पापा, मै ठीक हूँ। छोडिये—छोडिये। मैं अपने आप खडा हो जाऊँगा।

—'तो आनन्द ने इस सक्षिप्त उत्तर में ही बहुत कुछ कह डाला है।'

—'जार्जटाउन का राजपथ अब बिल्कुल मौन है। पास-पडोस से भी कही कोई स्वर नही फूट रहा है। एक मैं हूँ, जिसकी चिन्ताधारा किसी प्रकार शान्त नही हो पा रही है।

—'हाँ, तो उसने कहा था—'कुछ नही पापा, मैं ठीक हूँ।' अर्थात् सर्प-दंश का जहर ज़रूर चढ आया है, लेकिन चेतना अभी बनी है।'—इसके बाद उसका—'छोड़िये—छोड़िये' कथन। अर्थात्, वह यह अनुभव कर रहा

है जैसे मैने उसे पकड लिया है, जकड लिया है—बाँध लिया है। .... उसके बाद—'मै अपने आप खडा हो जाऊँगा।' अर्थात् अपने आप खडे होने की शक्ति अब भी मुझमें शेष है। इतना सब हो जाने पर भी मैं गिरूँगा नहीं, मरूँगा नही, सदा-सर्वदा के लिए समाप्त नही हो जाऊँगा। और अगर गिर भी पडूँगा, तो घुटने नही टेकूँगा। और खडा तो हो ही जाऊँगा।—फिर उसने कहा था—

—'क्या बताये आपको पापा, दुनियाँ भर की बातें हुईं। नौकरी की, दिल्ली की, उसकी रिसर्च की। पर आखिर क्या बात है पापा ? क्या आप समझते हैं कि मै कोई बात आप से छिपाऊँगा, जो आप चक्करदार ढग से ऐसे प्रश्न कर रहे हैं। अरे आप सीधे ढग से पूछिये न ?

—'मेरे प्रति कितनी श्रद्धा भरी हुई है उसके मानसलोक में !

—'फिर उसने एक वाक्य मे ही अपना पक्ष स्पष्ट रूप से मेरे सामने रख दिया था। —'प्रेम करना कोई अपराध तो है नही पापा। ... सच्चे और झूठे प्रेम की बात मै नही जानता। यह बहुत हल्के और बाजारू शब्द हो गये हैं कि तुम्हारा प्रेम सच्चा है कि झूठा ? तुम पवित्र प्रेम करते हो कि अपवित्र ? तुम्हारा प्यार वासनात्मक है कि आत्मिक ? मैं तो केवल इतना जानता हूँ कि राज को मैं अपने समूचे अस्तित्व, पूर्ण आस्था और सम्पूर्ण सामर्थ्य से प्रेम करता हूँ, और करना चाहता हूँ।'

वकील साहब की उद्विग्नता किसी प्रकार भग नही हो रही थी। अपने ही निर्णय के प्रति उनको आस्था डावाँडोल होने लगी थी। प्रच्छन्न और सुषुप्त असफलताओ की दारुण पीडाएँ उभर-उभर उठती थी। शेफाली की सारी प्रतिक्रिया उन्हें अस्थायी और क्षणिक प्रतीत हो रही थी। उन्हे विश्वास नही हो रहा था कि जो नारी उनके लिये पूर्ण रूप से समर्पित बन चुकी थी, उसके मुँह से ऐसे विषाक्त शब्द निकल सकते हैं! और मान लो, निकल भी जायँ, तो उनका महत्व ही क्या है ' ऐश्वर्य-भोग की प्रमुख और उन्मादिनी घडियो में सर्व प्रथम उन्ही लोगो पर आक्रमण होता है,

जिनके साथ किसी-न किसी उपालम्भ किंवा अवैध व्यापार की गोपनीय क्रूरता का अविच्छिन्न सम्बन्ध होता है। मै ही अपने जीवन मे कौन-सा अभाव पाता हूँ ? पर क्या इसका यह अर्थ होता है कि शेफाली के साथ यदि मेरे जीवन को वैधानिक ग्रन्थियो का अनुबन्धन हो जाता, तो वह आज की अपेक्षा कम सफल होता! आत्म मिलन के जो अनुभव हो नही पाये, उनकी उपलब्धियो के प्रति यदि कोई प्रतिक्रिया हमारे मन मे आती है, तो मैं तो यही कहूँगा कि अगूर खट्टे है!

अब स्वय उन्ही का अन्तःकरण बोल उठा—'तुम रजना की माँ की धमकी में आ गये। पर मुझे बडा आश्चर्य हो रहा है कि तुम्हे उसकी बातो पर विश्वास कैसे हो गया!—'अगर यह विवाह न हुआ, तो मेरी लाश ही घर से निकलेगी। मेरी तेरही के बाद ही राज और आनन्द का विवाह सम्भव है। मेरी आँखो के सामने यह सब नही हो सकेगा।' खूब! तुमने यह न सोचा कि जो नारी विवाह के प्रश्न पर अपनी बेटी को अभिरुचि को महत्व न देकर आत्मघात करने को तत्पर हो सकती है, वह अपने स्वामी की मृत्यु पर उसके वियोग मे कैसे जीवित बनी रहती है! और तुम उसे माँ कहते हो ? मैं तो उसे वह नागिन समझता हूँ, जो अपने ही अण्डो को चट कर जाती है!'

इतने में ही दीवार-घडी बोल उठी।—'ओः दो बज गये!

मगर यह दो बजे है या तीन ? तीन ही बजे होगे। दो बजने का स्वर तो मै पहले ही सुन चुका था।' फिर उनको कुछ ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे आनन्द ने करवँट बदली हो। तब वे लेटे-लेटे तत्काल बोल उठे—"आनन्द! आनन्द!!"

एक मौन। फिर क्षण भर बाद—"क्या है पापा ? क्या आपने मुझे पुकारा था अभी ?"

"हॉ आनन्द, मुझे कुछ ऐसा जान पडा कि तुम्हे अब तक नीद नही आयी।"

"अभी तो नही आयी पापा। लेकिन आखिर कब तक न आयेगी !"

वकील साहब को स्पष्ट जान पडा, इस स्वर में पीडा है, व्यथा है, दर्द और उपालम्भ है। एक विवशता है कि मै कर ही क्या सकता हूँ! पर एक चुनौती भी है कि देखता हूँ, कब तक नही आती !

अब वकील साहब को कुछ अपना ध्यान आ गया।—'प्रेम तो मेरा भी ऐसा ही दृढ, अडिग और स्थायी था। ईमानदारी से पूछा जाय तो वैसा अछूता—और कभी-कभी तो आक्रमणात्मक-सा —प्यार मैं अपनी पत्नी को भी नही दे सका।

एक नि:श्वास। फिर करवँट बदलने लगते हैं। फिर ऐसा प्रतीत होता है, जैसे कोई व्यक्ति उनके कानो में कहने लगा हो, जिसका स्वर उन्ही का अपना हो।—'प्राचीनता, परम्परा और रूढिवाद के गुलाम! तुम क्या समझोगे कि समूचे अस्तित्व, पूर्ण आस्था और सम्पूर्ण सामर्थ्य का प्रेम कैसा होता है! छि:! तुमने अपनी समझ से मानो बडा भारी तर्क दिया था कि इस आघात को न सह सकने के कारण पिताजी की मृत्यु हो गयी थी!— तो तुम समझते हो, पिताजी की मृत्यु कभी होती नही! फिर वह तो पर्य्याप्त वृद्ध हो चुके थे। इसके सिवा उन्हे दिल का दौरा भी आता था। इस प्रकार मृत्यु उनके अगले कदम के रूप में अनिवार्य हो उठी थी। और यह क्या चीज हुई जनाब कि यदि पुत्र मेरी तबियत की शादी नहीं करता है, तो लो, इसी बात पर मै अपने प्राण छोड रहा हूँ! मै पूछता हूँ, क्या यह हठवाद नही? क्या यह अहम्वाद नही! जब शादी लडके की होती है, तब बधू के चुनाव के सम्बन्ध मे पिता की तबियत का क्या मूल्य होता है? ऐसे गम्भीर विषय मे तो लडके की तबियन का ही प्रमुख महत्व होना चाहिये। ऐसे अवसरो पर जो पिता केवल अपनी तबियत को प्रमुखता देता है वह पुत्र-विवाह के माध्यम से अपने अहन् की तृप्ति करता है। और कल तक की पीढी अगर इस अन्याय को बराबर सहन और स्वीकार करती

रही, तो भी कोई कारण नही कि हमारी अगली पौध और पीढी भी सहन करती जाय। आनन्द बिल्कुल ठीक रास्ते पर है। ज्ञान और विवेक की डीग हॉकनेवाले वकील साहब, तुम कहलाते तो आनन्द के पापा हो, पर तुम्हारी करतूत यह है कि तुम रंजना की मॉ की भावुकता मे आकर उसी रूढिवादी परम्परा में बह गये ! छिः ! एक बार ज़रा अपने हृदय पर हाथ धर कर सोचो, तुम क्या कर रहे हो ? आज ही आनन्द अगर अपना दम तोड देता, तो तुम क्या कर लेते ? और अभी हुआ क्या है ! वर्ष भर के भीतर ही तुमको यदि यह सुनने का अवसर मिल गया कि आनन्द को यक्ष्मा ने धर दबोचा है, तो तुम दुनियॉ के सामने क्या मुँह दिखाओगे ? तुम्हारी बुद्धि और सच्चाई स्वय तुम्हे खा न जायगी !

एक निःश्वास।—'विवाह कर लेने के बाद भी बहुत दिनो तक शेफाली की याद नही भूली थी।'—अब उनको उसकी ऑखो के पलक याद आते थे। वे बैरौनियॉ स्मरण आती थी, जिनमें ऑसू भरे हुए थे। फुल्ल गुलाब-सा वह सुन्दर मुख याद आता था, जिसको वे ससार में अद्वितीय और अनुपम मानते थे। साडी, ब्लाउज़ और जाडे के दिनो में जैकेट अथवा चेस्टर के भीतर से बोलने और निमन्त्रण देने वाला वह प्रगल्भ तारुण्य स्मरण आता था, जो उनके लिये आज तक दुर्लभ था।

आनन्द के कथन अब वकील साहब के मस्तक पर छर्रे की तरह लग रहे थे। जान पडता था, जैसे रक्त की बूॅदें निकल-निकलकर उनकी बनियान और बिछौने के आवरणो पर गिर रहे हो ! पैजामा रक्त-रंजित हो गया है। फिर ऐसा कुछ प्रतीत हुआ, मानो उन्होने अपने रूढ़िवादी हस्तक्षेप से आनन्द को भी रक्ताभ कर डाला है।—एक दम क्षत-विक्षत ! फिर करवॅट बदलते हुए सोचने लगते है—

'नीद नही आ रही है। पर नीद आये कैसे ? उसने कहा था— 'मेरा ख्याल है, हम लोग बच्चे भी नही हैं कि ऑंखो पर एक दम से पर्दा

डाललें, एक आकस्मिक जोश और तरग में कोई ऐसा निर्णय कर लें, जिसका निर्वाह हमारी सामर्थ्य के बाहर हो। और मै तो यह भी समझता हूँ कि हम लोगो के बीच कोई ऐसी बात शेष नही है, जिसको लेकर भविष्य में पछताना पडे। हमारे बीच मे कोई रहस्य, कोई दुराव और छिपाव नही है। हम लोग बाहर से लेकर भीतर तक सामने रखी उस खुली हुई पुस्तक की भॉति है, जिसके पृष्ठ-पृष्ठ और पक्ति-पंक्ति ही नही, एक-एक शब्द तक हमारे पढ़े हुए है।

—'यह एक ऐसा झझट सिर पर आ गया है जो मेरे शरीर का रोवॉ-रोवॉ नोच रहा है। एक ओर आनन्द का प्रश्न है, तो दूसरी ओर रजना की वृद्धा मॉ की अभिरुचि और आशा का। समझ में नही आता, इस समस्या को कैसे सुलझाऊँ! प्रेम जीवन में बहुत बडा स्थान रखता है, मानता हूँ। लेकिन जिन लोगो का प्रेम असफल रहता है क्या वे फिर आगे चलकर सफल, सुखी और सन्तुष्ट नही होते? उनके विवाह नहीं होते, या उनका गार्हस्थ्य जीवन नही पनपता? फिर यह कौन कह सकता है कि प्रेम के माध्यम से होनेवाले वैवाहिक जीवन सदा कृतकार्य ही होते हैं? 'तो यह सिरदर्द जो मै मोल ले रहा हूँ, बिल्कुल बेकार है। मैने आनन्द को समझा लिया है। वह बहुत समर्थ और वीर तरुण है। दो-चार दिन तक भले ही उदासीन बना रहे, किन्तु उसके बाद फिर उसका मानसिक विकर्षण सामान्य स्तर पर आ जायगा। एक समय ही तो है जो बडे-से-बडे घाव पूर देता है।

—'अब तो हवा चलने लगी है। पंखा क्यो न बन्द कर दिया जाय?

एकाएक वकील साहब उठ बैठे और पंखा बंद करके पुनः लेटते ही अन्तर्नाद फूट पडा।

—'तुम्हारे भीतर ननु-नच अभी मौजूद है। हो सकता है कि अपने निश्चय के विजय का उन्माद तुमको मजबूर कर दे और कहने लगे कि मैंने जो निर्णण एक बार कर दिया, सो कर दियाँ। मेरे फ़ैसले की कोई

अपील नही होती ।' लेकिन इतना मैं तुमको बता देना चाहता हूँ कि तुमने अपना यही निर्णय स्थिर रखा, तो समझ लेना कि फिर तुम्हारी खैरियत नही है! मैं स्वयं ही तुमको खा जाऊँगा! वकील साहब तुम जीवन भर पछताते रहोगे! अपनी करतूतो के नाम पर तुम रात-दिन रोया करोगे! फिर कोई भी ऐसी शक्ति न होगी, जो आँसू पोछने के लिये तुम्हारे पास फटक सके!

—'शब्द भले ही दूसरे के हो, पर यह स्वर तो मेरा ही है। लेकिन शब्द भी मेरे अपने हैं। मेरी ही आत्मा की पुकार है यह।

विवश होकर वकील साहब ने अपना मत्था पकड लिया। थोडी देर स्थिर रहे और फिर सोचने लगे—'अब मुझे क्या करना चाहिए?' तब वे एकाएक उठ बैठे और पलँग से उतरकर पीठ पर दोनो हाथ बाँधते हुए लान के उत्तर-दक्षिण चुपचाप टहलने लगे। नीद न आ सकने के कारण सिर फटा जा रहा था। शरीर की नस-नस दर्द कर रही थी। एकाएक ध्यान आया—'आनन्द के पास न लेटकर मुझे ऊपर ही लेटना चाहिये था।' फिर वे ऊपर चले गये।

प्रातःकाल रानी जब सोकर उठी, तो वह सबसे पहले आँखे मिल-मिलाती हुई उसी कमरे मे गयी, जहाँ आनन्द का ट्रक तथा बेडिंग आदि रखा रहता था। लेकिन उस कमरे में उस समय कोई न था। तब वह बाहर की ओर मुड गयी। द्वार-मंच के निकट खडी हो दूर से ही दोनो पलँग देखकर उसने सोचा—'जान पडता है मास्टर साहब नित्यक्रिया के लिये ·· ·।' लेकिन फिर जो उसने और थोडा निकट जाकर देखा, तो मालूम हुआ—'उन्होने तो अपना बिस्तर होल्डाल में रखकर जाने की तैयारी कर ली है।'

तब उसे ध्यान आ गया—'लेकिन मेल तो साढे-नौ बजे के बाद जाता है।' फिर कल पापा से जो बातें हुईं, उनका स्मरण हो आया।

इतने में भरोस दिखाई पड गया, तो झट प्रश्न कर दिया—"मास्टर साहब कहाँ हैं ?"

उसने उत्तर दिया—"गुसलखाना में।"

इतने मे आनन्द जो टावेल से मुँह पोछता हुआ बाथरूम से निकला, तो रानी बोल उठी—

"यह सबेरे-सबेरे आपका बेडिंग क्यो बँध गया ?"

"मैं इसी मेल से जा रहा हूँ रानी।" आनन्द ने उन्मुख हुए बिना, सिर नीचा किये हुए, चलते-चलते कह दिया।

"लेकिन इतनी जल्दी तैयारी कैसे हो गयी ! पापा से पूछ लिया है ?"

अपने कमरे की ओर बढते-बढते थोडा रुककर आनन्द ठिठुक गया। एक बार रानी के बिखरे-बिखरे केशो पर दृष्टि डाल बोला—"पूछा तो नही, लेकिन पूछने में देर क्या लगती है ?"

"और राज दीदी ? उनसे बिना मिले ही चले जाइयेगा !"

"मुझे अब किसी से मिलने की जरूरत नही रह गयी है रानी।"

अपने स्पष्ट कथन के अनुसार वह मन-ही-मन यह भी कहने लगा—'जब मनुष्य इतना परवश है कि उसकी अपनी रुचि और अभिलाषा, प्रीति और लालसा भी दूसरो पर आश्रित और अवलम्बित है—उनकी इच्छा और मेहरबानी पर, उनकी दृष्टि और हिताहित के तुलात्मक सायुज्य पर, स्वार्थो के विनिमय और भौतिक उपलब्धि के क्षणिक लेन-देन पर, तब ···! तब यह मिलना-जुलना व्यर्थ है। यह जीवन व्यर्थ है—यह ससार व्यर्थ है !

एक प्रकार के आत्मदाह के साथ आनन्द अपने कमरे की ओर मुड गया। रानी चुपचाप अपने पढने के कमरे मे पहुँचकर एक पत्र लिखने लगी थी। तीन-चार पक्तियो में ही उसे समाप्तकर झट से उसने पत्र को मोडा और एक लिफाफे में बन्द कर भरोस को देती हुई वह बोली—इसे अभी राज दीदी को दे आना।

और किसी के हाथ में न पडने पाये। साइकिल पर चले जाना, अच्छा!"

भरोस पत्र लेकर चल दिया।

जिस समय वह फाटक के बाहर हो रहा था, ठीक उसी समय एक आदमी, जिसकी पोशाक राजकीय अरदली की थी, अन्दर आ रहा था। भरोस ने हाथ में साइकिल का हैंडिल थामे ठिठककर पूछा—"कहाँ किससे मिलना है?"

"वकील साहब से।"

"वो अभी उठे नही, रात देर से सोये रहे।"

फिर भी अरदली अन्दर चला ही गया।

रानी अब तक बरामदे मे खडी थी। अरदली ने उसके निकट जाकर पूछा—"साहब कितनी देर में उठेंगे?"

रानी बोली—"देर में सोये है। आठ से पहले क्या उठेगे?"

उसने देखा—अरदली के हाथ में एक पत्र है। तब उसने कह दिया—"कोई पत्र हो, तो दे जाओ। उनके उठने में देर भी हो सकती है।"

अरदली कुछ सकुचित हुआ। उसके ओठ हिले और एक बार तो उसने सिर भी नीचा कर लिया। रानी कुछ कहना ही चाहती थी कि उसने कह दिया—"चिट्ठी बहुत ज़रूरी है और मुझे हिदायत है कि साहब के ही हाथ में दी जाय।"

"तब तो बैठना ही पड़ेगा।" उत्तर के साथ ही रानी बाथरूम की ओर बढ गयी।

शेफाली के स्वामी पहले गवर्नमेंट-एडवोकेट थे। पर इन दिनो वे पब्लिक-सरविस-कमीशन के चेयरमैन हो गये थे। वे सदा व्यस्त रहते थे।

जब कभी तबियत ऊब जाती तो बाहर घूमने चल देते। पर अपनी पत्नी शेफाली को वे सदा साथ रखते थे। उसने भी जीवन के साथ पूर्ण समझौता कर लिया था। अपने दाम्पत्यजीवन मे वह पूर्ण-घुल-मिल गयी थी। वैभव के अर्जन और उसके उपभोग में वह सदा संलग्न बनी रहती थी। कोई आशका भी न कर सकता था कि व्यतीत के सम्बन्ध मे वह कुछ सोच सकती है। उसका जीवन बाहर से देखने में पूर्ण रूप से सफल प्रतीत होता था। वह सभाओ मे जाती, तो उनमें पूरा भाग लेती। बोलती कम थी, लेकिन सहयोग पूरा देती थी। पार्टी देने में उसे बडा सुख मिलता था। पर सम्बन्धित लोगो के साथ वह बहुत सम्हलकर रहती थी।

एक बार कोई ऐसा अवसर आ गया कि स्वामी के मुँह से निकल गया—"इस सूची मे मनमोहन का नाम तुमने नही रखा!"

शेफाली ने उत्तर दिया—"तब फिर सभी वकीलो के नाम क्यो नही रखवा देते? पार्टी सम्भ्रान्त नागरिको की हो रही है या केवल बार एसोसियेशन की?"

उत्तर अपने दृष्टिकोण में सही था, किन्तु तत्काल उन्होने देखा—शेफाली अप्रतिभ हो उठी है। उसकी ऑखो के पलक मुँद गये हैं और वह पलँग पर जा गिरी है।

इस प्रकार बहुत सतर्क रहने पर भी शेफाली उन सम्भावनाओ को कैसे भूल सकती थी, जो उसके जीवन में चरितार्थ होने से वंचित रह गयी थी। जो प्राप्त हो चुका था, उसके प्रति तृप्ति और सन्तोष उसे अवश्य था, पर जो प्राप्त होते-होते बच रहा था, घनिष्टतम सान्निध्य के द्वार पर आकर भी भविष्य की जिन परिणतियो से वह वंचित हो गयी थी—जीवन के मोड में आकर जो एक दम से घूम गयी थी—उसके लाभ की कल्पना की अनिर्वचनीय उपलब्धियाँ, एक अतीव उत्कट लालसा के रूप में, कभी-कभी भीतर-ही-भीतर विस्फोट कर उठती थी। यहाँ तक कि प्रसग उपस्थित

होने पर वह वकील साहब के प्रति अपना आक्रोश और क्षोभ व्यक्त करना कभी चूकती न थी। किन्तु सब कुछ कह लेने पर जब कहीं से कोई कटु, तिक्त और प्रखर उत्तर न मिलता, आदान बिचारा अकेला रह जाता, तो उसका वह आदान ही प्रतिदान का रूप ग्रहण कर लेता। और अपना ही अस्त्र उल्टा उसी के ऊपर आ लगता था।

यह एक ऐसी परिस्थिति थी कि वह वकील साहब से मन-ही-मन जितना जलती थी, अन्तर्मन मे उनसे मिलने के लिये उतनी ही आतुर, उत्कंठित और लालायित-सी बनी रहती थी। ऊपर से वह जिसपर घृणा व्यक्त करती, भीतर से उसे चाहती रहती। चलते-फिरते, जीवन के नाना प्रसगो के क्रम में स्वामी और बच्चो से उलझते हुए कभी-कभी उसे वकील साहब का स्मरण आ ही जाता था। तात्पर्य यह है कि जिससे वह कभी मिलना नही चाहती थी, स्वप्न-कल्पनाओ की वर्जना-हीन उपचेतना मे उसी से मिलने के लिये आतुर और व्याकुल बनी रहती थी। जिसके स्मरण को निरतर टालती रहती, उसी की भोली सुधियाँ अनायास उससे लिपट-लिपट जाती थी।

पहले तो बहुत दिनो तक एक स्वभावगत दोष के रूप में इस बात की चर्चा होती रही। फिर यह समझ लिया गया कि यह एक प्रकार का रोग है। कभी विवाद का प्रश्न उठता, कभी बात करते-करते उसे मन मोहन का स्मरण हो आता, तो एक दम से उसकी आँखें बन्द हो जाती। हाथ सिर पर आ जाता, कुर्सी पर बैठी हुई होती तो सिर उसकी पीठिका पर लुढक जाता। सोफे या पलँग पर बैठे हुए बात करती तो वही चुपचाप लेट रहती। अब बच्चे सयाने हो गये थे। अतः ऐसी स्थिति उपस्थित होने में उसे स्वय सकोच होता था। पहले तो स्वामी अनुमान, कल्पना और सम्भ्रम के युग्म विन्यास में समझते रहे कि यह व्याधि हिस्टीरिया का ही एक रूप है। किन्तु जब डाक्टरो ने देखा कि वह हत-चेतना की अवस्था मे नही पहुँचती, प्रश्न करने पर उत्तर बराबर देती है, तब उन्होने स्पष्ट घोषित कर दिया कि किसी मानसिक

आघातके कारण ऐसा होता है। पर इनका हृदय बडा दृढ है। इसलिये ये उस आघात को सहन कर लेती है। और जब चेतना को कोई आघात नही पहुँचता, तब चिन्ता का कोई कारण नही है।

पहले तो स्वामी ज़िद करके पूछते रहे—"सच सच बतलाओ शेफाली, क्या बात है? मै बुरा नही मानूगा।" उत्तर मे शेफाली कभी केवल मुसकरा देती, कभी कह देती—"कोई बात नही है। यकायक न जाने कैसा लगने लगता है, जिसको मै भाषा पर उतार नही सकती।"

स्वामी पूछते—"लेकिन लगता कैसा है?"

शेफ़ाली कह देती—"क्या बताऊँ, कैसा लगता है! लगता है कि एक अथाह सागर है और मै उसमे डूब रही हूँ। चारो ओर जल-ही-जल है। पैर टेकने का कही कोई स्थल नही है। हाथ से पकडकर, सहारा लेकर, क्षण भर रुकने का कोई मार्ग नही है। कहाँ जा रही हूँ, कुछ पता नही लगता। कहाँ पहुँचना है, यह भी ज्ञात नही है। लगता है कि मैं उत्तरोत्तर डूबती जा रही हूँ।"

ऐसे-ऐसे प्रसंग आते रहते जिनका समझना दुष्कर हो जाता। एक बार इलाहाबाद स्टेशन पर कही मनमोहन की झलक दिखाई पड गयी। बस, वही पुल पर चढते-चढते शेफाली बैठ गयी। हाथ मत्थे पर आ गया, सिर को रेलिग के सहारे लगा लिया। स्वामी साथ मे थे और बडा बच्चा नरेश भी था। स्वामी ने पूछा—"क्या हुआ?"

शेफाली की आँखें बन्द थी। हाथ उठाकर उसने कह दिया—"कुछ पूछो मत। अब मै कही नही जाऊँगी।"

यह वाक्य भी वह बडी कठिनाई से कह पायी थी।

एक बार ऐसा हुआ कि नरेश एक कविता-पुस्तक पढ रहा था। उसकी प्रारम्भिक शब्दावली इस प्रकार थी—

सारी उगलियाँ मत चटकाओ,
दो-एक यू ही छोड दो।
थोडा-सा दर्द बना रहने दो !

बस इतना ही शेफ़ाली ने सुन पाया था कि खाना खाते-खाते कौर हाथ से छूट गया। पलके बन्द हो गयी और वह वही कुरसी पर लुढक गयी।

स्वामी का कुछ ऐसा सरल, विमल और उदार स्वभाव था कि उन्होने इस विषय में पूछताँछ करना छोड दिया था। अब परिवार और सम्बन्धित नातो-रिश्तो में यह बात बहुश्रुत और बहुघोपित हो चुकी थी कि सुरेश बाबू की गृहिणी को एक विचित्र प्रकार की मानसिक व्याधि रहा करती है। अतः न किसी को कोई चिन्ता-जनक शका होती थी और न कोई किसी प्रकार का प्रश्न ही उठाता था। पौढावस्था के क्रीडा-कौतुक शान्त हो चुके थे। वृद्धावस्था की प्रशान्त जीवन-मन्दाकिनी प्रवहमान थी।

पत्र देखकर रजना पहले विचार मे पड गयी। सिर उठाकर एकबार उसने भरोस की ओर देखा और कहा—"कह देना, चिट्ठी मिल गयी।" भरोस चल दिया। वह अभी द्वार तक पहुँच पाया था कि रजना निकट आकर बोली—"ठहरो भरोस। मैं एक चिट्ठी दे रही हूँ। उसे आनन्द बाबू को दे देना।" और इतना कहकर वह अपने कमरे मे जाकर पत्र लिखने बैठ गयी।

देखो आनन्द,

प्रश्न-पत्र हल करने की घडियो में ही तुम कुर्सी छोडकर भागे जा रहे हो ! जरा सोचकर देखो, इसका तुम्हे अधिकार भी है ? यू ही मेरा विश्वास आहत हो चुका है। लेकिन अब मैं उसे और बिखरने नही दूँगी। तुम सोचते हो, ऐसी परिस्थिति में मैं तुम्हे मनाने आऊँगी ? छिः ! जन्म-जन्मान्तर के लिये पकडे हुए मेरे इस अबल हाथ को एक दम से झटकाकर

भाग जाना तुम्हारे लिये कभी शोभन न होगा। बहुत सम्भव है, आगे चलकर सहन भी न हो। 'जी भर आया है, आँसू गिर रहे है, लेकिन अब यहाँ तक आकर मै किसी प्रकार की दुर्बलता न दिखाऊँगी। जो कुछ हो रहा है, उसे देखते जाओ। कोई-न-कोई हल निकल ही आयेगा। यह मत समझो कि प्रत्येक प्रतिकूल परिस्थिति सदा एक व्याघात—एक विघ्न—ही होती है। वह अपने आप से एक मार्ग भी तो निकालती है। कभी-कभी एक ही मार्ग से दूसरा मार्ग भी निकलता है। आनन्द, हमारे लिये भी निकलेगा। विश्वास रखो, ज़रूर निकलेगा।

तुम्हारी—राज।

पुनश्च—सायकाल ५ बजे स० मे प्रतीक्षा करना।

पत्र लिखकर एक लिफाफे मे बन्दकर उसे भरोस के हाथ में देते हुए उसने कह दिया—"इसको आनन्द के ही हाथ में देना, नही तो अपने पास बना रखना। अच्छा।"

भरोस पत्र लेकर लौट गया।

शेफाली इधर कई महीनो से अस्वस्थ थी। स्वास्थ्य धीरे-धीरे गिर रहा था। कभी-कभी वह घटो मौन बनी रहती। किसी से बोलने की उसकी तबियत न होती। इसके विपरीत जब उसकी आँख झपक जाती तो वह स्वप्नावस्था में भी कुछ-न-कुछ बुदबुदाती रहती। यथा—

"इसीलिये मैने तुमसे कहा था कि तुम मुझसे बोला मत करो और इसीलिये मैं तुमसे बोलती न थी। मैं जानती थी कि तुम उन दुर्बल व्यक्तियो में से हो, जो ''मगर दुर्बल क्यो? बर्बर क्यो न कहूँ? ''जो किसी मेमने को इसलिये अपने पास बुला लेते हैं कि अवसर देखते ही झट कमरे के भीतर कर लें और फिर उसका इस प्रकार से बध करें कि चीत्कार का स्वर बाहर पास-पडोस में कही सुनाई न पडे!"

कथन समाप्त होते ही शेफाली का रोष समाप्त हो जाता, पर आँखो से आँसू बराबर निकलते रहते।

उस दिन स्वामी ने सुना। वह सुषुप्तावस्था में बुदबुदा रही है; "विश्वासघात करने पर भी कोई किसी को भूल थोडे ही जाता है। बल्कि जो आधार अधिक व्यापक और जीवन्त होता है, वह उतना ही चिर-स्मरणीय भी होता है। अपराध तुमने किया था, फिर मै तुमसे क्यो मिलती? अपनी ओर से मै क्यो तुम्हे निमत्रित करती? वैवाहिक गार्हस्थ्य-जीवन में पहुँचकर, अलग-अलग अनेक बार डुबकियाँ लगाकर, हम लोग तट पर आकर क्या परस्पर मिल-भेट भी नही सकते थे! एक दूसरे को देख भी नही सकते थे! लेकिन जैसा कि मैंने अभी कहा—तुम आदमी नही, हिस्र जीव हो!

फिर एक मौन, फिर थोडी देर बाद आप से आप—"खैर मुझे तुमसे कोई उपालम्भ नही है। उपालम्भ तो मुझे अपने से है कि मैने तुमको समझने में भूल की, तुम्हारा विश्वास किया, यद्यपि किसी पर विश्वास करने को मैं बहुत बडी भूल नही मानती। विश्वास देनेवाले व्यक्ति की अपेक्षा विश्वास करने वाला व्यक्ति समधिक प्राणवान और मनस्वी होता है। बुद्धिमान भले ही कुछ कम हो, पर स्थिर चित्त और दृढ निश्चयवाला तो अवश्य होता है।"

फिर एक मौन।

"यह किसका स्वर है? यह कौन बोल रहा है? यह किसने मुझे पुकारा—मेरा नाम लेकर? ओ, तुम हो! कैसे भूल पडे यहाँ! किससे मिलने आये हो? कौन? क्या कहा! फिर तो कहना। मुझसे! मैं, मै, मै, मै तुम्हे नही पहचानती! निकल जाओ मेरे घर से! चले आओ यहाँ से! मैं तुम्हारी शक्ल नही देखना चाहती!"

वाणी मे अतिशय क्षोभ और प्रतिहिंसा है। लेकिन पलको और बरौनियो में आँसू भरे हुए हैं। कण्ठ आर्द्र हो उठा है। अधर कम्पित है। और शिथित दुर्बल वक्षप्रान्त श्वास-प्रश्वास के साथ गिरता और उठता है।

यकायक सुरेश बाबू ने पाइप पीते-पीते वकील साहब की ओर मुडते हुए कह दिया—"देखा आपने? इसी नाटक को दिखलाने के लिये मैने

आपकी याद की थी। इसके रचयिता आप हैं। कुछ समझ में आया आपके! सारे मर्जों का इलाज है; मगर दुनियाँ के बडे-बडे डाक्टरो का कहना है कि इस मर्ज का कोई इलाज नही।—अनेक बार मेरे मन में आया कि आपको बुलाऊँ, आपसे पूछूँ और इस सम्बन्ध मे आपसे बाते करूँ; लेकिन सदा मैं इसी परिणाम पर पहुँचा कि हालत सम्हलेगी नही; बिगडही जायगी। आप समझते होगे, मै आपको जानता न था? आपने सोचा होगा कि मै इसके साथ आपके पूर्व सम्बन्धो से परिचित न था? हँ-हँ मैने खूब सोच-समझकर इसके साथ विवाह किया था, क्योकि मैं जानता था कि यह निर्दोष तथा निष्कलक है। प्रेम करना मै अपराध नही मानता।"

और इस कथन के बाद सुरेश बाबू ने झट से उठकर जेब से एक रिवाल्वर निकाला और कुछ आवेश से कह दिया—"अपराधी सच पूछिये तो आप हैं। आपने इसके प्रेम का अपमान करके, उपेक्षा करके, विश्वास घात करके, स्लो-प्वाइज़्निंग के माध्यम से, धीरे-धीरे, सतत् इसकी हत्या की है। और मैंने भी यह निश्चय कर लिया है कि इसी बात पर मै आपको समाप्त करदूं। कोई उत्तर है आपके पास?"

वकील साहब तनकर खडे हो गये और उनके मुँह से निकल गया—"मैं मरण के लिए तैयार हूँ चेयरमैन साहब। आप मुझे मार सकते हैं!"

सुरेश बाबू हँसने लगे।—"हँ-हँ-हँ क्षमा करना, मै अपने मनोभाव छिपा न सका। शेफाली मेरी पत्नी है। और आप उसके प्रेमी रह चुके हैं। इस नाते आपके साथ भी मेरा सम्बन्ध हो जाता है। ऐसी दशा में, अपने घर बुलाकर, मैं भला ऐसा कुछ कर सकता हू!"

हृदय में आँधियो का वेग, अग्निकाण्ड की लपटें, रूढिवादी समाज द्वारा होनेवाली हत्याओ के चीत्कार, लोलुप व्यक्तियो की बुद्धिहीनता,

अवसर पर ठीक-ठीक निर्णय न कर पाने की युग-युग से चली आ रही मनुष्य की निर्मम विवश कायरता आदि की आत्मदग्ध ग्लानि छिपाये थोडी देर बाद वकील साहब लौट आये।

आनन्द स्टेशन पर जा चुका था। वकील साहब प्लेटफार्म पर पहुँचे ही-थे कि उन्होने देखा—गार्ड ह्विसिल दे रहा है। हरी झडी उसके हाथ में है।

गाडी चलने ही वाली थी कि उन्होने आनन्द का हाथ पकडकर बाहर खीचते हुए कह दिया—"उतरो, उतरो। तुम अभी नहीं जा सकते। जब प्रतिकूल निर्णय तुमने मान लिया था, तब अनुकूल निर्णय से तुम इनकार नही कर सकते। राज की माँ को मैंने समझा लिया है। यह मेरी जिम्मेदारी है और मै इसे निभाऊँगा।"

गाडी अब रेंगने लगी थी। वकील साहब ने पास बैठे हुए एक नवयुवक से कह दिया—"इसका सूटकेस तो उठा देना बेटे, यह बैडिंग मुझे दे दो आनन्द।

जब सामान प्लेटफार्म पर आ गया; तो आनन्द वकील साहब के पैरो पर गिर पडा। उसकी आँखो में आँसू भरे हुए थे। उसका हृदय गद्गद था। पुलकित मन-प्राण से उसने कह दिया—"मैं आपसे कभी उऋण न होऊँगा पापा।"

अब जीवन के साथ माया, रानी और रजना भी निकट आ गयी थी। और वकील साहब कह रहे थे—मैं नही जानता था आनन्द कि प्रेम कभी मरता नही।

गाडी चली जा रही थी।